# कृष्णभावनामृत में ब्रह्मचर्य

भक्ति विकास स्वामी

तथा

# ब्रह्मचारी पाठ्यपुस्तक

श्रील प्रभुपाद तथा अन्यों द्वारा ब्रह्मचर्य
सम्बन्धित उद्धरणों सहित

# समर्पण

यह पुस्तक इस अद्‌भुत अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद को समर्पित है, जो मेरे प्रभु तथा स्वामी हैं। उन्होंने हमें (समस्त महामूर्खों को) ब्रह्मचर्य की परम आवश्यकता के विषय में सूचित किया, ब्रह्मचारियों के रूप में प्रशिक्षित किया और ब्रह्मचर्य से भी परे जाकर, श्री कृष्ण का शुद्ध प्रेम प्राप्त करने की शिक्षा दी। मेरे जीवन का सर्वश्रेष्ठ वर यही होगा कि मेरी गणना उनके चरणकमलों की रज के कणों में की जाए।

## भक्तिविकास स्वामी की अन्य कृतियाँ

A Beginners Guide to Kṛṣṇa consciousness
(हिन्दी में, कृष्णभावनामृत प्रबोधिनी)
A Message to the Youth of India
(हिन्दी में, भारत के युवाओं को संदेश)
Śrī Caitanya Mahāprabhu
(हिन्दी में, प्रेमावतार श्री चैतन्य महाप्रभु)
Glimpses of Traditional Indian Life
My Memories of Śrīla Prabhupāda
On Pilgrimage in Holy India
Śrī Bhaktisiddhānta Vaibhava
Vaṁśīdāsa Bābājī
Vaiṣṇava Śikhā O Sādhana (Bengali)

## भक्तिविकास स्वामी द्वारा संपादित तथा प्रकाशित पुस्तकें

Rāmāyaṇa, The Story of Lord Rāma
(हिन्दी में, वाल्मीकि कृत रामायण)
The Story of Rasikānanda
Gauḍīya Vaiṣṇava Padyāvalī (Bengali)

## स्तुतियाँ

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा; अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम्।

"मैं समस्त शक्ति के स्रोत भगवान् नृसिंहदेव को सादर नमस्कार करता हूँ। हे वज्रवत् नखों तथा दाँतों वाले मेरे देव, कृपया इस भौतिक जगत में सकाम कर्म के लिए हमारी दैत्यवत् इच्छाओं को नष्ट करें। कृपया हमारे हृदयों में प्रकट हों तथा हमारे अज्ञान को दूर करें जिससे हम आपकी दया से इस भौतिक जगत में अस्तित्व के संघर्ष में निर्भय बन सकें।"

जब तक कोई अज्ञान के गहन अंधकार से उत्पन्न समस्त भौतिक इच्छाओं से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो लेता तब तक वह भगवान् की भक्तिमय सेवा में पूरी तरह से नहीं लग सकता। इसलिए हमें सदैव उन भगवान् नृसिंहदेव की स्तुति करनी चाहिए जिन्होंने भौतिक इच्छा के मूर्तिरूप हिरण्यकशिपु का वध किया। हिरण्य का अर्थ है "स्वर्ण" तथा कशिपु का अर्थ है "मृदु गद्दा अथवा बिछौना"। भौतिकवादी जन सदा ही शरीर को आराम देना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें विपुल स्वर्ण की आवश्यकता होती है। इस तरह हिरण्यकशिपु भौतिकवादी जीवन का पूर्ण प्रतिनिधि था। इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ भक्त प्रह्लाद महाराज के लिए तब तक अशांति का कारण बना रहा जब तक भगवान् नृसिंह देव ने उसका वध नहीं कर दिया। जो भी भक्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होने की कामना करता हो उसे नृसिंहदेव की स्तुति उसी प्रकार करनी चाहिए जिस प्रकार इस श्लोक में प्रह्लाद महाराज ने की है। (भागवतम् ५.१८.८ श्लोक तथा तात्पर्य। देखें ५.१८.१० तथा १४ भी)

यदि दास्यसि मे कामान् वशंस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्।।

"हे प्रभु, वर देने वालों में श्रेष्ठ। यदि आप मुझे इच्छित वर देना ही चाहते हैं तो आप से मेरी यही विनती है कि मेरे अन्तःकरण में कोई भौतिक इच्छा न रहे।" (भागवतम् ७.१०.७)

# विषय-सूची


प्रस्तावना ..... ix
भूमिका ..... xi

**कृष्णभावनामृत में ब्रह्मचर्य ..... १**

ब्रह्मचर्य का अर्थ ..... १
ब्रह्मचर्य के लाभ ..... २
"ब्रह्मचारी" भी एक उपाधि है ..... ३
आदि-रस ..... ५
भौतिक यौन इच्छाएं ..... ५
यौन-अपार कष्ट का कारण ..... ७
यौन सम्मोहन-आधुनिक युग का रोग ..... ९
इन्द्रियवृत्ति ..... ११
स्त्री संग पर नियन्त्रण ..... १३
भक्तिमय सेवा में मनोवृत्तियाँ ..... १८
प्रशिक्षण ..... २१
इतने अधिक विधि-विधान क्यों? ..... २२
प्रणति तथा गुरु-शिष्य सम्बन्ध ..... २३
वैराग्य, तपस्या तथा त्याग ..... २४
अनुशासन ..... २८
दृढ़ निश्चय ..... २८
उच्चतर स्वाद ..... २९
संगति ..... ३०
सरलता ..... ३४
साधन ..... ३५
नियमबद्धता ..... ३८
व्यस्तता ..... ३८
प्रचार ..... ४२
भ्रमण ..... ४२
स्वास्थ्य ..... ४३
वीर्य धारण ..... ५०
ब्रह्मचारी की वेशभूषा तथा बाह्याकृति ..... ५६
नम्रता ..... ६०
ब्रह्मचारी का सामान्य आचरण तथा स्वभाव ..... ६१
ब्रह्मचर्य - विद्यार्थी जीवन के रूप में ..... ६३
ब्रह्मचारी आश्रम (निवास) ..... ६६
निजी सम्बन्ध ..... ६८
ब्रह्मचारी नायक ..... ७१

गृहस्थ पुरुषों के प्रति मनोवृत्ति ..... ७१
महिला भक्तों के साथ व्यवहार ..... ७३
अभक्त महिलाओं के साथ व्यवहार ..... ७७
बच्चों के साथ व्यवहार ..... ७८
परिवार तथा मित्रों के साथ व्यवहार ..... ७९
अभक्तों के साथ सामान्य व्यवहार ..... ८०
अभक्तिपूर्ण आसक्तियों का परित्याग ..... ८१
युक्त-वैराग्य ..... ८३
भारत ..... ८५
काम-वासना पर विजय ..... ८६
पतन ..... १०१
हस्तमैथुन ..... १०३
समलैंगिकता ..... १०५
ब्रह्मचर्य का प्रचार ..... १०६
ब्रह्मचारी बने रहना ..... १०९
और यदि आप विवाह करने की सोच रहे हैं तो ..... ११६

**ब्रह्मचारी पाठ्यपुस्तक ..... १२४**

**ब्रह्मचर्य, विवाह, यौन आकर्षण के दोष तथा ब्रह्मचारियों से सम्बन्धित अन्य विषयों पर श्रील प्रभुपाद और अन्यों के कथन:**

श्रीमद्भागवतम् से उद्धरण ..... १२५
श्रील प्रभुपाद की अन्य पुस्तकों से उद्धरण ..... १७७
श्रील प्रभुपाद की जीवनी से सम्बन्धित कार्यों से उद्धरण ..... १८७
श्रील प्रभुपाद के पत्रों से उद्धरण ..... १९१
श्रील प्रभुपाद के प्रवचनों से उद्धरण ..... २०४
श्रील प्रभुपाद के वार्तालापों से उद्धरण ..... २१७
पारम्परिक ब्रह्मचर्य जीवन पर संक्षिप्त लेख ..... २२४
यौन का अर्थ मृत्यु ..... २२७
शाश्वत प्रेम ..... २२८
शिक्षाप्रद शब्द ..... २२९
ऋष्यशृंग की कथा ..... २३१
पतित महिलाओं तथा पुरुषों के विषय में तुलसी देवी के विचार ..... २३३
वीर्य का महत्व ..... २३४
भगवान् पर ध्यान ..... २३६
विविध ..... २३७
अन्तलेख ..... २४०
लेखक परिचय ..... २४४

# प्रस्तावना

यह पुस्तक सर्वप्रथम लगभग १५ वर्ष पूर्व अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित हुई थी। तदुपरांत यह पुस्तक अनेक भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है : रूसी, क्रोएशिअन, मनडेरिन, इटालियन, इन्डोनेशियन,पोरतुगीस, बंगाली तथा तमिल। इस कालांतर में यह पुस्तक सभी आश्रम के भक्तों, विशेषत: हरे कृष्ण आंदोलन के ब्रह्मचारियों के लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है।

वर्तमान समय में आत्म-साक्षात्कार के लिये तपस्या करने का सिद्धांत जन साधारण के जीवन से लुप्तप्राय: होता जा रहा है। उन्नत मानवीय बौद्धिकता का दुरूपयोग इन्द्रियतृप्ति के नये -नये साधनों का आविष्कार करने में किया जा रहा है जिसका परिणाम है सर्वव्यापक असंतुष्टी।

पतनोन्मुख आधुनिक युग के दुष्प्रभाव का प्रतिरोध करने के लिये कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद, अपने गुरू महाराज के आदेश पर, कृष्णभावनामृत के विज्ञान को पाश्चात्य जगत में और तत्पश्चात् अपने निष्ठ शिष्यों के माध्यम से संपूर्ण जगत में लाये।

ब्रह्मचर्य के सिद्धांत, कृष्णभावनामृत के अंतर्गत, एक महत्वपूर्ण अंग हैं। वैदिक सभ्यता के अनुसार मानव समाज को वर्गीकृत करने वाली वर्णाश्रम प्रणाली के अंतर्गत ब्रह्मचर्य आश्रम चारों आश्रमों में प्रथम तथा आधारभूत आश्रम है। हर उस स्त्री तथा पुरुष को, जो भगवद्-धाम जाने के मार्ग में ठोस प्रगति करने के प्रति गंभीर है, ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों का पालन करना चाहिये। "तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च।" ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों का पालन किये बिना, मन तथा इन्द्रियों को वश में रखने की कोई सम्भावना नहीं है। श्रील प्रभुपाद को इस बात का दु:ख था कि ब्रह्मचर्य के नियमों की शिक्षा देने वाले शैक्षणिक संस्थानों का अभाव है और वे इसको अन्य तीन आश्रमों में योग्य सदस्यों के अभाव का कारण बताते थे।[1]

यह पुस्तक सटीक शब्दों में ब्रह्मचर्य जीवन के लिए "व्यावहारिक पथप्रदर्शिका" कही जा सकती है। पुस्तक के प्रथम भाग में ब्रह्मचर्य के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा तथा अत्यन्त व्यावहारिक परामर्श का समावेश किया गया है। पुस्तक के द्वितीय भाग में ब्रह्मचर्य पर श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों, व्याख्यानों तथा पत्रों से संग्रहित उद्धरण हैं।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भारत में व्यापक रूप से फैलने के कारण अनेक हिन्दी भाषी लोग कृष्णभावनामृत के अभ्यास को अपना रहे हैं। ब्रह्मचारी आश्रम में सम्मिलित होने वाले भक्तों को ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों से सम्बन्धित सतत् उत्साह तथा मार्गनिर्देशन की

आवश्यक्ता विशेष रूप से अनुभव होती हैं। इस पुस्तक के अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं में प्रकाशित हुए प्रकरण ऐसे समस्त भक्तों के लिए वरदान सिद्ध हुए हैं और लम्बे समय से पुस्तक के हिन्दी प्रकरण की आवश्यक्ता अनुभव की जा रही थी।

अत: हम प्रार्थना करते हैं कि श्रील प्रभुपाद की कृपा से यह पुस्तक कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को ब्रह्मचर्य के सिद्धांत को गहराई से समझने तथा पालन करने में सहायता कर सके और इस प्रकार श्रील प्रभुपाद को प्रियकर तथा भक्तों एवं समाज को लाभप्रद हो सके।

परम पूज्य भक्ति विकास स्वामी महाराज को इस पुस्तक के प्रकाशन में सहायता कर पाने के लिए हम स्वयं को सौभाग्यशाली समझते हैं। ऐतिहासिक रूप से उन पुस्तकों को जिन्होंने माया के पतित जीवों को भ्रम में रखने के उसके कार्य में महान प्रतिरोध उत्पन्न किया है, अनेक अवरोधों का सामना करना पड़ा है। हमें अत्यन्त हर्ष है कि अवरोधों की लम्बी शृंखला से गुजरने के पश्चात यह पुस्तक अंतत: मुद्रित हो सकी। हम इस पुस्तक में अनजाने में हुई किसी त्रुटि के लिए पाठकों से क्षमा याचना करते हैं।

सव्यसाची दास

# भूमिका

मनुष्य जीवन, विशेषकर पुरुष रूप, आत्म-साक्षात्कार अर्थात् भगवान् श्री कृष्ण के साथ हमारे सनातन सम्बन्ध को समझने के लिए मिला है। यह पुस्तक उन पुरुषों के निमित्त है जिन्होंने कृष्णभावनामृत को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया है और विशेषकर उन भक्तों के जिन्होंने आध्यात्मिक जीवन के लिये किसी प्रशिक्षण या पृष्ठभूमि के बिना ब्रह्मचारी आश्रम में प्रवेश किया है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है ''यौन सम्बन्ध रहित जीवन।'' दुर्भाग्यवश ऐसी जीवनशैली की धारणा भी अभी तक मानव समाज के बहुत बड़े समूह के लिए दुर्बोध है, विशेषतया पाश्चात्य देशों में। वस्तुत: यद्यपि उदार मानसिकता वाले व्यक्तियों को कृष्णभावनामृत के दर्शन के मूल सिद्धान्त - भगवान् की सेवा, 'सादा जीवन-उच्च विचार' इत्यादि की व्याख्या की जा सकती है, किन्तु ब्रह्मचर्य तथा तपस्या के नियम अधिकांशों के लिए अभिशाप स्वरूप हैं। कुछ लोग तो ब्रह्मचर्य को घातक धर्मान्धता मानते हैं अथवा अधिक से अधिक एक अप्राकृतिक तथा विचित्र विचार। यह पुस्तक निश्चय ही सामान्य व्यक्ति द्वारा न तो समझी, न ही प्रशंसित होगी और न ही यह उसके लिये है।

कृष्णभावनामृत में हम सामान्य जनसमूह से पृथक हैं। उनके उदारवादिता तथा स्वच्छन्द यौनाचार के फलस्वरूप उनका समाज पूर्णतया अस्त-व्यस्त है, एक नरक। हमने भिन्न मार्ग पर चलने का निर्णय लिया है। हम उन दिग्भ्रमित व्यक्तियों को तुष्ट करने के लिए अपने नियमों के साथ समझौता नहीं कर सकते, जिन्हें इस सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं है, कि इस जीवन का एक लक्ष्य है, उसे प्राप्त करने की बात तो दूर रही। हमारा लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं, और उन्हें प्राप्त करने के लिए जो भी आवश्यक हो उसे करने के लिए हम तैयार हैं। हम भौतिक भोग रूपी मल के गर्त में क्यों गिरें? ब्रह्मचर्य वह प्रशिक्षण है जिससे ज्ञान तथा वैराग्यविद्या प्राप्त करके मनुष्य इन्द्रियों के वेग के प्रति निश्चेष्ट हो जाता है। कृष्णभावनामृत तथा वैराग्य में जीवन का आनन्द लेते हुए व्यक्ति भगवद्धाम में प्रविष्ट होने की तैयारी करता है।

यह आशा नहीं की जाती कि सारे ब्रह्मचारी सदा अविवाहित रहेंगे। परम्परागत रूप से, ब्रह्मचर्य की अवधि तो आगामी जीवन की तैयारी है। अधिकांश के लिए तो उसका अर्थ गृहस्थ जीवन तथा उसके आगे का जीवन है। निश्चय ही यदि ब्रह्मचारी दृढ़प्रतिज्ञ है, तो कोई कारण नहीं कि वह आजीवन अविवाहित नहीं रह सकता है; वस्तुत: कुछ भाग्यवान व्यक्ति अपने सारे जीवन भर ब्रह्मचारी रहने में सफल रहेंगे। किन्तु वैदिक पद्धति में चार आश्रमों की संस्तुति है और ऐसा समझा जाता है कि

अधिकांश ब्रह्मचारी अन्ततोगत्वा विवाह करेंगे। तथापि कृष्णभावनामृत में मनुष्य का प्रारम्भिक प्रशिक्षण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस आन्दोलन में सम्मिलित होने वाले नवीन भक्तों को हमें कृष्णभावनामृत के प्रति आजीवन समर्पण का दृष्टिकोण प्रदान करना चाहिए, चाहे उनकी बाह्य परिस्थिति कुछ भी हो।

अत: कृष्णभावनामृत में ब्रह्मचर्य का अर्थ मात्र विवाह होने के पूर्व कुछ समय के लिये भगवा वस्त्र धारण करना नहीं होना चाहिए ("प्रतीक्षालय")। यह तो आसक्तों (विवाह करने के इच्छुकों) तथा अनासक्तों (आजीवन अविवाहित रहने के इच्छुकों) दोनों ही के लिए गम्भीर प्रशिक्षण कार्यक्रम है। जितनी दृढ़ता से हम इसका पालन करेंगे, इससे उतना ही लाभ हमें प्राप्त होगा।

नि:सन्देह ब्रह्मचर्य जीवन का लक्ष्य नहीं है - लक्ष्य कृष्णभावनामृत है। मात्र ब्रह्मचर्य पालन करने से कोई श्री कृष्ण का शुद्ध भक्त नहीं बन सकता। वस्तुत: अनेक पूर्व विवाहित दम्पति कृष्णभावनामृत ग्रहण करते हैं तथा किसी प्रकार का ब्रह्मचारी प्रशिक्षण प्राप्त किये बिना भी निरन्तर प्रगति करते हैं।

तथापि यदि किसी को ऐसे प्रशिक्षण का सुअवसर प्राप्त होता है तो उसे उत्सुकतापूर्वक इसे अंगीकार करना चाहिए क्योंकि वैकुण्ठ पहुँचने के चिरकालिक आरोहण के लिए यह सर्वश्रेष्ठ शक्य प्रारम्भ है। नवीन तथा अनुभवहीन भक्तों के लिए प्रशिक्षण तथा व्यक्तिगत पथप्रदर्शन विशेषतया अनिवार्य हैं। इस पुस्तक का हेतु न तो व्यक्तिगत पर्यवेक्षण का विकल्प बनना है, न ही ऐसा सम्भव है। अत: यह इस प्रकार के व्यक्तिगत प्रशिक्षण के पूरक मात्र हो सकती है।

अनेक प्रकार के भक्त इस पुस्तक का अध्ययन करके लाभान्वित हो सकते हैं। गुरुकुल के छात्र तथा शिक्षक इस पुस्तक से लाभ प्राप्त करेंगे। क्योंकि बालक की गुरुकुल शिक्षा होने के बावजूद भी, वर्तमान सामाजिक वातावरण ऐसा है कि तरुणावस्था प्राप्त होने पर उसमें यौन इच्छा उसी तरह उमड़ सकती है जिस प्रकार समुद्र में तरंगें अति वेग से तट की ओर आती हैं। वह उनका सामना कैसे करेगा? यह पुस्तक उसकी सहायता करेगी।

इस पुस्तक में गुरुओं, संन्यासियों, मन्दिर के अध्यक्षों तथा अन्य वरिष्ठ भक्तों को भी पर्याप्त उपयोगी सामग्री मिलेगी जिनके लिये ब्रह्मचारियों को प्रचार करना तथा उनकी देख-रेख करना, उनकी सेवा का एक आवश्यक अंग है। निश्चय ही प्रत्येक मन्दिर का अध्यक्ष उत्साही ब्रह्मचारियों का दल रखना चाहता है, क्योंकि प्रेरित होने पर ब्रह्मचारी अद्भुत सेवा कर सकते हैं।



जीवन को पूर्ण बनाने के प्रति गंभीर गृहस्थजन भी, वानप्रस्थ आश्रम के लिये अपरिहार्य वैराग्य भाव की तैयारी में इस पुस्तक से बल प्राप्त कर सकते हैं। इस पुस्तक से भक्तिनों को, पुरुषों के साथ कैसे और क्यों सावधानी के साथ व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में अधिक सीख मिल सकती है। क्योंकि जहाँ शास्त्र बारम्बार पुरुषों को स्त्रियों के हावभाव से आकृष्ट न होने के लिये सावधान करते हैं, तो वहाँ स्त्रियों के लिये माया पुरुष के रूप में प्रकट होती है। जब तक पुरुष और स्त्री एक दूसरे के प्रति भौतिक भोग के लिए आसक्त रहते हैं, तब तक वे एक दूसरे के लिए घातक बने रहते हैं।

गृहस्थ दम्पतियों को अपने पुत्रों को ब्रह्मचारियों के रूप में प्रशिक्षित होने, उन्हें महापुरुष के साँचों में ढलने तथा इस प्रकार से उन्हें इन्द्रिय तृप्ति के पाशिक जीवन से बचाने के अपने विशाल उत्तरदायित्व से अवगत होना चाहिये।

अत: इस पुस्तक को सभी प्रकार के भक्तों द्वारा पढ़ा जाना चाहिये क्योंकि प्रत्येक प्रामाणिक भक्त ब्रह्मचारी, अर्थात आत्मसंयमी तथा कुमार होता है। वस्तुत: इस पुस्तक में अनेक स्थानों पर ब्रह्मचारी शब्द के स्थान पर भक्त शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

निश्चय ही इस पुस्तक को केवल पढ़ना और जय! कहना पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि यह तो व्यावहारिक कर्म के लिए पुकार है। यद्यपि इसमें विवेचित अनेक शिक्षाएँ विश्वभर में हमारे इस्कॉन केन्द्रों में दैनिक जीवन के अंग स्वरूप हैं, किन्तु ब्रह्मचारियों को जीवन्त रखने तथा प्रबल एवं स्वस्थ ब्रह्मचारी भाव उत्पन्न करने के लिए पुराने भक्तों से निरन्तर तथा दीर्घीकृत निवेश आदान की आवश्यकता है। अत: मैं आशावान हूँ कि यह पुस्तक अनेक वरिष्ठ भक्तों को कनिष्ठ भक्तों में व्यक्तिगत रूचि लेने के लिए प्रोत्साहित करेगी, इस तरह वे अपने निजी आध्यात्मिक जीवनों को तथा सारे आन्दोलन को पुन: पूरित करेंगे।

मैं स्वयं पूर्ण ब्रह्मचारी होने का दावा नहीं करता। उच्च मानदण्डों के विषय में लिखना प्राय: उनका पालन करने की अपेक्षा सरल होता है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि सर्वोच्च मानदण्ड को कायम रखा जाए[2], इसलिए हमें उस मानदण्ड का ज्ञान होना चाहिए और उसका अनुसरण करने का गम्भीर प्रयास करना चाहिए। यदि हम उच्च मानदण्ड बनाये रखेंगे तो निष्ठावान व्यक्ति हमारी गम्भीरता से प्रभावित होंगे। और यदि हम उच्च मानदण्ड नहीं बनाये रख सकते तो हमारे भक्त होने का क्या अर्थ?

अत: यह पुस्तक आदर्श मानदण्ड का संकेत देने के लिए है। स्पष्ट है कि विविध परिस्थितियों तथा व्यक्तियों में त्रुटियाँ होंगी और हर व्यक्ति के लिए सदैव सर्वोच्च स्तर तक पहुँच पाना सम्भव नहीं होगा। जो सारग्राही वैष्णव हैं (यथार्थवादी)[3] वे यहाँ पर

दिये गये आदेशों के सार को स्वीकार करेंगे और बुद्धिपूर्वक इसे अपने जीवन में उतारेंगे, चाहे वे कैसी भी स्थिति में क्यों न हों।

मैंने इस पुस्तक में वर्णाश्रम धर्म की उन जटिल विवेचनाओं से अपने को दूर रखा है, जो हमारे संघ के बुद्धिजीवियों के मध्य ध्यान और चिन्ता का केन्द्र बनी हुई हैं। मैंने केवल व्यवहारिक सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिन्हें ब्रह्मचारी अपने जीवन में व्यवह्रत कर सकते हैं। निःसन्देह, कुछ इसे धर्मान्धता कह कर नकार देंगे। किन्तु क्या कभी किसी ने एकान्त संकल्प के बिना कोई भी महान उपलब्धि प्राप्त की है? यौन वासना पर विजय पाना कोई सरल कार्यसिद्धि नहीं है। वस्तुतः यह तो भौतिक जगत में सबसे महान उपलब्धि है। निरुत्साह तथा अशक्त प्रयास का परिणाम हताशा ही होगा। पूर्णतः समर्पित हुए बिना कोई सफल नहीं होगा।

यह पुस्तक विशेषतया उन अनेक निष्ठावान युवकों के लिए है जो इस्कॉन में सम्मिलित हो रहे हैं, तथापि यह पुस्तक उन सभी भक्तों के लिए भी उपयोगी तथा रुचिकर होगी जो अपने आध्यात्मिक जीवन को सुधारने में गम्भीरतापूर्वक रुचि लेते हैं। आशा है कि यह पुस्तक उन ब्रह्मचारियों द्वारा भी प्रशंसित होगी जो कुछ समय से कृष्णभावनामृत में हैं, जिन्हें इस आन्दोलन तथा कृष्णभावनाभावित दर्शन की मूलभूत जानकारी है, तथापि वे अधिकतम आध्यात्मिक प्रगति करने के मार्ग निर्देशन की सराहना करेंगे। और इस पुस्तक के कुछ अंश भक्तनायकों, मन्दिर अध्यक्षों तथा अन्य वरिष्ठ भक्तों को लक्षित करके लिखे गये हैं। तथाकथित यौन सुख के स्वाँग का दार्शनिक विश्लेषण करने वाले अनुभागों तथा इस सम्बन्ध में प्रचुर व्यावहारिक परामर्श का भी समावेश इस पुस्तक में है।

मैं कठोर परामर्श देने के लिए प्रख्यात हूँ, और यद्यपि कुछ भक्त इसे अव्यवहारिक कहकर रद्द कर देते हैं, तथापि अन्य प्रशंसा करते हैं, अपने जीवन में अंगीकार करते हैं और इस प्रकार लाभान्वित होते हैं। मेरा मार्ग निर्देशन विशेषतया उन भक्तों के लिए है जो कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के प्रति गम्भीर हैं और इस हेतु त्याग करने के लिए सहमत हैं। जो व्यक्ति समझौतावादी कृष्णभावनामृत पर उपदेश चाहते हैं, वे उसे और कहीं प्राप्त कर सकते हैं। मेरी पुस्तकें उनके लिये नहीं हैं।

मैंने स्वयं के अत्यावश्यक आत्म शुद्धिकरण की दृष्टि से भी इस कार्य को स्वीकार किया है। जो मुझे जानते हैं उन्हें यह भी ज्ञात है कि मैं अब भी वास्तविक भक्त के स्तर तक पहुँचने का प्रयास कर रहा हूँ। पूर्ण साक्षात्कार का अभाव होते हुए भी मैंने अनेक सशक्त वाक्य कहे हैं। आशा है कि इन्हें पाखंड नहीं माना जाएगा।

समस्त वैष्णवों की कृपा का आंकाक्षी,

श्रील प्रभुपाद की सेवा में आपका,

**भक्ति विकास स्वामी**

# ब्रह्मचर्य का अर्थ

मूलतः ब्रह्मचर्य का अर्थ है-

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्था सु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।।

"ब्रह्मचर्य व्रत का लक्ष्य व्यक्ति को सदैव, सभी स्थितियों में तथा सर्वत्र - मन, वचन तथा कर्म से मैथुन में लिप्त होने से पूर्णतया विरक्त होने में सहायता पहुँचाना है"।[४]

श्रीधर स्वामी के श्रीमद्भागवतम् के भाष्य (६.१.१२) में ब्रह्मचर्य के आठ पक्षों का वर्णन किया गया है।

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च।।

व्यक्ति को चाहिए कि वह:

(१) स्त्रियों के विषय में मनन न करे।
(२) यौन जीवन के विषय में न बोले।
(३) स्त्रियों के साथ आमोद न करे।
(४) स्त्रियों को कामुकता से न देखे।
(५) स्त्रियों से अंतरंगता से बातें न करे।
(६) संभोग में संलग्न होने का निश्चय न करे।
(७) यौन जीवन के लिए प्रयास न करे।
(८) यौन जीवन में संलग्न न हो।[५]

ब्रह्मचर्य का अभ्यास करनेवाला ब्रह्मचारी कहलाता है। वर्णाश्रम पद्धति में ब्रह्मचारी आश्रम चार आश्रमों में - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास में पहला है।

"वैदिक नियमों के अनुसार, जीवन के प्रथम अंश का उपयोग ब्रह्मचर्य में चरित्र तथा आध्यात्मिक गुणों के विकास के लिये किया जाना चाहिए।"[६]

इस प्रकार ब्रह्मचर्य विद्यार्थी जीवन है। परम्परा से यह कठोर, अनुशासित तथा तपपूर्ण था। यह भविष्य की तैयारी का, अनुशीलन का जीवन है। समस्त आश्रमों में भक्तगण कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करते हैं, मृत्यु की परीक्षा के लिए तैयारी करते

हैं। किन्तु ब्रह्मचर्य की अवधि विशेषतया प्रशिक्षण के लिए है; इन्द्रियों तथा मन को नियन्त्रित करने का प्रशिक्षण; गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी बनने का प्रशिक्षण। यह प्रशिक्षण गुरु की शरण, सेवा तथा मित्रता करने के द्वारा होता है।[१]

वर्णाश्रम नियमों के अनुसार, ब्रह्मचर्य के सर्वोच्च मानदण्ड का अर्थ है विवाह न करके आजीवन कौमार्य रहने का व्रत लेना।[२] यह बृहद-व्रत("महान-व्रत") या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कहलाता है। "नैष्ठिक ब्रह्मचारी का अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जो कभी भी अपने वीर्य को नष्ट नहीं करता।"[३] "महाव्रतधरः यह शब्द उस ब्रह्मचारी का द्योतक है जो कभी च्युत नहीं हुआ।"[४]

भारतीय समाज में ब्रह्मचर्य को प्रायः ऐसे प्रतिबन्धों का समुच्चय माना जाता रहा है जिसका लक्ष्य, शिष्ट इन्द्रितृप्ति के चरम प्रयोजन हेतु, अच्छा स्वास्थ्य तथा नैतिक नियमों को बनाये रखना है। किन्तु कृष्णभावनामृत में ब्रह्मचर्य, ज्ञान तथा वैराग्य के भगवान् की सेवा में पूर्णरूपेण संलग्न होने के गतिशील सिद्धान्त पर क्रियान्वित होता है। श्रील प्रभुपादः "ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने वाले को पूर्णरूपेण भगवान् की सेवा में संलग्न रहना चाहिए और किसी भी प्रकार से स्त्रियों की संगति नहीं करनी चाहिए।"[५] श्रीमद्भागवतम् (७.१२.१) में दी गई ब्रह्मचर्य की परिभाषा के अनुसार, ऐसा अविवाहित पुरुष जो गुरु के आश्रम में नहीं रहता, जिसने अपने को शरणागति के कठिन जीवन के प्रति समर्पित नहीं किया है और अपने गुरु की सेवा में प्रत्यक्ष रूप से तथा अनन्य भाव से संलग्न नहीं है, सही रूप से ब्रह्मचारी होने का दावा नहीं कर सकता।

ब्रह्मचर्य का विशद अर्थ, जैसा की श्रील प्रभुपाद उद्धृत करते हैं, "ब्राह्मे चरति इति ब्रह्मचर्य", अर्थात "आध्यात्मिक स्तर पर कर्म करना है।"

## ब्रह्मचर्य के लाभ

आयुस्तेजो बलंवीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च यशस्तथा।
पुण्यता सत्प्रियत्वं च वर्धते ब्रह्मचर्यया।।

"ब्रह्मचर्य पालन से दीर्घायु, कांति, बल, ओजस्विता, ज्ञान, सौन्दर्य, यश, पुण्य तथा सत्य के प्रति अनुरक्ति में वृद्धि होती है।"[६]

ब्रह्मचर्य के अभ्यास से उत्तम स्वास्थ्य, आंतरिक बल, मन की शान्ति, सहनशीलता तथा दीर्घजीवन प्राप्त होता है। इससे शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को संरक्षित रखने में सहायता प्राप्त होती है। यह स्मरण शक्ति, इच्छा शक्ति, स्पष्ट चिन्तन, एकाग्रता तथा दार्शनिक विषयों को ग्रहण करने की क्षमता में संवर्धन करता है।



यह शारीरिक शक्ति, ओजस्विता, बल, साहस, निर्भीकता तथा चारित्रिक दृढ़ता प्रदान करता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को स्वभावतः ही दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। उसके शब्द, अर्थ तथा प्रामाणिकता प्रतिपादित करते हैं तथा वे श्रोताओं पर एक छाप छोड़ते हैं।

इसके विपरीत, वे जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते सदैव भ्रमित ही रहते हैं। श्रील प्रभुपादः "ब्रह्मचर्य नितान्त आवश्यक है। यौन जीवन से कोई जब ऊब जाता है, तब आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ होता है।"[७] "ब्रह्मचारी बने बिना कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन को समझ नहीं सकता।"[८]

## "ब्रह्मचारी" भी एक उपाधि है

श्री चैतन्य महाप्रभु ने घोषणा की, "मैं न तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हूँ। मैं न तो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी हूँ। मैं तो अपने को गोपियों के पालनकर्ता श्री कृष्ण के दास का दास मानता हूँ।"[९] जीवन का लक्ष्य न तो ब्रह्मचारी बनना है, न गृहस्थ और न ही संन्यासी। लक्ष्य तो श्री कृष्ण का शुद्ध भक्त बनना है। श्रील प्रभुपाद प्रायः 'नारद पन्चरात्र' से उद्धरण देते थेः

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
ह्रषीकेण ह्रषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।।

"शुद्धभक्ति का अर्थ है समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त होना।"

"ब्रह्मचारी" भी एक उपाधि है। यदि हम वर्ण तथा आश्रम में भेद करने पर अत्यधिक बल देते हैं, विशेषतया भक्तों के मध्य तो हम देहात्मबुद्धि में हैं। क्योंकि "मात्र ब्रह्मचर्य का पालन करके कोई परम सत्य की अनुभूति नहीं कर सकता।"[१०] भारत में मायावादी संन्यासी ऐसे कठोर यम-नियमों का पालन करते हैं जिसके विषय में अधिकांश भक्त स्वप्न भी नहीं देख सकते। किन्तु वे श्रीकृष्ण को प्रिय नहीं हैं।

चैतन्य महाप्रभु मायावादी संन्यासियों तक का आदर करते थे, जैसा कि सामाजिक शिष्टाचार था, किन्तु वे केवल भक्तों की संगति करते थे। जब चैतन्य महाप्रभु वाराणसी पधारे तो वे अनेक मायावादी संन्यासियों से दूर रहे और अपने गृहस्थ भक्तों तपन मिश्र, चन्द्रशेखर (जो जाति से शूद्र थे) तथा मराठी ब्राह्मण के संग रहे। यह देखकर मायावादी संन्यासी आश्चर्यचकित थे और इसके लिए उन्होंने महाप्रभु की आलोचना की। उन्हें वैष्णवों में परिवर्तित कर देने के बाद ही, महाप्रभु ने उनके साथ बैठना एवं प्रसाद ग्रहण करना स्वीकार किया।[११]

भक्तों की आध्यात्मिक प्रगति पर विचार करते समय चैतन्य महाप्रभु ने कभी उनकी बाह्य स्थिति पर ध्यान नहीं दिया। उनके साढ़े-तीन अन्तरंग पार्षदों में से दो (रामानन्द राय तथा शिखि माहिति) गृहस्थ थे और "आधी" एक वृद्धा (माधवी देवी) तथा एक संन्यासी (स्वरूप दामोदर) थे जिन्होंने संन्यास की बाह्य औपचारिकताओं को स्वीकार करने की भी परवाह नहीं की। भगवान् चैतन्य के अनेक प्रमुख भक्त गृहस्थ थे और कुछ तो समाज से बहिष्कृत थे। वस्तुत:, चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर को (जो मुस्लिम परिवार से थे), पवित्र नाम के आचार्य होने का आशीर्वाद मात्र यह प्रदर्शित करने के लिए दिया कि आध्यात्मिक प्रगति, वर्ण तथा आश्रम के विचारों के अनुसार आदरणीय होने पर निर्भर नहीं करती।

अत: हमें - "मैं ब्रह्मचारी हूँ" अथवा "मैं संन्यासी हूँ" इस प्रकार की बाह्य उपाधियों को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। हम सभी श्री कृष्ण के दास हैं। जीवेर 'स्वरूप' हय - कृष्णेर 'नित्य दास': "जीव की संवैधानिक स्थिति श्रीकृष्ण के नित्य दास के रूप में है।"[२८] किसी वैष्णव की सापेक्षित प्रगति मात्र उसकी श्रीकृष्ण भक्ति की गुणवत्ता द्वारा ज्ञात की जा सकती है। वर्ण तथा आश्रम का महत्व नगण्य है।[२९]

तथापि, हमारी वर्तमान स्थिति में, ब्रह्मचर्य को कृष्णप्रेम प्राप्त करने के साधनों के एक आवश्यक अंग के रूप में महत्व दिया जाना चाहिए। हमारी वर्तमान नवदीक्षित स्थिति में, जब तक हम अपनी इन्द्रियों को वश में करने का कठोर कार्यक्रम नहीं बनाते तो उच्चतर पद तक पहुँचने की कभी भी कोई सम्भावना नहीं हो सकती।

"मनुष्य अपने मूल ज्ञान को पुन: जीवित करने के लिए कतिपय नियमों के अनुसार प्रशिक्षित होने के लिए है। ऐसा नियमबद्ध जीवन तपस्या कहलाता है। मनुष्य, तप तथा ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने, मन को वश में करने, इन्द्रियों को नियन्त्रित करने, दान में अपनी सम्पत्ति देने, सत्य का व्रत लेने, स्वच्छ रहने तथा योगासन का अभ्यास करने से क्रमश: वास्तविक ज्ञान के मानदण्ड अर्थात कृष्णभावनामृत को प्राप्त कर सकता है... जब तक कोई अपनी इन्द्रियों का स्वामी न बन जाए उसे गोस्वामी नहीं अपितु गो दास यानि इन्द्रियों का दास कहा जाना चाहिए। वृन्दावन के षड्गोस्वामियों के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए सभी स्वामियों तथा गोस्वामियों को भगवान् की दिव्य प्रेममयी भक्तिसेवा में पूर्णरूपेण संलग्न होना चाहिए। इसके विपरीत, जो गो दास हैं वे इन्द्रियों की सेवा में या भौतिक जगत की सेवा में मग्न रहते हैं। उनके पास कोई अन्य कार्य नहीं रहता। प्रह्लाद महाराज ने तो गो दास को अदान्त-गो से संबोधित किया है जिसका अर्थ होता है वह व्यक्ति जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं। अदान्त-गो कभी भी श्रीकृष्ण का दास नहीं बन सकता।"[३०]



## आदि-रस

भौतिक जगत में यौन इतनी प्रबलता से व्याप्त है कि यह प्रश्न उठना ही चाहिए कि यह यौन इच्छा कहाँ से आती है? इसका उत्तर है कि यौन ईश्वर से उत्पन्न होता है। आध्यात्मिक जगत में श्रीकृष्ण तथा उनकी पत्नियाँ स्वत: ही एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं और प्रेमलीला विलास करते हैं। इसे आदि रस अर्थात आदि तथा वास्तविक यौन इच्छा कहा जाता है, जो आध्यात्मिक विनिमय का सर्वोच्च स्तर है। यह आदि रस सभी प्रकार के भौतिक कल्मष से मुक्त है और भौतिक यौन से उतना ही पृथक है जितना कि स्वर्ण लौह से।[३१]

जो भक्तगण सभी प्रकार की भौतिक इच्छा से मुक्त हैं और आध्यात्मिक ज्ञान के सर्वोच्च पद पर स्थित हैं यथा शुकदेव गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा रामानन्द राय उन्होंने आदि रस की प्रशंसा की है और उसका गुणगान किया है। वस्तुत: स्वयं श्रीकृष्ण इस आदि रस की पूर्ण मधुरता का आस्वादन करने के लिए श्रीमती राधारानी का भाव ग्रहण कर श्रीचैतन्य महाप्रभु का स्वरूप स्वीकार करते हैं। जब यह दुर्बोध सेवा भाव श्रीकृष्ण के भोग के प्रति ईर्ष्यालु व्यक्तियों द्वारा विकृत किया जाता है तो यह घृणित भौतिक यौन इच्छा के रूप में उत्पन्न होता है और बद्ध जीवों को मोहित करता है तथा महत्वाकांक्षी आध्यात्मवादी के लिए सदैव उपस्थित एक खतरा बनता है।

ऐसा क्यों है कि ज्ञानी तथा योगी भौतिक इच्छाओं का दमन करने के लिए कठिन प्रयास करते हुए महान तपस्या करते हैं किन्तु अनेक जन्मों के बाद भी अल्प प्रगति ही कर पाते हैं? ऐसा क्यों है कि नवदीक्षित भक्त, भगवन्नाम का जप तथा भगवान् से प्रार्थना करने पर भी किसी भी समय च्युत हो सकते हैं? यह यौन इच्छा के कारण है। आदि रस की विकृत अभिव्यक्ति भौतिक यौन इच्छा है जो आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग में मुख्य अवरोध है।

## भौतिक यौन इच्छाएँ

इस भौतिक जगत में बद्धात्मा उन्मत्त अवस्था में है। नूनं प्रमत्त: कुरुते विकर्म।[३२] वह श्रीकृष्ण से अपने शाश्वत, आनन्दमय सम्बन्ध को विस्मृत कर, माया द्वारा लात खाकर तथा थूका जाकर जन्म-जन्मान्तर कष्ट उठा रहा है। किन्तु इसे सुख समझते हुए, वह हँस रहा है। ऐसा क्यों? क्योंकि वह मिथ्या सुख की चमकदमक से मोहित है जिसका आरम्भ यौन सुख से होता है। यौन इच्छा बद्धात्मा द्वारा प्रदर्शित उन्माद का मुख्य लक्षण है।

ऐसे मूर्ख जीव सदा से विपरीत लिंगी द्वारा आकर्षित होते हैं। युवावस्था के आते ही युवकगण, विशेषतया वे जिन्हें प्रशिक्षण नहीं मिला, यौन इच्छाओं से अभिभूत हो जाते हैं। वे विपरीत लिंगियों के साथ घुलने मिलने तथा उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के हर अवसर का उपयोग करते हैं। यद्यपि उन्हें ऐसा करने के गिने चुने ही अवसर मिल पाते हैं, किन्तु उनकी चेतना सदैव विपरीत लिंगियों के शरीर का स्पर्श करने, उनके नग्न शरीर देखने तथा संभोगरत होने के विचारों में मग्न रहती है। वे कहते हैं 'प्रेम' किन्तु उनमें रहती है मात्र कामवासना।

यहाँ तक कि समाज के मर्यादायुक्त सदस्य, जिनके जीवन का मुख्य कार्य स्थूल यौन कामवासना का संवर्धन नहीं है, वे भी विपरीत लिंगी साथी के शरीर का भोग करने की कल्पना से मोहित हो सकते हैं क्योंकि यौन का विचार कभी भी बद्धात्मा के मन से दूर नहीं होता।

किन्तु तात्विक रूप से किसी भी भौतिक देह के विषय में कुछ भी सुन्दर नहीं है। यहाँ तक कि सुन्दरियों के शरीर भी मात्र चमड़े के थैले हैं जिनमें दुर्गंधयुक्त, घृणित पदार्थ भरे रहते हैं। मांसपेशियाँ, अस्थियाँ, चर्बी, यकृत, हृदय तथा आँत के रूप में सम्मिलित रक्त, कफ, पित्त, मल तथा मूत्र - इन्हीं के साथ वे संभोग कर रहे हैं। यौन सुख दो मूत्र उत्पादक अंगों के मिलन का सुख है। तथापि माया की प्रबल शक्ति से त्वचा तथा मांस की एक व्यवस्था सारे तर्क तथा विवेक का उल्लंघन करके बुद्धिमान व्यक्ति को भी कुत्ते के स्तर पर ला देती है। जिस तरह सुअर सुअरी के प्रति आकृष्ट होता है या नर तिलचट्टा मादा तिलचट्टे से आकृष्ट होता है, एक नर (मनुष्य) का नारी के प्रति यौन आकर्षण भी वैसा ही है। यह सुअरों के आकर्षण से तनिक भी श्रेष्ठतर नहीं है।

यौन के विषय में वास्तव में कुछ भी विशेष नहीं है। यह न तो अद्‌भुत है, न कुलीन है, न औपन्यासिक है - यह तो केवल एक शारीरिक क्रिया है, एक साधारण प्राकृतिक अनुभूति की प्रतिक्रिया। यदि आप इसके बारे में गम्भीरता से सोचें तो यौन का पूरा परिदृश्य ही मूर्खतापूर्ण लगता है। तथापि हर प्राणी इसमें लिप्त है। अमरीका का राष्ट्रपति भी इसे कर रहा है, सड़क का भिखारी भी इसे कर रहा है, कुत्ते और बिल्लियाँ भी इसे कर रहे हैं। केवल गिने चुने महात्मा ही इस पर विजय पाने का प्रयास कर रहे हैं।

मानव समाज में यौन इच्छा अनेक रूपों में व्याप्त है यथा - लाभ, स्तुति तथा यश। तथाकथित सभ्यता के सभी अंग यथा - समाज, मैत्री, प्रेम, घर, कारें, वस्त्र,



पद, शक्ति, प्रतिष्ठा, धन इत्यादि केवल इस पाश्विक मूल प्रवृति, जिसे यौन इच्छा कहते हैं, के ही विस्तार तथा बढ़ावे के लिए हैं। अपनी बाह्य चमक-दमक के बावजूद, यह मानव समाज जब तक वास्तविक सौन्दर्य, जो कि श्रीकृष्ण हैं, को नहीं खोजता तब तक वह सुअरों या अन्य पशुओं से तनिक भी परे नहीं है।

और उनके द्वारा इस पर इतना बल देने के बावजूद भी, जैसा कि सर्वेक्षण बताता है, अनेक कर्मी संभोग के समय वास्तव में ऊब जाते हैं। तब वे उसे त्याग कर कृष्णभावनामृत को ग्रहण क्यों नहीं करते, जो कि जीवन का वास्तविक अमृत है? ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्हें इससे श्रेष्ठतर कुछ भी ज्ञात नहीं है, वे अपने को बदलना नहीं चाहते और वे इस दुराशा में रहते हैं कि संभोग से वे सुखी होंगे।

जो भाग्यशाली हैं वे जीवन की वास्तविक प्रगति हेतु कृष्णभावनामृत ग्रहण करेंगे। कृष्णभावनामृत स्थूल भौतिकतावादियों की विकृतियों तथा ज्ञानियों एवं योगियों के व्यर्थ प्रयासों से अत्यन्त परे है। यहाँ तक कि एक नवदीक्षित भक्त भी कामवासना पर शनैः शनैः विजय प्राप्त करने के प्रति आश्वस्त हो सकता है क्योंकि उसके पास सही विधि है; अपने प्राकृतिक वास्तविक प्रेम - श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम को पुनः जीवन्त करना। यदि वह इस पथ पर दृढ़ रहता है तो समय बीतने पर वह पूर्ण कृष्णभावनामृत प्राप्त कर लेगा। तब वह सदा के लिए पूर्णरूपेण तुष्ट हो जाएगा। ब्रह्मचर्य का हेतु इन विषयों में सुस्पष्ट, भावुकता रहित, दृढ़ समझ को, आध्यात्मिक जीवन में तीव्र एवं सुदृढ़ प्रगति के आधार रूप में विकसित करना है।

इस पुस्तक में दिए गए सभी परामर्श इस समझ पर आधारित हैं कि यौन हमें कभी सुखी नहीं बना सकता; केवल श्रीकृष्ण ही हमें सुखी बना सकते हैं। जो भक्तगण श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों का नियमित अध्ययन करते हैं वे अपने हृदयों में इस समझ को जीवन्त बनाये रख सकते हैं। तब आध्यात्मिक जीवन के समस्त विधि-विधानों का पालन स्वतः होने लगेगा।

## यौन - अपार कष्ट का कारण

"विभिन्न प्रकार की आसक्तियों से उत्पन्न समस्त प्रकार के कष्टों तथा बन्धनों में सर्वाधिक है - स्त्रियों के प्रति आसक्ति तथा स्त्रियों के प्रति आसक्तों के घनिष्ठ सम्पर्क से उत्पन्न कष्ट तथा बन्धन।"[२३]

चूँकि यौन अनुभव तथा वेग इतने तीव्र होते हैं और इसके चारों ओर फैला नर-नारी के सम्बन्धों का समूहजाल इतना जटिल होता है कि यह बद्धात्मा के ध्यान

को श्रीकृष्ण से विमुख करता है और उसे माया की अन्य सभी चालों की अपेक्षा अधिक विमोहित करता है। मूढ़ बद्धात्मा यौन का भोग करते हुए कभी तो परम आह्लाद का अनुभव करता है; तो कभी हताश होकर कामाग्नि में जलता है। अथवा प्रेमिका द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर मानसिक क्लेश सहता है जो कभी-कभी इतना तीक्ष्ण होता है कि वह प्रेमिका को या स्वयं को या दोनों को मारने के लिये उद्यत हो जाता है। ऐसे साथी, जिसके साथ कोई गहन भावनात्मक रूप से आसक्त रहा हो, की मृत्यु या अन्य कारणों से क्षति, सहसंगी के हृदय को शोकमग्न कर डालती है। विशेषकर हमारे निकृष्टतम् पतित आधुनिक समाज में, सहस्त्रों व्यक्तियों के जीवन, अन्यों द्वारा उनके शरीर का बलपूर्वक या छल से शोषण किये जाने के कारण छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

मानव समाज में सबसे बड़ी भ्रांति यही है कि यौन सुख का कारण है और व्यक्ति अपने यौन जीवन को संयमित करके अथवा उसमें वृद्धि करके सुखी हो सकता है। वास्तविकता तो यह है कि सत्य इसके विपरीत है: जो जितना अधिक यौन में संलग्न होता है वह उतना ही भौतिक जीवन की क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं की जटिलताओं में आबद्ध हो जाता है। परिणामस्वरूप, स्वच्छन्द भोक्ता, अन्ततोगत्वा पशु-योनि में जन्म लेता है जहाँ उसे अपने यौन कार्यकलापों के लिए अत्यल्प प्रतिबंधों के साथ श्रेष्ठतर सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। अनेक जन्मों में बारम्बार वह ८४,००,००० प्रकार का यौन सुख इच्छानुसार भोग सकता है। उसे विभिन्न प्रकार के जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों का भी अनुभव मिलेगा। और वह कभी भी सुखी नहीं हो सकेगा।

बहु विज्ञापित यौन सुख वास्तविकता से अधिक कल्पनामय है। लोग सोचते हैं कि यौन उन्हें आनन्द देगा किन्तु वास्तविक क्रिया तो कुछ क्षणों में ही समाप्त हो जाती है और मन में जितनी कल्पना की गई थी उससे कहीं कम इन्द्रियतृप्ति होती है। अन्ततोगत्वा इससे आनन्द की अपेक्षा अधिक कष्ट ही प्राप्त होता है।

शारीरिक स्तर पर भी, यौन अशक्त करने वाला तथा घातक भी हो सकता है। इन्द्रिय भोक्ता भूल जाते हैं कि "शरीर, जो यौन सुख का वाहन है वही कष्ट, रोग और मृत्यु का भी वाहन है।"[२४] रक्त की साठ बूँदों से वीर्य की एक बूँद का निर्माण होता है; यही नहीं, यौन जीवन में सूक्ष्म जीवन शक्ति(प्राण) का भी अत्यधिक क्षय होता है। संभोग के समय श्वास की तीव्र गति भी मनुष्य के जीवनकाल का ह्रास करती है क्योंकि कोई व्यक्तिविशेष अपने जीवन काल में कितनी बार श्वास लेगा यह उसके जन्म के समय ही निश्चित हो जाता है(इसीलिए योगीगण अपने जीवन के समय में



वृद्धि करने के लिए श्वास को सीमित करने का अभ्यास करते हैं)। इसके अलावा यौन सम्प्रेषित रोगों का खतरा रहता है जो अत्यन्त कष्टप्रद तथा वीभत्स होते हैं। यही नहीं, कोई व्यक्ति यौन में जितनी अधिक रुचि लेता है उतना ही वह अपने सद्गुणों को गँवाता है। क्योंकि कामवासना से सभी अन्य दुर्गुण यथा लोभ, स्वार्थ, घृणा तथा निर्दयता उत्पन्न होते हैं। श्रील प्रभुपाद: "यौन जीवन, भौतिक अस्तित्व की पृष्ठभूमि है। असुरों को यौन जीवन अति प्रिय होता है। जो जितना ही यौन इच्छा से मुक्त होता है वह उतना ही देवताओं के स्तर को प्राप्त करता है; जो यौन का भोग करने के लिए जितना प्रवृत्त होता है वह उतना ही आसुरी जीवन के स्तर तक नीचे गिरता है।"[२५]

एक कामुक व्यक्ति न केवल यौन भोग में अपितु इन्द्रियतृप्ति के अन्य सभी प्रकारों में भी अत्यधिक रुचि रखने वाला हो जाता है। यद्यपि ऐसे व्यक्ति सामान्यतया यथोचित रूप से कार्य करते प्रतीत होते हैं किन्तु वस्तुत: वे सभी आत्मकेन्द्रित एवं स्वार्थी होते हैं- वे स्वयं के लिये क्या मिल सके इसी की ताक में रहते हैं। इसलिए श्रीमद्भागवतम् (५.१८.१२) का निष्कर्ष है कि अभक्तों में कोई सद्गुण नहीं होता, भले ही ऐसा प्रतीत होता हो। लोभ, ईर्ष्या तथा पारस्परिक शोषण के जाल में फँसे ये लोग, सामाजिक शिष्टता का मात्र दिखावा करते हुये, स्वयं तो कष्ट भोगते ही हैं, अन्यों को भी कष्ट पहुँचाते हैं। आज की "सर्वप्रथम मैं" पीढ़ी - उपभोक्तावादी लोभ तथा काम की आधारशिला पर खड़ा किया गया पूरा समाज जिसकी नैतिकता "जितना हड़प सको हड़प लो" तक सीमित है, में यह विशेषरुप से व्याप्त है।

## यौन सम्मोहन–आधुनिक युग का रोग

आधुनिक समाज को यौन का प्रबल भूत सवार है। स्वच्छन्द मैथुन पर इस प्रकार अविरत रूप से बल दिया जाता है कि जो व्यक्ति इसमें अत्यधिक रुचि रखता प्रतीत नहीं होता वह सामान्यतया सनकी माना जाता है। सामाजिक दबाव लोगों को युवावस्था के अतिकामुक भाव के शांत हो जाने के दीर्घकाल के बाद भी कामवासना को तरूण बनाये रखने के लिए प्रेरित करता है। इस तरह लाखों लोग आजीवन भावात्मक रूप से अपरिपक्व रहते हैं। यह रुग्ण संसार है।

कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध से अनभिज्ञ तथा द्रुतगति से परिवर्तित होते समाज में, जिसके नैतिकता के मापदण्ड अस्थायी हैं, अपनी सामाजिक स्थिति के विषय में अनिश्चित, सामान्यजन, अपनी एक पहचान के लिये व्याकुल हैं - एक ऐसी छवि जो स्वयं को प्रिय हो तथा जो अन्यों द्वारा आदरणीय हो। पाठशालाओं, प्रचार माध्यमों

तथा मौखिक रुप से पुनः पुनः चित्रित छवि का सार मात्र यौन आकर्षण है। जनता के मनोभावों तथा आचरण को परिवर्तित करने की प्रचार माध्यमों की शक्ति दयनीय किन्तु प्रमाणित तथ्य है। यदि सामान्य व्यक्ति का मन सदैव यौन विचारों में लीन न भी हो तब भी प्रचार माध्यम ऐसा होना निश्चित कर देते हैं।

विशेषतया विज्ञापन उद्योग अथक रूप से वस्त्राभूषित तथा नग्न स्त्रियों के चित्रों को पत्रिकाओं में, सूचनापटलों पर, टी.वी. पर, सदैव तथा सर्वत्र दिखलाता ही रहता है। पहले से ही अत्यन्त धनी कुछ लोगों को और अधिक धनी बनाने के लिए, स्त्रियों के शरीरों तथा पुरुषों की निम्नतम उत्तेजनाओं का खुलेआम शोषण करने पर भी उनके कार्य अक्सर बिना किसी आपत्ति के जारी रहते हैं। सामान्य जनता उनके प्रचार को ग्रहण करके सदैव कामुकता में निमग्न रहती है, क्योंकि उन्हें इसका प्रतिरोध करने की आवश्यकता का ज्ञान ही नहीं है। इस प्रकार वासनायुक्त विज्ञापन, भोली जनता को, बिना सोचे समझे, पीठ साफ करने के ब्रश से लेकर शराब तक सब कुछ खरीदने के लिये प्रलोभित करते हैं। इस तरह उपभोक्ता समाज, सदैव कामुकता के भँवर जाल में उसके सदस्यों के साथ चलता जाता है।

लेकिन, इन्द्रियों का निरन्तर हर्षोत्तेजन चेतना को अधिकाधिक क्षीण करता है। अतः सभी फिल्मी आशाओं के बावजूद, लोग स्वयं को वास्तविक आनन्द से वंचित पाते हैं। तरुणावस्था में, जब इन्द्रियाँ उल्लास भोग करने की असीम शक्ति वाली प्रतीत होती हैं, इन्द्रियभोग के द्वारा सुख की प्राप्ति न केवल एक सुस्पष्ट सम्भावना प्रतीत होती है अपितु जीवन की सार्थकता भी। किन्तु युवावस्था का आनन्द, जैसा कवि पश्चाताप करते हैं, क्षणिक आनन्द है। शरीर द्वारा भोग करने की सामर्थ्य एक जलशिक्त स्पन्ज जैसी है। प्रारम्भ में यदि इसे थोड़ा भी निचोड़ा जाए तो जल द्रुतगति से निकलता है। किन्तु इसे जितना ही अधिक निचोड़ा जाता है तो उससे क्रमशः अल्प मात्रा में कुछ बूंदें भी प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

इसी प्रकार यौन भोग के प्रयास अधिकाधिक रिक्तता तथा हताशा को जन्म देते हैं। तथापि अधिकांश लोग यौन भोग की सीमाओं को पहचान नहीं पाते। दिगभ्रमित शिक्षा के कारण वे सोचते हैं कि यौन सें संतुष्टि न हो पाने का अर्थ है कि उनके प्रयास में कोई त्रुटि है। फलस्वरूप या तो वे किसी मनोवैज्ञानिक की शरण में जाते हैं अथवा यौन जीवन सुधारने का दावा करने वाली पुस्तकें (यथा योग फॉर सेक्स, ताओ फॉर सेक्स, दी मोडर्न वीमेन्स गाइड टू सेक्स, ए डॉक्टर्स सेक्स सीक्रेट्स, डॉइट



फॉर बेटर सेक्स, इत्यादि।) पढ़ते हैं। किन्तु वे आनन्द के लिए जितना अधिक प्रयास करते हैं, उससे उतने ही ठगे जाते हैं। स्वयं को वो सुख प्रदान करने के लिए प्रचण्डता से अपने शरीरों को प्रयुक्त करते हुए जिसे वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं, वे प्रायः हस्तमैथुन, उन्मुक्त सहवास, अश्लीलता, नाना प्रकार की विकृतियों एवं अंततः हिंसा पर उतर सकते हैं।

वास्तविक सभ्यता अपने सदस्यों को यौन इच्छाओं को उच्चतर आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए दमन करने का प्रशिक्षण देती है। आधुनिक सभ्यता लोगों की यौन लालसाओं का दुरुपयोग करके उससे व्यापार चलाती है और लाखों लोगों को नरक पहुँचाती है।

यह सब देखकर वैष्णवजन दुःखी हैं। वे जानते हैं कि जीव श्रीकृष्ण का नित्यदास है। हमारी यौन इच्छा हमारे हृदय के अंतरतम में श्रीकृष्ण को प्रेम करने की इच्छा का विकृत प्रतिबिम्ब मात्र है। केवल इस साधारण सिद्धांत को जानने से सम्पूर्ण विश्व सुखी हो सकता है। किन्तु आधुनिक युग के अन्धकार में किसी को यह आश्वस्त कर पाना अत्यन्त कठिन है कि यौन के साथ भी कुछ त्रुटियाँ हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों का यह महान उत्तरदायित्व है कि संसार के लोगों को येन-केन-प्रकारेण यह वास्तविक ज्ञान दें। श्रील प्रभुपादः "कृष्णभावनामृत आन्दोलन को इतिहास इस रूप में स्मरण करेगा कि इसने सबसे अंधकारमय घड़ी में मानवता की रक्षा की।"

## इन्द्रियतृप्ति

समस्त मानवीय विश्वासों में सबसे गहरा एवं व्यापक भ्रम है यह विचार कि हम अपनी इन्द्रियों के सुख, विशेषकर समस्त सुखों के प्रतिरूप, संभोग या यौन प्रेम से, आनंद प्राप्त कर सकते हैं। परम्परागत धर्मों के विघटन तथा धर्मनिरपेक्ष दर्शनों की अधिकृत स्थापना के कारण इस भ्रम ने सम्मोहन का रूप धारण कर लिया है।"[२५]

यौन इच्छा स्पर्श की अनुभूति पर आधारित है। यह आनंद भौतिक जगत में सर्वोच्च और इसलिये उसकी प्रमुख बंधनकारी शक्ति है। किन्तु अन्य पाँच इन्द्रियाँ भी हैं: ये हैं देखने, सूंघने, स्वाद लेने, सुनने की इन्द्रियाँ तथा मन। इनमें से कोई एक भी विवेकी व्यक्ति, जो उन पर नियन्त्रण प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा हो, के मन को भी पथभ्रमित कर सकती है।[२७] यही नहीं, "प्रत्येक इन्द्रिय की अनेक इच्छाएँ शेष होती हैं।"[२८] इन्द्रियों का आकर्षण अत्यन्त प्रबल तथा घातक होता है।

इतने पर भी इन्द्रियतृप्ति में कोई वास्तविक आनन्द नहीं है। इसके विपरीत, भौतिक आनन्द में पीड़ा निहित है। "इन्द्रियों तथा इन्द्रिय विषयों के मेल से प्राप्त होनेवाला सुख सदैव दु:ख का कारण होता है।"[२९] तथा "ज्यों-ज्यों शरीर इन्द्रियतृप्ति में रत होता है त्यों-त्यों वह प्रतिदिन क्षीण होता जाता है।"[३०]

वास्तविक सुख का अर्थ है कृष्णभावनामृत अर्थात आत्मा का आनन्द। भौतिक जीवन का तथाकथित सुख मात्र मनोकल्पना है। "जहाँ तक चंचल मन की उत्तेजनाओं का सम्बन्ध है, वे दो प्रकार की होती हैं। प्रथम अविरोध-प्रीति, अर्थात अनिर्बन्धित आसक्ति, और दूसरी विरोधयुक्त-क्रोध, अर्थात हताशाजनित क्रोध। मायावादियों के दर्शन का पालन, कर्मवादियों के कर्मफल में विश्वास तथा भौतिकवादी इच्छाओं पर आधारित योजनाओं में विश्वास - ये अविरोध-प्रीति कहलाते हैं। सामान्यतया ज्ञानी, कर्मी तथा भौतिकवादी योजना-निर्माता बद्धजीवों का ध्यानाकर्षण करते हैं किन्तु जब भौतिकवादी उनकी योजनाओं को पूर्ण करने में असफल रहते हैं और जब उनकी युक्तियाँ विफल हो जाती हैं तो वे क्रुद्ध हो जाते हैं। भौतिक इच्छाओं के विफल होने से क्रोध उत्पन्न होता है।"[३१]

"मन की तुष्टि मन को इन्द्रियभोग के विचारों से दूर रखकर ही प्राप्त की जा सकती है। मन जितना ही इन्द्रियतृप्ति में रमता है उतना ही अधिक असन्तुष्ट होता है।"[३२]

यह समझकर आध्यात्मवादी इन्द्रियतृप्ति त्याग कर तपस्या करता है। किन्तु आध्यात्मिक जीवन के यम-नियमों का अभ्यास करके इन्द्रियतृप्ति का परित्याग करना भी पर्याप्त नहीं हैं - हमें इन्द्रियतृप्ति का ध्यान करना भी त्यागना होगा। जब तक हम इस भौतिक जगत का भोग करने की समस्त आशाओं का संपूर्ण परित्याग नहीं कर देते तब तक हम अपनी बुद्धि को सुस्थिर नहीं कर सकते: तब तक हमें उतार-चढ़ाव देखने होंगे और हम कृष्णभावनामृत के वास्तविक आनन्द का आस्वादन नहीं कर पाएँगे।

श्रील प्रभुपाद: "यदि हमारा मन इन्द्रियतृप्ति के लिए लालायित है तो हम इन्द्रियतृप्ति के विषय को निरन्तर अभ्यास के द्वारा भी नहीं भुला सकते भले ही हम में कृष्णभावनामृत की वांछा हो।"[३३] तथा "चैतन्य-चरितामृत में कहा गया है कि यदि कोई निष्ठाभाव से भगवान् का दर्शन करना चाहता है और साथ-साथ इस भौतिक जगत का भोग भी करना चाहता है तो वह निरा मूर्ख समझा जाता है।"[३४] इसलिए, "अध्यात्मवादियों का कर्तव्य है कि वे इच्छा को नियन्त्रित करने का भरसक प्रयत्न करें।"[३५]



## स्त्री-संग पर नियन्त्रण

यद्यपि इतिहास के प्रभातकाल से भौतिकतावादियों ने स्त्रियों से व्यवहार के विषय में सैकड़ों ग्रन्थ लिखे हैं तथापि अभी तक यह उनके लिए रहस्य बना हुआ है। विशेषतया यदि स्त्रियों को इन्द्रिय भोग की वस्तु मान लिया जाए तो उनके साथ सम्बन्ध अत्यन्त जटिल बने रहते हैं: प्रारम्भ में अमृत और अन्त में विष। ब्रह्मचारी को स्त्रियों का संग करने का कोई वास्तविक प्रयोजन नहीं है - जितना आवश्यक हो, उसे भी वह यथासंभव अल्पकालिक रखता है। वह जानता है कि पुरुष का देह आत्म-साक्षात्कार के लिए है और नारी रूप के प्रति आकर्षण ऐसी आध्यात्मिक प्रगति को अवरुद्ध कर देता है।

इसलिये वैदिक संस्कृति ने सदा ही स्त्री तथा पुरुषों के मिलन पर सावधानीपूर्वक प्रतिबन्ध लगाये हैं। पारम्परिक ब्रह्मचारीगण अधिकांश समय स्त्रियों को देख ही नहीं सकते थे क्योंकि वे अपने अध्ययन में व्यस्त रहते थे। सभी स्त्रियों को माता कहकर सम्बोधित करते हुए, उनका एकमात्र सम्बन्ध उनके गुरु की पत्नी से हो सकता था, जो वास्तविक माता की अनुपस्थिति में बालकों की देखभाल करती थी। तब भी कुछ प्रतिबन्ध थे, विशेषकर तब जब बालक तरुणावस्था को प्राप्त कर लेते थे और यदि गुरु पत्नी तरुण होती थी। ब्रह्मचारीगण अपने जीवन के प्रथम पच्चीस वर्षों तक किसी युवती को देखते ही नहीं थे।[३६] वानप्रस्थजन, कठोर व्रतों का पालन करते हुए, अपनी वृद्धावस्था की ओर अभिमुख पत्नियों के संग रहते, परन्तु संन्यासियों का स्त्रियों से संग शून्य होता था। यहाँ तक कि गृहस्थों को भी सीमित संगति की ही अनुमति थी। केवल शूद्रों तथा जाति बहिष्कृतों (..अर्थात वे जिनके जीवन में कोई उच्चतर मूल्य न हों)के लिए ही स्त्रियों के साथ स्वच्छन्द मेल-जोल की छूट होती थी।

जो लोग आध्यात्मिक प्रगति में रुचि रखते हों, उनके लिए स्त्रियों की संगति न्यूनतम होनी चाहिए। स्त्री की उपस्थिति में पुरुष की चेतना में परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि यदि किसी कक्ष में अनेक गंभीर ब्रह्मचारी उपस्थित हों और किसी कारणवश कोई सती भक्तिन उस कक्ष में प्रविष्ट हो, तो पुरुषों की मानसिकता जाने-अनजाने बदल जाएगी। वे अपने शब्दों तथा कार्यों में आत्म-सचेत बन जाएंगे। अत: हमारे दार्शनिक रूप से यह जान लेने के बाद भी, कि हम सभी आत्मा हैं, और हमारी सभी औपचारिकताओं को त्याग कर उदार होने की इच्छा एवं स्त्रियों के साथ समान व्यक्ति के स्तर पर व्यवहार करने की इच्छा होने पर भी, शास्त्र हमे ऐसा करने के लिये मना करते हैं।

"जब तक जीव पूर्णतया स्वरूपसिद्ध नहीं होता - जब तक वह स्वयं को शरीर, जो आदि शरीर तथा इन्द्रियों का प्रतिबिम्ब मात्र है, मानने की भ्रांत धारणा से मुक्त नहीं होता - तब तक वह द्वैतभाव से मुक्त नहीं हो सकता - जिसका सार पुरुष तथा स्त्री की द्वैतात्मकता है। इसलिए उसके पतन के संपूर्ण अवसर होते हैं क्योंकि उसकी बुद्धि मोहित है।"[३७]

इस श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद विवेचना करते हैं, "मनुष्य को चाहिए कि वह पूर्णता से इस तथ्य को समझे कि वह एक जीवात्मा है और वह नाना प्रकार के भौतिक शरीरों का आस्वादन कर रहा है। व्यक्ति सैद्धान्तिक रूप से इसे समझ सकता है, किन्तु जब उसे व्यवहारिक अनुभूति होती है तो वह पण्डित बन जाता है-अर्थात वह जो जानता है। तब तक द्वैतभाव बना रहता है और पुरुष तथा स्त्री की धारणा भी बनी रहती है। इस अवस्था में मनुष्य को स्त्रियों से संग करने में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। किसी को भी स्वयं को पूर्ण नहीं सोचना चाहिए और इस शास्त्रीय आदेश की, कि मनुष्य को अपनी पुत्री, माता, या बहन तक से संग करते समय सावधान रहना चाहिए, अन्य स्त्रियों का तो कहना ही क्या, अवहेलना नहीं करनी चाहिए।"

कृष्णभावनामृत में पुरुष अच्छा होता है और स्त्री भी अच्छी होती है किन्तु बद्ध अवस्था में इनका मिलन सदैव घातक होता है।[३८] पछताने से अच्छा है कि सावधान रहा जाए। इस्कॉन के इस अल्पकालिक इतिहास में हमने कई दिग्गज निष्ठावान भक्तों (जिनमें संन्यासी भी सम्मिलित हैं) को स्त्रियों के साथ व्यवहार में लापरवाही तथा ढील के कारण च्युत होते देखा है। "हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में यह परामर्श दिया जाता हैं कि संन्यासी तथा ब्रह्मचारीगण दृढ़तापूर्वक अपने को स्त्रियों की संगति से दूर रखें जिससे वे पुनः कामवासनाओं के शिकार बन कर च्युत न हों।"[३९]

यह भौतिक जगत् इस तरह से रचित है कि जब तक कोई जंगलों या पहाड़ों पर न चला जाए उसे विपरीत लिंगियों से किसी न किसी प्रकार का व्यवहार करना पड़ता है। आधुनिक जगत में ब्रह्मचारियों के लिए कोई सुरक्षा नहीं है क्योंकि पुरुष-स्त्री के सम्बन्ध अत्यधिक उन्मुक्त हैं (जो नारकीय जीवन की शुरुआत है और आध्यात्मिक उन्नति के लिए सर्वथा अनुपयुक्त)।

इस्कॉन के ब्रह्मचारियों को परम्परागत ब्रह्मचारियों की अपेक्षा स्त्रियों (भक्तिनों तथा अभक्तिनों) से अधिक तथा कम अनुकूल परिस्थितियों में व्यवहार करना पड़ता है। स्त्रियों के साथ व्यवहार औपचारिक, शिष्ट तथा जितना कम हो सके उतना कम होना चाहिए। यदि बात करनी ही पड़े तो दूरी बनाये रखें (दूर खड़े रहें),आँख से



आँख मिलाने से बचें और जितनी जल्दी हो सके काम समाप्त कर लें। स्त्री से कभी तर्क करने में न पड़ें। दृढ़ ब्रह्मचारीगण विवाहोत्सवों में सम्मिलित नहीं होते,[४०] उन नाटकों को नहीं देखते जिनमें स्त्रियाँ अभिनय करती हों,[४१] या स्त्रियों को नाचते या गाते नहीं देखते।[४२] घनिष्ठ संगति से बचने के सामान्य सिद्धान्त का दृढ़ता से पालन होना चाहिए। यह सोचना मूर्खता है कि कोई स्त्री से घनिष्ठ संगति करने के पश्चात भी उत्तेजना से बच सकता है। यहाँ तक कि महान ब्रह्मचारी श्री भीष्मदेव ने भी कहा है कि यदि वे युवा स्त्रियों का संग करेंगे तो वे ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर पाएंगे।[४३]

न ही ब्रह्मचारियों को स्त्रियों से सेवा लेनी चाहिए। (यहां तक कि प्रसाद सेवा भी पृथक होनी चाहिए) ब्रह्मचारी के लिए एक ही स्त्री को बारम्बार देखना और उससे बात करना विशेषकर घातक है। मैत्री स्थापित होते ही ब्रह्मचारी का पतन शुरु हो जाता है।

स्मरण रखें कि स्त्रियां प्रबल होती है। सीज़र शक्तिशाली साम्राज्य को नियन्त्रित करता था किन्तु क्लेओपेट्रा सीज़र को नियन्त्रित करती थी। निस्सन्देह स्त्रियों से कभी-कभी बातें करना या विचार-विमर्श करना अपरिहार्य हो जाता है। यदि सम्भव हो सके तो अपने जीवन को इस तरह ढालें कि सामान्यतः स्त्री से किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं करना पड़े। स्त्री के साथ शून्य व्यवहार रखने की भावना होनी चाहिए।

ब्रह्मचारी को स्त्री के शारीरिक सम्पर्क से बचना चाहिए, क्योंकि अनिच्छापूर्वक भी ऐसा सम्पर्क मन को उत्तेजित कर देगा। ब्रह्मचारी को स्त्री से इतनी दूरी तो रखनी ही चाहिए जिससे स्त्री के वस्त्र तक का स्पर्श न हो, श्रेष्ठ होगा कि यह दूरी और अधिक हो। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने गृहस्थाश्रम तक में यदि किसी स्त्री को रास्ते पर आते देखते तो एक ओर खड़े हो जाते। वे स्त्रियों से हँसी-मजाक भी नहीं करते थे। ब्रह्मचारियों को चाहिए कि वे भगवान् के उदाहरण का अनुगमन करें।

आँखों की प्रवृत्ति है कि वे स्त्रियों की ओर चली ही जाती हैं किन्तु इस आदत को छोड़ देना चाहिए। जब एक पुरुष एक स्त्री को देखता है तब निकट स्थित कामदेव अपने पुष्पबाण से तुरन्त मोहन (प्रेमान्धता, भ्रम अथवा अज्ञानता) नाम का बाण छोड़ता है। इस बाण से पुरुष स्त्री के रूप से आकर्षित हो जाता है। इस प्रथम भ्रामक स्थिति के पश्चात कामदेव चार अन्य बाणः स्तम्भन, उन्मादन, शोषण तथा तापन छोड़ता है। स्तम्भन, जो व्यक्ति को निर्बोध कर देता है तथा सभी वस्तुओं की विस्मृति उत्पन्न करता है। उन्मादन जो उसे मदोन्मत्त व्यक्ति के समान व्यवहार करने पर बाध्य करता है। शोषण जो अत्यधिक आकर्षण उत्पन्न करता है। तथा तापन जो उसके हृदय की

गहराई में जाकर उसको उद्विग्न करता है।

तीनों लोकों में शायद ही कोई ऐसा होगा जो इन बाणों के प्रभाव से मुक्त हो। माया इतनी बलवान है कि जीवन्त कीर्तन के दौरान भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन में व्यस्त भक्त भी विपरीत लिंग का रूप (विशेषकर नाचता हुआ रूप) देखकर आकर्षित हो सकता है। अत: ब्रह्मचारी को यह अभ्यास करना चाहिए कि वह स्त्री की ओर न देखे, विशेष रूप से वस्त्र पहनती, केश सँवारती, दौड़ती, क्रीड़ा करती, सोती, नहाती, निर्वस्त्र या अर्धवस्त्राच्छादित स्त्री को कभी न देखे।

मन पर कभी विश्वास न करें। मन हमसे कहेगा, "मैं इस स्त्री से बात कर सकता हूँ, मैं उत्तेजित नहीं होऊँगा" "यह तो मात्र बालिका है" या "वह मुझसे आयु में काफी बड़ी है, इसलिए कोई बात नहीं" या कि "वह अमुक की सती पत्नी है" या "कुछ भी हो, मैं दर्शन जानता हूँ, मैं उससे लम्बे समय तक बातें नहीं करने वाला, यह महत्वपूर्ण है और मैं च्युत होने वाला नहीं।" आधुनिक यौन केन्द्रित सभ्यता में पले-बढ़े कामुक धूर्तों की बात तो जाने दें, शास्त्रों के अनुसार वैदिक युग के विद्वान लोगों पर भी उनकी माता, बहन या पुत्री के निकट बैठने पर पूर्णतया निषेध था।[४]

इस प्रकार का संयमित आचरण मन को नियन्त्रित करने में सहायता करता है। विपरीत लिंग के साथ व्यवहार में सोद्देश्य नियन्त्रण से कामुक होने की स्वभाविक प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। जैसे ही कोई किंचित मात्र भी स्त्री की ओर देखने, अनावश्यक उनके साथ बात करने अथवा उनके साथ अन्य किसी भी प्रकार का असंयमित आचरण करने का प्रयास करता है तो सुरक्षा दीवार ढह जाती है और काम वासनाएँ प्रवेश करने लगती हैं। शीघ्र ही बुद्धि भ्रमित हो जाती है और इन्द्रियों द्वारा उत्तेजित होने के कारण वह लाभदायक एवं हानिकारक क्रियाओं में भेद नहीं कर पाता। जो अपने मन पर नियन्त्रण खो देता है वह अपने जीवन पर नियन्त्रण खो देता है, तथा स्त्री के रूप में माया द्वारा नियन्त्रित हो जाता है।

अत: एक ब्रह्मचारी को सावधानीपूर्वक अपने मन तथा इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना चाहिए। उसे अपनी इन्द्रियों का उपयोग स्त्री को देखने, उसके विषय में सोचने तथा उससे बात करने पर उत्पन्न भ्रामक सुख का आस्वादन करने के लिए नहीं करना चाहिए। मन तथा इन्द्रियाँ इतनी प्रचण्ड हैं कि इन पर कभी भी, कभी भी, कभी भी विश्वास नहीं किया जा सकता। उन पर यदि विश्वास किया जा सकता है तो केवल इसका कि यदि उन्हें अवसर की परछाई भी दी जाये तो वे हमें माया के हाथों बेच डालेंगे। एक बार भी अवैध-मैथुन में गिरना, भक्त के जीवन का विनाश कर देगा।



आधुनिक सामाजिक सम्बन्धों के परिपेक्ष्य में ऐसे कड़े आदेश विषम लग सकते हैं किन्तु तथ्य यह है कि जब तक दोनों लिंगों के बीच यह भेदभाव पुन: स्थापित नहीं किया जाता तब तक मानव सभ्यता के लिए कोई आशा नहीं है। "जो सभ्यता पुरुषों को बिना रोकटोक के स्त्रियों से मिलने देती है वह पशु सभ्यता है। कलियुग में लोग अत्यधिक उदार हैं किन्तु स्त्रियों से मिलना-जुलना और समान मानकर उनसे बातें करना असभ्यता है।"[५]

शास्त्रों का आदेश है कि हम समस्त स्त्रियों को मातातुल्य देखें। यही ब्रह्मचारी के लिए स्वस्थ विधि है - भले ही अधिकांश स्त्रियाँ प्रशिक्षण के अभाव में मातातुल्य व्यवहार न करें।

स्त्रियों को प्रभावित करने का प्रयास न करें। जब स्त्रियाँ उपस्थित होती हैं तो प्रवृत्ति यही होती है कि हम उन पर अपने सदाचार, वाकपटुता, नृत्य कौशल आदि के द्वारा प्रभाव डालना चाहते हैं, भले ही हम इसके प्रति पूर्णरुप से सचेत न हों। सावधान रहें।

किन्तु स्त्रीत्व-विरोधी कट्टरता भी अस्वस्थ है। न जाने स्त्री से घृणा करनेवाले कितने ही कट्टर ब्रह्मचारी उनके वशीभूत होकर भोगी कुटुम्बी बन गये? तथाकथित परम ब्रह्मचारियों की कठोरता - मानो स्त्री की ओर निर्दय तथा रूक्ष व्यवहार उनकी कामवासना से मुक्ति का प्रमाण हो - वास्तव में उनकी उत्तेजना का सूचक है। निस्सन्देह, अन्यों को प्रभावित तथा नियन्त्रित करने की इच्छा, व्यर्थ का क्रोध तथा अत्याहार जैसे अवांछित गुण यौन इच्छा के विभिन्न स्वरूपों में प्रकट लक्षण हैं। आसक्ति तथा बहिष्कार, रजोगुण के दो पहलू हैं। समदृष्टि तथा विरक्ति सतोगुण से उत्पन्न होते हैं और स्थिर भक्त के लिए आवश्यक हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए सतोगुणी बनना आवश्यक है। सतोगुण में ज्ञान तथा वैराग्य उत्पन्न होते हैं।

हमारा दर्शन आत्मज्ञान - कि हम पुरुष या स्त्री शरीर नहीं है - से प्रारम्भ होता है। अत: हमें स्वयं को श्रेष्ठ मानने की भावना को विकसित नहीं करना चाहिये कि "मैं बहुत महान त्यागी ब्रह्मचारी हूँ, ये अल्पज्ञ स्त्रियाँ मेरे सामने क्या हैं?" कौन जानता है कि हम पूर्वजन्मों में स्त्रियाँ रहे हों और ये स्त्रियाँ पुरुष रही हों। फिर भी हमें अन्तर बनाये ही रखना चाहिए। "खतरा है दूर रहें।" न तो कटु बनें, न कर्कश, किन्तु दूर रहने से भद्दे या असामाजिक समझे जाने की परवाह न करें। पछताने की अपेक्षा सुरक्षित रहना अच्छा है।

# भक्तिमय सेवा में मनोवृत्तियाँ

कृष्णभावनामृत के विषय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कथनों में से एक उपदेशामृत पुस्तक की श्रील प्रभुपाद द्वारा लिखित प्रस्तावना में है। "कृष्णभावनामृत में प्रगति अनुगमनकर्ता की मनोवृत्ति पर निर्भर करती है।" श्रील प्रभुपाद ने लिखा है कि कोई भी व्यक्ति तत्क्षण श्रीकृष्ण का शुद्ध भक्त बन सकता है यदि उसके मन में इच्छा हो। भक्तिमय सेवा में प्रगति का अर्थ है अपनी इच्छाओं को शुद्ध करना। शुद्ध भक्तिमय सेवा का अर्थ है कि किसी भी प्रकार की निजी इन्द्रियतृप्ति की इच्छा से रहित होकर श्रीकृष्ण की सेवा में तत्परतापूर्वक संलग्न रहना।

जो बहुत ही भाग्यशाली होते हैं वे ही कृष्णभावनामृत को ग्रहण करते हैं। लोग अनेक कारणों से भक्तिमय सेवा को ग्रहण करते हैं। कुछ लोग गहन कष्ट से राहत खोज रहे हैं तो कुछ सरल वैकल्पिक जीवन शैली की खोज में हैं, कुछ उत्सुकतावश, कुछ अपने तथा अपने परिवारों के लिए स्वच्छ तथा बेहतर जीवन चाहते हैं, कुछ लोग सीधे ईश्वर तथा जीवन के अर्थ की खोज करते हुए आते हैं।

नि:सन्देह, वास्तविक भक्ति पूर्णरूपेण निष्काम होती है, यहाँ तक कि शान्ति तथा सम्पूर्ण कल्याण की भावना से भी प्रेरित नहीं होती। केवल ऐसा समर्पित मनोभाव ही आत्मा को पूर्ण तुष्टि प्रदान कर सकता है। जो परम बुद्धिमान हैं वे कृष्णभावनामृत का अभ्यास करने के प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त बनने का प्रयास करेंगे। ऐसे मनोभाव को सदैव प्रोत्साहित करना चाहिए क्योंकि यही हमारे आन्दोलन का सार है।

किन्तु अन्य लोग ऐसे दृष्टिकोण को अव्यावहार्य मान सकते हैं। वे ऐसा मानेंगे कि जो ऐसी पापपूर्ण पृष्ठभूमि से आने वाले हैं वे समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होकर शुद्ध भक्त कैसे बन सकते हैं? उनका कहना है "यथार्थवादी होना ही श्रेयस्कर होगा, माया से समझौता करके कृष्णभावनामृत के किसी न किसी स्तर पर बना रहा जाए"। निस्सन्देह, जो जिस स्तर पर भी आसानी से भक्तिमय सेवा शुरु कर सके उसे उसके लिए प्रोत्साहित किया जाता है । यह आशा नहीं की जाती कि सारे लोग शुरु से ही इसे पूर्णरुपेण ग्रहण करेंगे। वस्तुत: वर्णाश्रम धर्म की सारी प्रणाली (जो वैदिक संस्कृति का आधार है) भौतिक रूप से कलुषित उन व्यक्तियों के क्रमिक उत्थान के लिए है जो अपने जीवन में कृष्णभावनामृत का कुछ भाग ग्रहण करना चाहते हैं किन्तु श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण शरणागति के लिये तैयार नहीं हैं।



किन्तु श्रील प्रभुपाद (तथा भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं हमारे सारे सम्प्रदाय) का भाव यही है कि इस कलियुग में जब कृष्णभावनामृत, हरे कृष्ण कीर्तन की सरल विधि से इतनी सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है तो फिर क्यों न इसका पूरा-पूरा लाभ अपने जीवनों को पूर्ण बनाने और भगवद्धाम वापस जाने के लिए किया जाए? श्रील प्रभुपाद: "ऐसा न सोचें कि यह कीर्तन और नृत्य वांछित लक्ष्य तक नहीं ले जाएगा। यह अवश्य ले जाएगा। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का यह आश्वासन है कि इस विधि से मनुष्य को संसिद्धि प्राप्त होगी।"[४६]

ब्रह्मचारी इस श्रद्धा के साथ भक्तिमय सेवा कार्यों को करते हैं। वास्तविक ब्रह्मचारी अहैतुकि-अप्रतिहता-भक्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं अर्थात निस्वार्थ भाव से, अविरल भक्तिमय सेवा में संलग्न रहना।[४७] वे सदैव सेवा करने के लिए तत्पर रहते हैं तथा उसके बदले में किसी प्रकार की विशेष सुविधा अथवा सम्मान की आकांक्षा नहीं रखते। इस प्रकार की शुद्ध भक्ति ब्रह्मचारी जीवन का सार तथा आदर्श होता है।

जो भक्त इस प्रकार पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं और जो मिश्र भक्तिमय सेवा में संलग्न हैं, वे इस जीवन में शुद्ध भक्त बनने की सम्भावना को असम्भव समझ सकते हैं। विशेषकर वे भक्त जो किसी समय इस प्रकार प्रयास कर रहे थे परन्तु जो भक्तिमय सेवा के कड़े सिद्धान्तों का पालन नहीं कर पाये, वे उन भक्तों के प्रयासों की निन्दा भी कर सकते हैं जो उत्साह के साथ भक्ति करते रहते हैं। किन्तु हमें यह जानना चाहिए कि इसका कारण है माया।

यदि किसी व्यक्ति का पतन हो गया है तो इसका यह अर्थ तो नहीं है कि सभी का पतन होगा। कृष्णभावनामृत की विधि परिपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति निष्ठा तथा उत्साह से इसका पालन करता है और किसी भी परिस्थिति में पथ का त्याग नहीं करता तो उसकी सफलता सुनिश्चित है। यदि कोई व्यक्ति इस आन्दोलन को छोड़ता है तो यह विधि का दोष नहीं। यह विधि की शरण ग्रहण करने में व्यक्ति की असफलता है।

हमें अपने भक्तिमय जीवन में नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने से बचना चाहिए। अंतत: भौतिक शक्ति जो भी कष्ट हमें पहुँचाये(हमारी दृढ़ता तथा सहनशक्ति का परीक्षण करने के लिए निश्चित रूप से वह ऐसा करेगी) हमें हमेशा आशावान रहना चाहिये क्योंकि हम भगवद्धाम लौटने के पथ पर हैं। श्रील प्रभुपाद: "जब तक कोई व्यक्ति भगवान् की इच्छाओं के साथ पूर्ण सहयोग करता है, प्रामाणिक ब्राह्मणों और

वैष्णवों के मार्गदर्शन में है और संयम के नियमों का दृढ़ता से पालन करता है तब तक उसके निराश होने का कोई कारण नहीं है, चाहे परिस्थितियाँ कितनी भी कठिन क्यों न हों।''[४८] इसलिए संशयवादियों तथा निराशावादियों की संगति से दूर रहकर इस आन्दोलन के भीतर श्रीकृष्ण की सेवा करने की आजीवन योजना बनानी चाहिए। क्यों नहीं?

हम पहले ही इतनी दूरी तय कर चुके हैं। हमने भौतिकतावादी मूल्यों को त्याग दिया है, अपने सिर मुंडवा लिए हैं, धोती और तिलक धारण कर लिए हैं - तो फिर क्यों न पूरा मार्ग तय कर श्रीकृष्ण की पूर्ण शरणागति ली जाये? कम से कम इसके लिए प्रयत्न तो करें। श्रील प्रभुपाद उदाहरण देते थे कि यदि कोई छात्र सर्वोच्च श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण करने का लक्ष्य बनाता है तो वह उत्तीर्ण तो हो ही जाएगा। किन्तु यदि वह केवल उत्तीर्ण होने का लक्ष्य बनाता है तो वह अनुत्तीर्ण हो सकता है।[४९] अत: हमें सोचना चाहिए कि ''मैं इस जीवन में इस भौतिक जगत के साथ सारे सम्बन्ध सदा के लिए समाप्त कर दूंगा। मैं कृष्णभावनामृत अवश्य प्राप्त करूँगा।''

प्राय: भौतिक जीवन की चक्की से निकल कर आये युवा ब्रह्मचारी उत्साह से परिपूर्ण होते हैं किन्तु कुछ समय के बाद वे इस ताजगी को खो बैठते हैं। श्रील प्रभुपाद ने देखा कि, ''कृष्णभावनामृत में आये नवागन्तुकों में अल्पकाल में ही अपने प्रयासों को क्षीण करने की प्रवृत्ति होती है। परन्तु भक्ति में प्रगति करने के लिए हमें इस प्रलोभन से बचना चाहिए तथा सतत् रूप से अपने प्रयासों तथा भक्ति में वृद्धि करनी चाहिए।''[५०]

सामान्यतया युवा ब्रह्मचारियों को प्रारम्भ में कठोर प्रशिक्षण दिया जाता है। किन्तु आन्दोलन में कुछ वर्ष बिताने के बाद जब वे भक्ति में कुछ परिपक्व हो जाते हैं तो यह दबाव प्राय: शिथिल कर दिया जाता है। हो सकता है कि कोई उन पर समर्पण करने या मन्दिर के कार्यक्रमों का नियमपूर्वक पालन करने के लिए दबाव न डाल रहा हो। उस समय भक्त की आध्यात्मिक प्रगति अधिकांशत: कृष्णभावनामृत विधि में अपने को लगाने के उसके स्वयं के संकल्प पर निर्भर करेगी। आवश्यकता है कि भक्तगण आध्यात्मिक रूप से परिपक्व हों। इस आन्दोलन में स्थायी रहने का प्रण लो और चाहे जो भी हो कृष्णभावनामृत का अभ्यास करते जाओ। सदैव उन्नत भक्त बनने का प्रयत्न करो। ''भक्तिमय सेवा में निष्ठापूर्वक प्रयत्न के बिना भगवद्प्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता।''[५१] ''सुविधाजनक जीवन तथा दिव्य साक्षात्कार में पूर्णता की प्राप्ति एक ही समय पर सम्भव नहीं है।''[५२]



## प्रशिक्षण

भौतिक इच्छाओं से मुक्ति प्राप्त करने और कृष्णभावनामृत में स्थिर होने के लिए किसी दक्ष भक्त के मार्गदर्शन में प्रशिक्षण प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। इसलिये परम्परागत रूप से ब्रह्मचारीगण अपने गुरु के सीधे संरक्षण में रहते थे, उनके शरणागत होते थे और कठोर नियम के अन्तर्गत एक तुच्छ दास की तरह उनकी सेवा करते थे। ब्रह्मचारीगण सभी प्रकार के तुच्छ कार्य करते थे, गुरु के लिए भिक्षा मांगते थे और जब तक गुरु कहता न था, वे भोजन तक नहीं करते थे। वे बिना किसी तर्क के किसी भी प्रकार के दण्ड को भी स्वीकार करते थे। मिथ्या अहंकार के दमन हेतु यह पूर्ण प्रशिक्षण था।

आजकल यद्यपि इस प्रकार का कठोर अनुशासन सम्भव नहीं है, फिर भी हमारा आन्दोलन मुख्यत: शैक्षिक है और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए है। कृष्णभावनाभावित प्रशिक्षण इतना शक्तिशाली है कि यह शीघ्र ही पतित से पतित व्यक्ति को महात्मा बना देता है।

जो लोग अन्यों की सहायता कर सकते हैं उनका यह कर्तव्य है कि वे ऐसा करें। जिसके पास आध्यात्मिक ज्ञान है किन्तु कृपणतावश अन्यों को प्रदान नहीं करते, उसे उस ज्ञान का साक्षात्कर कभी नहीं होता तथा वह शनै: शनै: उस ज्ञान से पूर्ण रूप से वंचित हो जाता है। इसलिए अपने हित तथा अन्यों के हित के लिए हमें प्रचार करना, शिक्षा देना और प्रशिक्षण देना चाहिए। भक्तगण उत्सुकतापूर्वक इस अद्भुत कृष्णभावनामृत आन्दोलन में इस आशा से सम्मिलित हो रहे हैं कि उन्हें श्रीकृष्ण के चरणारविन्द प्राप्त होंगे। यदि ज्येष्ठ भक्तगण उन्हें पथ पर स्थिर होने में मदद नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा?

लेकिन नये लोगों को प्रशिक्षण देना आसान नहीं है। इसके लिए बहुत सहनशीलता, समर्पण तथा विनयशीलता की आवश्यकता है। मन्दिर में चाहे औपचारिक नवभक्त कार्यक्रम हो या न हो, प्रशिक्षण एवं शिक्षण का यह वातावरण अवश्य होना चाहिए। कनिष्ठ भक्तों को जितनी जल्दी हो सके दक्ष प्रचारक की योग्यता प्राप्त करके, कक्षाएँ लेने एवं कृष्णभावनामृत को कहीं और कभी भी प्रस्तुत करने में सक्षम हो जाना चाहिए। इस आन्दोलन को ऐसे हजारों दृढ़निश्चयी भक्तों की आवश्यकता है जो श्रीचैतन्य महाप्रभु की महिमा को फैलाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर सकें। अत: जब नये अभ्यार्थी आते हैं तो निश्चय ही उन्हें प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी।

श्रील प्रभुपाद अपने शिष्यों को सदैव प्रशिक्षण देते रहते थे। हम कृष्णभावनामृत के विषय में तथा मनुष्यों की तरह रहने के विषय में जो भी जानते हैं वह इसलिये कि श्रील प्रभुपाद ने प्रतिदिन, हर क्षण हमें निर्देश देने का कष्ट उठाया। उन्होंने अपने शिष्यों को प्रशिक्षित किया जिससे वे अन्य भक्तों को प्रशिक्षित कर सकें। यही गुरु-शिष्य परम्परा है। श्रील प्रभुपाद : ''जब तक आप उन्हें प्रशिक्षित न करें, व्याख्यान देने से क्या लाभ?''[५३]

यदि श्रीकृष्ण यह देखते हैं कि हम अपने भक्तों की देखभाल करने में गम्भीर है तो वे नये-नये लोगों को हमारे पास भेजेंगे जिससे उनके आन्दोलन का अधिकाधिक विस्तार हो सकेगा। हमारे समस्त मन्दिरों को ऐसे गतिशील केन्द्र बनना चाहिए जहाँ नये-नये लोग वहाँ पर दिये जाने वाले दिव्य अनुभव का साक्षात्कार करने के लिए सदा आते रहें।

## इतने अधिक विधि-विधान क्यों?

सारे भक्तों को, विशेषतया ब्रह्मचारियों तथा संन्यासियों को कुछ निश्चित नियमों का पालन करना होता है जो किसी भी भौतिकतावादी को आश्चर्यचकित कर देगा - प्रातः ४.०० बजे से पहले उठना, सेवा के लिए जाना, अर्चाविग्रहों को प्रणाम करना और इस प्रकार पूरे दिन कुछ न कुछ करना। सम्प्रदाय विरोधी लोग चिल्लाते हैं ''यह तो दुर्बल मस्तिष्क वाले मूर्खों का मनोमार्जन है।'' यह तथ्य है - माया के समक्ष हमारे मन दुर्बल हैं और कृष्णभावनामृत की नियमावली का पालन हमें माया के प्रहार से बचाता है। भगवद्गीता (२.६४) में उल्लेख है कि स्वतन्त्रता के नियमों का पालन करने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकता है और ईश्वर की पूर्ण कृपा प्राप्त कर सकता है।

कृष्णभावनामृत के कनिष्ठों को इतने सारे प्रतिबन्धों के विषय में आशंकाएँ हो सकती हैं। ऐसे नवागंतुकों को सारे गौण नियमों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए अपितु उन्हें केवल कीर्तन करने, नृत्य करने, प्रसाद ग्रहण करने तथा श्रीकृष्ण के विषय में सुनने के लिए अनुरोध करना चाहिए। रूप गोस्वामी ने सुझाव दिया है कि यदि किसी तरह से अभक्तों को कृष्णभावनामृत में लाया जा सके तो सारे नियमों को बाद में लागू किया जा सकता है।

कृष्णभावनामृत में सफल होने के लिए हमें पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिये गये भक्तिपाठ्यक्रम को स्वीकार करना चाहिए। श्रील प्रभुपाद: ''विधि-विधानों के पालन



से संयमित जीवन को ग्रहण किये बिना कोई भी उच्च पद प्राप्त नहीं कर सकता।''[५४] जब किसी महत्वाकांक्षी भक्त को इसका अनुभव होता है तो वह सहर्ष कृष्णभावनामृत का कठोर अभ्यास करने लगेगा। नये तथा अनिच्छुक अभ्यर्थियों पर तपस्या के लिए बल देना अच्छी नीति नहीं है। किन्तु जिन्होंने दीक्षा लेना स्वीकार किया है उन्हें गम्भीर बनना चाहिए अन्यथा दीक्षा का कोई अर्थ नहीं होगा।

श्रील प्रभुपाद: ''कृष्णभावनामृत कठिन नहीं है, कठिन है संकल्प। यह संकल्प तपस्या से आता है इसीलिए इतने नियम हैं। नियमों का पालन करने से आप दृढ़ संकल्प होंगे अन्यथा माया के शिकार बनेंगे। ये नियम आपको अपने संकल्प में दृढ़ रखने के लिये हैं। यदि आप इनका पालन नहीं करते तो आपका पतन हो जाएगा।''[५५]

## प्रणति तथा गुरु-शिष्य सम्बन्ध

''शिष्य को अपनी इन्द्रियों को पूर्णतया वश में करने का अभ्यास करना चाहिए। उसे विनयशील होना चाहिए और गुरु के साथ दृढ़ मैत्री का भाव रखना चाहिए। ब्रह्मचारी को महान व्रत लेकर मात्र गुरु के लाभार्थ, गुरुकुल में रहना चाहिए।''[५६]

परम्परागत रूप से ब्रह्मचारी जीवन तब से शुरु होता है जब कोई बालक गुरु कुल भेजा जाता है। ब्रह्मचारी जीवन के लिए गुरु पर आश्रित होना एक ऐसा अभिन्न अंग है कि जब तक कोई गुरु की शरण स्वीकार न कर ले उसे ब्रह्मचारी नहीं माना जाता। केवल कुमार (अविवाहित) रहने से ब्रह्मचर्य पूरा नहीं होता।

चारों आश्रमों में मनुष्य को गुरु के प्रति विनीत होना चाहिए । किन्तु ब्रह्मचारियों द्वारा विनम्रता का विशेष रूप से अनुशीलन होता है। वैदिक परम्परा में ब्रह्मचारीगण गुरु के साथ रहते हैं और निरन्तर अनुशासन में बँधे रहते हैं। यह समर्पण का प्रशिक्षण है - वह गुरु की सेवा करके श्रीकृष्ण तक पहुँचने के लिए आवश्यक निष्काम सेवाभाव सीखता है। ब्रह्मचारी का कार्य है अपने गुरु को प्रसन्न करने लिये कड़ी मेहनत करना। ऐसी सेवा एकान्तिक होनी चाहिए, निजी सुविधा या लाभ के किसी भी विचार के बिना। ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह अनन्य भाव से गुरु के आदेश का पालन करे, न कि मनमाने ढंग से कुछ भी, कहीं भी, कैसे भी कार्य करे।

''ब्रह्मचारी जीवन का अर्थ है तुच्छ दास की भाँति गुरु की सेवा करना। वह जो भी कहे, ब्रह्मचारी उसे करे।''[५७]

ब्रह्मचारी से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने गुरु के प्रति प्रगाढ़ आसक्ति रखे। विश्राम करने के पूर्व तथा उठने पर वह अपने गुरु को नमस्कार करे और उनसे

प्रार्थना करे। बदले में गुरु अपने कर्तव्य के प्रति जागरुक होता है। गुरु शिष्यों के प्रशिक्षण एवं उत्थान हेतु उनकी सेवायें स्वीकारता है, यद्यपि अपने लाभ के लिये उनकी सेवायें स्वीकारने को वह इच्छुक नहीं होता। अत: गुरु को अधिकार है कि वह अपने शिष्यों से, विशेषकर ब्रह्मचारी शिष्यों से कोई भी सेवा करने के लिए कह सकता है (वह इस अधिकार का दुरुपयोग नहीं करता यही उसकी गुरु होने की योग्यता है)। किन्तु गुरु बदले में कृष्णभावनामृत प्रदान करता है। वह अपने शिष्यों को, विशेषकर ब्रह्मचारी शिष्यों को, त्याग करने एवं आत्मसंयमी होने के लिये कहता है, परन्तु वह स्वयं त्याग के लिये सर्वाधिक तैयार रहता है। और बदले में वह कृष्णभावनामृत प्रदान करता है।

## वैराग्य, तपस्या तथा त्याग

"इस संसार में जितने जीवों ने भौतिक शरीर धारण किया है उनमें से जिस एक को यह मनुष्य रूप मिला है उसे केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए अहर्निश कठिन कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सुविधा तो मलभक्षी कूकरों-सूकरों को भी प्राप्त है। उसे भक्तिमय सेवा का दैवी पद पाने के लिए तपस्या करनी चाहिए। ऐसा करने से उसका हृदय शुद्ध होता है और यह पद प्राप्त कर लेने पर वह नित्य आनन्दमय जीवन को प्राप्त होता है जो भौतिक सुख से परे और नित्य है।"[५८]

मनुष्य जीवन आत्म साक्षात्कार के लिए है। समस्त भौतिक वस्तुओं से विरक्ति के स्तर से ही आत्म-साक्षात्कार का विकास संभव है। श्रील प्रभुपाद विरक्ति को भावमय प्रेम के एक गुण के रूप में बतलाते हैं:

"इन्द्रियाँ सदैव इन्द्रिय भोग की इच्छुक रहती हैं किन्तु जब कोई भक्त श्रीकृष्ण के प्रति दिव्य प्रेम उत्पन्न कर लेता है तो उसकी इन्द्रियाँ भौतिक इच्छाओं द्वारा और आगे आकर्षित नहीं होतीं। मन की यह अवस्था विरक्ति कहलाती है। इस विरक्ति का एक अति उत्तम उदाहरण राजा भरत के चरित्र में मिलता है। श्रीमद्भागवतम् में पंचम स्कंध के चौदहवें अध्याय के तैंतालीसवें श्लोक में कहा गया है, "राजा भरत श्रीकृष्ण के चरणकमलों के सौन्दर्य के प्रति इतने आकर्षित हो गए कि अपनी युवावस्था में ही उन्होंने परिवार, बच्चों, मित्रों, राज्य इत्यादि के प्रति सभी प्रकार की आसक्तियों को ऐसे त्याग दिया मानो वे अस्पृश्य मल हों।"

"राजा भरत विरक्ति का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनके पास संसार की प्रत्येक भोग्यवस्तु थी किन्तु उन्होंने उन्हें त्याग दिया। इसका अर्थ है कि वैराग्य का तात्पर्य लगाव के प्रलोभनों से अपने को बनावटी रूप से अलग रखना नहीं है।



ऐसे प्रलोभनों की उपस्थिति में भी, यदि कोई भौतिक आसक्तियों से अनाकर्षित रह सके, तो वह विरक्त कहलायेगा। हाँ, नवदीक्षित भक्त को प्रारम्भ में अपने आप को सभी प्रकार के प्रलोभनों से पृथक रखने का यत्न करना चाहिए किन्तु परिपक्व भक्त की वास्तविक स्थिति यह है कि समस्त प्रकार के प्रलोभन उपस्थित होने पर भी वह रंच मात्र भी आकर्षित नहीं होता। वैराग्य की यही असली कसौटी है।"[५९]

वैराग्य उत्पन्न करने के लिए तपस्या तथा ज्ञान आवश्यक है। "तपस्या (भौतिक क्रियाओं का निषेध) आध्यात्मिक जीवन का प्रथम सिद्धांत है।"[६०] "यदि हम अपने जीवन को तपस्या द्वारा शुद्ध कर लें तो भगवान् की दया से हम भी आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं।" वस्तुत: तपस्या के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। जितना अधिक हम तपस्या करते हैं उतना ही अधिक हम भगवान् की कृपा से शक्तिशाली हो जाते हैं।[६१] "तपस्या का अर्थ है आध्यात्मिक सिद्धि के लिए स्वैच्छिक तप करना।"[६२] "बिना विरक्ति उत्पन्न किये कोई व्यक्ति उन्नत भक्त नहीं बन सकता और वैराग्य उत्पन्न करने के लिए तपस्या का प्रशिक्षण आवश्यक है। हमें स्वेच्छा से ऐसी चीजें स्वीकार करनी होंगी जो शरीर के लिए आरामदेह न हों किन्तु वे आत्म-साक्षात्कार के लिए अनुकूल हों। स्मृति शास्त्र में तपस्या की परिभाषा इस प्रकार की गई है 'एक ही तरह के कार्य में पूर्ण एकाग्रता के लिए मन तथा इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण।'"[६३]

सभ्य मानव जीवन में तीन आश्रम केवल तपस्या के लिए हैं। केवल गृहस्थाश्रम में किंचित इन्द्रिय भोग की अनुमति दी जाती है। किन्तु कलियुग में लोग पूर्व युगों की तरह कठिन तपस्या नहीं कर सकते। इसलिये श्रीचैतन्य महाप्रभु ने दया करके अपना संकीर्तन आन्दोलन चलाया जो शुरू से ही दिव्य आनन्ददायक है। वस्तुत: कलियुग में यदि कोई संकीर्तन को अपनाये बिना तपस्या पर अत्यधिक बल देता है तो उसका हृदय मायावादी के हृदय के समान कठोर तथा शुष्क हो जाता है। दूसरी ओर, इन्द्रियतृप्ति को त्यागना ही चाहिए। यदि कोई भक्ति सेवा एवं अनुशासन के बिना तथा इन्द्रियतृप्ति को त्यागे बिना दिव्य आनन्द भोगने का प्रयास करता है तो वह प्राकृत सहजिया—पाखण्डी भक्त बन जाता है।

वैराग्य तो भक्ति सेवा करने पर स्वत: प्राप्त होता है।[६४] तो फिर अनुशासन तथा तपस्या क्यों आवश्यक हैं? कारण यह है कि प्रारम्भिक अवस्था में हम स्थिर नहीं होते। कभी हमें हमारी भक्तिमय सेवा करने का मन करता है तो कभी, नहीं करता। किन्तु साधन भक्ति का अर्थ है कि हमें पालन करना ही है। उदाहरणार्थ, हो सकता है कि मंगल आरती के लिए हम जागना न चाहें। किन्तु आदेश है - हमें उठना ही होगा। इस तरह से अविवेकी मन को जीत लिया जाता है। अनुशासनिक विधि का

पालन करने से हम वह करने के लिए बाध्य हो जाते हैं जो हमारे लिए शुभ है, भले ही हमारा मन उसे करने के लिए न करे।

उन्नत भक्तगण स्वाभाविक ही शुद्ध भक्ति में स्थिर होते हैं और उन्हें तपस्या या अनुशासन ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है - यद्यपि वे सामान्यतया ऐसा करते ही हैं। किन्तु हममें से अधिकांश उस स्तर से बहुत नीचे हैं और हमें मूर्खतापूर्वक यह नहीं सोचना चाहिए कि हम माया के आक्रमण से मुक्त हैं। ज्यों ही हम ऐसा सोचेंगे कि हम सुरक्षित हैं, माया हमें चकनाचूर कर देगी। अत: भक्तिमय सेवा में जितना हो सके दृढ़ रहना श्रेयस्कर है।

आखिर तपस्या से बचा नहीं जा सकता। कर्मियों को भी इन्द्रियतृप्ति का मानदण्ड बनाये रखने के लिए नाना प्रकार की कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। और हम जो थोड़ी बहुत तपस्या करते हैं वह विगत युगों में अध्यात्मवादियों द्वारा की गई तपस्या अथवा आज भी भारत में अनेक साधुओं द्वारा की जाने वाली तपस्या के समक्ष नगण्य है। अतएव यदि हमें भक्तिमय सेवा में तपस्याएँ कठिन जान पड़ती हैं तो हमें विचलित होने की आवश्यकता नहीं है। तपस्या का अर्थ ही है "कठिन"।

श्रील प्रभुपाद: "नि:सन्देह तपस्या करने में कष्ट है। किन्तु भक्तियोग में जो कष्ट उठाया जाता है वह शुरु से ही दिव्य सुख होता है किन्तु वैकुण्ठ साक्षात्कार विहीन आत्म-साक्षात्कार की अन्य विधियों (ज्ञानयोग, ध्यानयोग आदि) में तपस्या में जो कष्ट होता है, उसका अन्त केवल कष्ट ही होता है।'[५५]

ब्रह्मचारियों के लिए मूल तपस्याएं हैं - भक्तिमय जीवन के सभी नियमों का पालन (जल्दी जागना, केवल श्रीकृष्ण प्रसादम् ग्रहण करना आदि), श्रीकृष्ण सेवार्थ कठिन परिश्रम करने में अपना सारा समय और शक्ति को लगाना,[५६] सादा जीवन बिताना, अपनी सुविधा के लिए भारी भरकम प्रबन्ध न करके जैसी भी स्थिति हो उसे स्वीकार करना, यौन तथा पारिवारिक जीवन के बिना रहना, सभी प्रकार से गुरु के आदेश का पालन करना। हमारा सारा जीवन तपस्यामय है - कठिन श्रम, दीर्घकाल तक काम, न वेतन, न गोपनीयता, न प्रतिष्ठा, न इन्द्रियतृप्ति और न अवकाश - केवल आनन्द।

इन सब के अतिरिक्त हमें खाने और सोने को कम करना चाहिए। किन्तु योगियों की भाँति शरीर को निर्जीव करना हमारी विधि नही है। और न ही कृत्रिम तपस्या से कोई लाभ हैं। कभी-कभी भक्तगण खाने तथा सोने को पूरी तरह कम करने के उद्देश्य से कठोर तप करने के लिये उत्साही हो जाते हैं किन्तु श्रील प्रभुपाद इसमें अधिक रुचि लेते थे कि उनके शिष्य पूर्ण एकादशी उपवास, कठोर चातुर्मास व्रत या



मनगढ़ंत तपस्या की अपेक्षा प्रचारकार्य में निहित तपस्या को अपनायें। कभी-कभी भक्तगण खाने और सोने में तीव्र कमी करने के लिए कार्यक्रम बनाते हैं किन्तु अधिकांशत: ऐसे प्रयासों का अन्त अधिक भोजन तथा दीर्घ नींद में होता है। इससे तो अच्छा यही होगा कि नियमित, स्थिर, बुद्धिमान तथा धैर्यवान बना जाए। कृष्णभावनामृत में पूर्णता पाने के लिए निरन्तर प्रयास की आवश्यकता होती है भावतरंग की नहीं।

जो तपस्याएँ हमें श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने में सहायक नहीं होतीं वे चाहे कितनी भी कठिनाई से सम्पन्न की गई हों, समय का अपव्यय हैं। श्रम एव हि केवलम।[५७] यद्यपि भक्तिमय जीवन में सफलता के इच्छुक लोगों के लिए कुछ न कुछ तपस्या करना अनिवार्य है किन्तु हमारा आन्दोलन कट्टरतावादी नहीं है। हम लोग अनेक कठिनाइयाँ उठाने के नकारात्मक पक्ष पर बल न देकर कृष्णभावनामृत के सकारात्मक आनन्द पर जोर देते हैं।

"हम अपने छात्रों को यथा सम्भव सुख प्रदान करने का प्रयास कर रहे हैं। अन्यथा, जब तक कोई सुखी नहीं होगा तब तक थोड़ा कठिन है, यदि वह कृष्णभावनामृत में उन्नत नहीं है। इसलिए हमारी नीति है - 'योगो भवति सिद्धि' 'युक्ताहार विहारस्य योगोभवति सिद्धि' हम योगी हैं किन्तु हम उस तरह के योगी नहीं हैं, जो शरीर को अनावश्यक कष्ट देते हैं। नहीं। युक्ताहार। तुम्हें खाने की आवश्यकता है अत: खाओ। भूखे मत रहो। व्यर्थ ही उपवास मत करो। किन्तु लोलुपतावश मत खाओ। यह बुरी बात है। यह युक्त नहीं है। खाओ लेकिन लोलुपतावश नहीं। यह मत सोचो कि अत्यन्त स्वादिष्ट वस्तुएँ सामने हैं तो लोलुपतावश खाते जाएं और फिर बीमार पड़ जाएं। और यदि तुम पचा नहीं सकते तो सोते रहोगे। केवल सोते रहोगे। इसलिए अधिक मत खाओ, जितनी आवश्यकता हो उतना ही खाओ।'[५८]

**प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में भक्ति करना ही श्रीकृष्ण को तुष्ट करने का एकमात्र साधन है। कृष्णभावनामृत प्राप्त करने की कोई यान्त्रिक विधि नहीं है। यद्यपि षड्-गोस्वामी जैसे महान उन्नत भक्तों ने पूरी तरह से आहार तथा निद्रा को त्याग दिया था किन्तु हमें उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये। अंतत: वे सर्वोच्च दिव्य आनन्द का अनुभव कर रहे थे और अपनी शारीरिक स्थिति से सर्वथा विस्मृत थे। श्रील प्रभुपाद : "यदि हम तुरन्त रघुनाथ दास गोस्वामी की नकल करके उनके समान बनना चाहेंगे तो हम निश्चित रूप से विफल होंगे और हमने जो भी उन्नति की है वह जाती रहेगी।'[५९]**

## अनुशासन

मनुष्य को अपने जीवन को इस तरह ढालना चाहिए कि वह सदैव श्रीकृष्ण का स्मरण करे। "सदैव श्रीकृष्ण का स्मरण करो। उन्हें कभी मत भूलो।" हमारा सारा जीवन श्रीकृष्ण को समझने के लिए है। तो फिर हम श्रीकृष्ण के विषय में क्यों नहीं सोच सकते? इसलिए कि हमारी चेतना दूषित है। हमारे मन मस्तिष्क में व्यर्थ की बातें भरी हैं जो श्रीकृष्ण के स्मरण में अवरोध उत्पन्न करती हैं। ये दूषण यौन इच्छा से आरम्भ होते हैं। श्रील प्रभुपाद ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति यौन इच्छा से मुक्त हो ले तो वह ५० प्रतिशत मुक्त हो जाता है।[२०] हम जितना ही अधिक यौन इच्छा से पीड़ित होंगे उतना ही हम श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं कर सकते। जब तक हम शारीरिक तथा मानसिक इन्द्रियतृप्ति को पूरी तरह से सदा-सदा के लिए त्याग नहीं देते तब तक हम बुद्धि को स्थिर नहीं कर सकते।

इन्द्रियतृप्ति की क्रियाओं के पूर्व उन्हें करने की इच्छाएं तथा उन पर चिन्तन होता है। चूंकि ये मस्तिष्क (मन) के कार्य हैं इसलिये ब्रह्मचारी को बुद्धि द्वारा मन को वश में करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जिसकी बुद्धि उसके मन द्वारा नियन्त्रित होती है वह पशु या शिशु के तुल्य है, उसके लिए कुछ भी अच्छा सम्भव नहीं। किन्तु मन को वश में करना प्रबल वायु को वश में करने जैसा है। इसलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने हमें मूढ़ मन को सुबह सौ बार जूते मार कर और रात के समय झाड़ू से सौ बार मारकर अनुशासित करने का सुझाव दिया है।[२१] जब तक हमारी बुद्धि श्रीकृष्ण के चरण कमलों पर पूर्णतया स्थिर नहीं हो जाती तब तक ऐसा कड़ा अनुशासन आवश्यक है।

ब्रह्मचारी स्वेच्छा से दक्ष गुरु के द्वारा अनुशासित होना स्वीकार करता है। उसकी कृपा से असम्भव—अर्थात मन तथा इन्द्रियों को वश में करना—सम्भव बन जाता है।

## दृढ़ निश्चय

दृढ़ संकल्प के बिना यौन बन्धन से मुक्त होने की आशा नहीं की जा सकती। "माया इतनी बलवान है कि जब तक कोई उसका शिकार न बनने के लिए दृढ़ संकल्प न हो, भगवान् भी उसे सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते।"[२२]

विशेषकर जिस व्यक्ति को बचपन से प्रशिक्षित न किया गया हो उसके लिए ब्रह्मचर्य के आठ नियमों का पालन कर पाना प्रायः असम्भव प्रतीत हो सकता है। किन्तु यह सम्भव है जैसा कि परम ब्रह्मचारी नारदमुनि ने श्रीमद्भागवतम् में (७.१५.२२) कहा है "दृढ़ता के साथ योजना बनाकर मनुष्य को इन्द्रियतृप्ति की कामुक इच्छाओं को त्याग देना चाहिए।" तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, "श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सुझाया है कि मनुष्य किस तरह इन्द्रियतृप्ति के लिए कामुक इच्छाओं पर विजय पा सकता है। कोई व्यक्ति स्त्रियों का चिन्तन छोड़ नहीं सकता क्योंकि ऐसा सोचना स्वाभाविक है, यहां तक कि सड़क पर चलते हुए अनेक स्त्रियाँ दिखेंगी। किन्तु यदि कोई स्त्री के साथ न रहने का दृढ़ निश्चय कर ले तो स्त्री को देखते हुए भी वह कामुक नहीं बनेगा। यदि कोई संभोग न करने का निश्चय कर ले तो वह स्वतः कामुक इच्छाओं पर विजय पा सकता है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण दिया गया है कि यदि कोई भूखा भी हो, यदि उस दिन उसने उपवास रखने का निश्चय किया है, तो वह भूख तथा प्यास के उत्पातों को स्वतः जीत सकता है।"



## उच्चतर स्वाद

ब्रह्मचर्य बनाये रखने के लिए हमें दृढ़ निश्चयी होना होगा किन्तु उस दृढ़ निश्चय को कैसे कायम रखें? भौतिक जीवन के कष्टों की दार्शनिक समझ निश्चित रूप से सहायता करेगी किन्तु नीचे गिरने से बचाव के लिए यह अपने में कोई प्रत्याभूति नहीं है। हमने दार्शनिक रूप से दक्ष भक्तों तक को फिसलते देखा है। विशेषरूप से कलियुग में जब तक कोई भक्ति भाव उत्पन्न नहीं कर लेता, ब्रह्मचर्य में तुष्टि लगभग असम्भव है। परम भोक्ता श्रीकृष्ण के अंश रूप हममें आनन्द की खोज करने की उत्कट अभिलाषा रहती है (आनन्दमयोऽभ्यासात्)।[२३] जब तक हमें अपनी भक्ति से कुछ वास्तविक रस न मिले तब तक हम भौतिक भोग की ओर आकृष्ट होते रहेंगे।

प्रायः नवशरणागत भक्तों को कृष्णभावनाभावित आनन्द की एक झलक मिलती है। श्रीकृष्ण उनके निश्चय को ठोस बनाने के लिए अमृत का घूंट देते हैं। किन्तु कुछ काल बाद यह आनन्द स्वतः नहीं आता, उसके लिए आपको कार्य करना होता है। यहां तक कि प्रवृद्ध भक्तों तक को निरन्तर शरणागति की क्रिया का अभ्यास करना पड़ता है। तभी श्रीकृष्ण उन्हें आशीर्वाद देंगे और वे दूर जाने का नाम नहीं लेंगे।

किन्तु यदि हम अपने मन के आनंद हेतु भक्ति करेंगे तो हम उसे कभी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। श्रीकृष्ण के भिन्नांश होने के नाते हम उन्हें तुष्ट करके ही तुष्ट हो सकते हैं जिस तरह शरीर के अंग उदर को तुष्ट करके संतुष्ट हो जाते हैं। हमें केवल श्रीकृष्ण के नामों का श्रवण और कीर्तन करना होगा और उनकी सेवा में आने वाली सभी कठिनाइयों को झेलते हुए उनकी शरण ग्रहण करनी होगी। तब, जब वे हम से तुष्ट हो जाएंगे तो हमें सुखी बनाएंगे।

कृष्णभावनामृत एक सुखी आन्दोलन है। उत्साही भक्तगण प्रतिक्षण आनन्द का आस्वादन करते हैं और उन्नत भक्त जो वास्तव में उच्च कृष्णभावनामृत का असीम दिव्य आनन्द अनुभव करते हैं उनके लिए तो तथाकथित भौतिक यौन सुख तृणवत प्रतीत होता है। दुर्भाग्यवश हममें से अधिकांश लोग इतने उन्नत नहीं हैं किन्तु हम सबों ने कभी न कभी आनन्द की कुछ बूँदों का आस्वादन किया है और वास्तव में कृष्णभावनाभावित होने पर केसा होगा इसकी झाँकी प्राप्त की है।

अत: यदि हम माया के आक्रमण से त्रस्त हैं, यदि हम उदास अनुभव कर रहे हैं और सेवा करने के लिए अधिक उत्साहित नहीं है तो हम कृष्णभावनामृत में अच्छे दिनों के विषय में सोच सकते हैं, जब श्रीकृष्ण ने हम पर किंचित कृपा की हो और हमारे अश्रु आ गये हों या भाववश हम ऊपर-नीचे कूदने लगे हों। हमें उसी अमृत की खोज करते रहना है। यदि हम हरे कृष्ण कीर्तन करने, कृष्ण के लिए नृत्य करने, श्रीकृष्ण प्रसाद ग्रहण करने, श्रीकृष्ण के विषय में सुनने, कुछ सेवा करने की विधि पर वापस जाएँ तो हम सुखी हो जाएंगे। भक्ति श्रीकृष्ण से अभिन्न है और श्रीकृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं। उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत - "माया की गहरी निद्रा से जागो और नित्य अमृतमय जीवन के वरदान को प्राप्त करो।"[९४]

## संगति

आध्यात्मिक जीवन में ठोस प्रगति करने के लिए आवश्यक दृढ़ निश्चय बनाये रखने में अच्छी संगति का होना परमावश्यक है। जबकि दूसरी ओर कुसंगति आसानी से तुरंत ही जो भी आध्यात्मिक विकास हमने किया है उसे नष्ट कर सकती है। श्रील प्रभुपाद अपनी पुस्तकों में बारम्बार उचित संग की आवश्यकता पर बल देते हैं। कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं -

"संग (उनका जो कृष्णभावनाभावित हैं एवं भक्ति सेवा में संलग्न हैं) के बिना प्रगति नहीं की जा सकती। केवल सैद्धान्तिक ज्ञान या अध्ययन के बल पर कोई प्रशंसाजनक प्रगति नहीं कर सकता। मनुष्य को भौतिकतावादी व्यक्तियों का संग त्याग कर भक्तों की संगति करनी चाहिए क्योंकि भक्तों का संग किये बिना भगवान् के कार्यकलापों को समझा नहीं जा सकता..... भक्तों का संग करने का अर्थ है भगवान् का संग। जो भक्त ऐसी संगति करता है वह भगवान् की सेवा करने की चेतना उत्पन्न कर लेता है और तब भक्तिमय सेवा के दिव्य पद पर अवस्थित होकर वह शनै: शनै: पूर्ण बन जाता है।"[९५]



"मनुष्य को चाहिए कि ऐसे निपट मूर्ख की संगति न करे जो आत्म-साक्षात्कार के समस्त ज्ञान से वंचित हो और जो स्त्रियों के हाथ में नाचने वाले कुत्ते जैसा हो। ऐसे मूर्ख व्यक्तियों की संगति पर प्रतिबन्ध विशेषकर उन लोगों के निमित्त है जो कृष्णभावनामृत की प्रगति-पथ पर हैं।"

"यदि कोई व्यक्ति किसी शूद्र की संगति करता है जो स्त्री के हाथ में नाचने वाले कुत्ते के समान है तो वह कोई प्रगति नहीं कर सकता। भगवान् चैतन्य ने परामर्श दिया है कि कृष्णभावनामृत में लगे तथा इस भौतिक अज्ञान को लाँघने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह न तो स्त्रियों की, न ही भौतिक भोग में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की संगति करे। कृष्णभावनामृत में प्रगति के अभिलाषी व्यक्ति के लिए ऐसी संगति आत्महत्या से भी अधिक घातक है"[९६]

"भगवान् का साक्षात्कार केवल भक्तों की संगति में ही सम्भव है।"[९७]

"ध्रुव महाराज ने कहा, 'हे अनन्त भगवान्, मुझे आशीर्वाद दें, जिससे मैं उन महान भक्तों की संगति कर सकूँ जो आपकी दिव्य सेवा में उसी तरह लगातार लगे रहते हैं जिस तरह नदी में लगातार तरंगे उठती रहती हैं।' ध्रुव महाराज के कथन में महत्वपूर्ण बात यह है कि वे शुद्ध भक्तों की संगति चाह रहे थे। भक्तों की संगति के बिना दिव्य भक्तिमय सेवा न तो पूरी हो सकती है, न ही आस्वाद्य बन सकती है। इसलिए हमने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की है। जो भी व्यक्ति इस कृष्णभावनामृत संघ से अलग रहते हुए कृष्णभावनामृत में लगना चाहता है वह बहुत बड़े भ्रम में जी रहा है क्योंकि ऐसा सम्भव नहीं है। ध्रुव महाराज के इस कथन से यह स्पष्ट है कि जब तक कोई व्यक्ति भक्तों की संगति नहीं करता तब तक उसकी भक्ति परिपक्व नहीं होती, यह भौतिक कार्यकलापों से पृथक नहीं हो पाती। शुद्ध भक्तों की संगति में ही भगवान् श्रीकृष्ण के शब्द पूर्णतया शक्तिशाली तथा हृदय और कानों को आस्वाद्य हो सकते हैं। भक्तों की संगति में की जाने वाली भक्तिमय सेवा, भक्तिमय सेवा के और आगे विकास का कारण बनती है। केवल भक्तों की संगति में ही भक्ति में परिपक्वता प्राप्त करना सम्भव है।"[९८]

एक टहनी को आसानी से तोड़ा जा सकता है किन्तु जब कई टहनियाँ एक साथ बाँध दी जाती हैं तो उन्हें तोड़ पाना असम्भव है। हम कृष्णभावनाभावित होना चाहते हैं किन्तु हमारे हृदय में अब भी अनेक भौतिक इच्छाएं हैं। प्रगति करने के लिए हम सभी को सहायता की आवश्यकता है। उत्साही भक्तों की संगति करके हम कृष्णभावनामृत की अपनी इच्छाओं को पोषित करने में एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं। प्रबल संगति से प्रबल वातावरण तैयार होता है।

इसलिए भक्तों की संगति करते समय भी दृढ़ ब्रह्मचारियों को चुनाव करना चाहिए। जो प्रबल ब्रह्मचारी बने रहना चाहते हैं उन्हें उनकी संगति करनी चाहिए जो आध्यात्मिक जीवन के प्रति अत्यन्त गम्भीर हों, जिनकी संगति शुद्ध आध्यात्मिक पद पर बने रहने के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित करती हो। ब्रह्मचारियों के लिए सर्वोत्तम संगति संन्यासियों या वरिष्ठ ब्रह्मचारियों की है, जो स्त्रियों से पृथक रहने की आवश्यकता के बारे में आश्वस्त हों। यदि कोई गृहस्थ या तथाकथित ब्रह्मचारी भी ढीला ढाला हो (अर्थात कृष्णभावनामृत के प्रति समर्पित न हो, साधन का कड़ाई से पालन न करता हो, नियमों का पालन न करता हो, प्रजल्प करता हो या स्त्रियों के साथ स्वच्छन्द विचरण करता हो) तो गंभीर ब्रह्मचारियों को उसकी संगति से बचना चाहिये।

गंभीर ब्रह्मचारियों को ऐसे भक्तों की संगति से भी सतर्क रहना चाहिये जिनकी कृष्णभावनामृत विषयक समझ श्रील प्रभुपाद द्वारा बताई गई समझ से भिन्न हो या जिनकी प्रवृत्ति राजनीतिक हो। ब्रह्मचारियों के लिए सबसे अच्छा है सरल, शुद्ध बने रहना तथा राजनीति एवं अभियोक्ता लोगों से दूर रहना। नम्र तथा आदरपूर्वक व्यवहार रखते हुए, उन्हें किंचित ऐसे भक्तों की संगति करनी चाहिये जो सुदृढ़ रूप से स्थित हों, चाहे फिर वे कोई भी आश्रम में क्यों न हों।

हर कोई अपने सम्बन्धों में रस की खोज में रहता है। वास्तविक ब्रह्मचारी अपने को भौतिक दृष्टि से पुरुष नहीं अपितु भगवान् श्रीकृष्ण का नित्य दास समझता है। पुरुष को स्त्री की आवश्यकता होती है, किन्तु भगवान् के दास को भगवान् की आवश्यकता होती है। इसलिए समर्पित ब्रह्मचारी भक्तों की संगति में रहता है और आध्यात्मिक सम्बन्धों में आस्वाद का अनुभव करता है। वह भौतिक सम्बन्धों को भोगने का प्रयास नहीं करता। भक्तगण मिलकर सेवा करने, एक दूसरे को प्रोत्साहित तथा सावधान करने तथा आध्यात्मिक संकट के समय मदद करने के द्वारा कृष्णभावनामृत पर आधारित सुदृढ़ मैत्रियों को स्थापित करते हैं जब कि इसके विपरीत भौतिक मित्रताएँ इन्द्रियतृप्ति पर आधारित होती है। यही वास्तविक मैत्री है, शायद अनेक जन्मों में पहली बार। यदि किसी ब्रह्मचारी को भक्तों के साथ अपने सम्बन्धों में ऐसा रस नहीं मिलता तो वह स्त्रियों तथा कर्मियों के मध्य उसे ढूँढना चाहेगा।

किन्तु भक्त प्रायः कड़क स्वभाव के होते हैं और उनके साथ रहना कठिन तथा मिथ्या अहंकार के लिए भारी होता है। ऐसा विशेषकर ब्रह्मचारियों के लिए है जिन्हें अन्य किसी आश्रम की तुलना में कम स्वतन्त्रता रहती है और जिनसे समर्पण की अधिक आशा की जाती है। विशेषरूप से नये भक्तों को नई जीवनशैली में ढलने में कठिनाई



हो सकती है। और प्रशिक्षण के अभाव में वे कभी गलत तरीके से काम कर सकते हैं या बोल सकते हैं अतः उनको सही करना आवश्यक होता है। इन सब कठिनाईयों के बावजूद, ब्रह्मचारियों को पथ पर बने रहने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिये। ब्रह्मचारी आश्रम की ठोकरें खाना, कृषष्णभावनामृत से विमुख जीवन या कृषष्णभावनामृत में विवाहित जीवन की कहीं अधिक कठोर ठोकरें खाने से अच्छा है। यदि आपको विराम चाहिए, तो पवित्र नाम की, प्रभुपाद की पुस्तकों और श्रीकृष्ण प्रसाद की शरण लीजिये किन्तु बाहर मत जाइए।

सबसे उत्तम संगति अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के भीतर ही पाई जाती है। यद्यपि विश्वभर में अनेक वैष्णव संघ हैं किन्तु इस्कॉन तो श्रील प्रभुपाद का आन्दोलन है। श्रील प्रभुपाद को श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रचार मिशन को पूरा करने का विशेष वरदान दिया था और इस्कॉन श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा को पाने तथा उसे विस्तारित करने हेतु विशेष आन्दोलन है।

इस प्रचार आन्दोलन में व्यवहारिक आवश्यकता के दबाव में भक्तगण कठिन श्रम करने, सहयोग करने और शरण लेने के लिए बाध्य होते हैं। कभी-कभी भक्तगण गलतियाँ करते हैं या वे व्यवहार कुशल नहीं लगते किन्तु यह जानना चाहिये कि वे संकीर्तन की अग्नि में शुद्ध हो रहे हैं और यदि हम निष्ठावान बने रहें तथा भक्तों के संग में रहते रहेंगे तो हम भी शुद्ध हो जाएँगे।

कभी-कभी कनिष्ठ भक्त ज्येष्ठ भक्तों के साथ एक ही मन्दिर में रह रहे होते हैं और उनकी संगति (जिसकी उन्हें स्वयं के आध्यात्मिक उत्थान के लिये नितांत आवश्यकता होती है) करना चाहते हैं किन्तु यह सोचकर कि ज्येष्ठ भक्त उनके द्वारा बाधाग्रस्त होना नहीं चाहेंगे वे ऐसा करने से झिझकते हैं। किन्तु वास्तव में इसका उल्टा सही होता है। यदि उचित तथा आदरपूर्ण ढंग से उनके पास जाया जाए तो कोई भी ज्येष्ठ वैष्णव प्रसन्नता से निर्देश तथा परामर्श देंगे। वस्तुतः ज्येष्ठ भक्तों का यह कर्तव्य है कि वे कनिष्ठ भक्तों को आगे बढ़ने में सहायता करें। भक्ति विनोद ठाकुर का परामर्श है कि मनुष्य को वैष्णव का कूकर बनना चाहिए। जिस तरह एक कूकर का पिल्ला अपने स्वामी की शरण पाने का उत्सुकता से प्रयास करता है उसी तरह हमें वैष्णवों के पास जाकर उनकी संगति करने में लज्जा नहीं करनी चाहिए। हमें अपने ज्येष्ठ वैष्णवों के साथ अत्यधिक घनिष्ठता भी नहीं जतानी चाहिए अपितु ऐसे वैष्णवों के पास विनीत जिज्ञासा के साथ जाना चाहिए और कुछ सेवाएँ अर्पित करनी चाहिए। भगवद्गीता (४.३४) में श्रीकृष्ण द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त करने की यही विधि दी गई है।

संगति के विषय में एक व्यवहारिक तथ्य है कि यथा सम्भव ब्रह्मचारी को कभी भी अकेले नहीं होना चाहिये बल्कि अन्य भक्तों (उत्तम हो ब्रह्मचारियों) के संग में होना चाहिये। मध्व सम्प्रदाय में आश्रम के बाहर जाने वाले ब्रह्मचारी एक दूसरे को संग तथा संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से कम से कम चार के गुट में जाते हैं। ब्रह्मचारियों के लिये अधिकारियों की अनुमति लिये बिना (या यदि वे वरिष्ठ ब्रह्मचारी हैं तो कम से कम बताये बिना) कहीं भी अकेले जाना विशेष रूप से खतरनाक एवं अनुचित है। एक ब्रह्मचारी का कर्मी वस्त्रों मे कहीं भी अकेले जाना विशेषकर हानिकारक है और असमान्य परिस्थितियों के अतिरिक्त इसे प्रोत्साहित या अनुमोदित नहीं किया जाना चाहिए।

## सरलता

"हमारा जीवन सरल है। हमें विलासिता नहीं चाहिए।"[७९] मानसिक तथा बाह्य सरलता ब्रह्मचारी की पहचान है। वह वस्तुओं का संग्रह नहीं करता अपितु उतना ही रखता है जितने की उसे आवश्यकता होती है। निश्चय ही उसका कोई निजी खाता नहीं होता। उसके पास जो भी होता है उसे वह अपने गुरु की सम्पत्ति मानता है, अपनी नहीं। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने कहा है कि सरलता वैष्णव की पहली योग्यता है।[८०] यदि ब्रह्मचारी सम्पत्ति एकत्र करने तथा ऐश्वर्यमय जीवन के प्रति आकृष्ट होता है तो यह उसकी आध्यात्मिक प्रगति के लिए शुभ संकेत नहीं है। फिर भी, यदि वह ऐसी वस्तुएँ चाहता है, तो वह विवाह कर सकता है, धन कमा सकता है और उसकी पत्नी जिस वस्तु की अनुमति दे उसे खरीद सकता है। किन्तु जब तक वह ब्रह्मचारी आश्रम में है उसे सादे ढंग से पहनना और जीवनयापन करना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद: "आध्यात्मिक प्रगति के लिए भक्तों को सर्वोत्तम परामर्श है कि वे कम से कम आवश्यकताओं से संतुष्ट रहें।"[८१] "ब्रह्मचारी को वस्तुत: किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती।"[८२]

ब्रह्मचारियों को अपने आप जो कुछ मिल जाए उसी से तुष्ट होना चाहिए और विलासी रहन-सहन के लिए प्रबन्ध नहीं करना चाहिए। उन्हें भौतिक ऐश्वर्य से सतर्क रहना चाहिये भले ही वह बिना प्रयास के ही क्यों न मिला हो।

ब्रह्मचारियों को सरल तथा विरक्त होना चाहिए इसलिए उनके लिए अपनी तत्कालिक आवश्यकताओं से अधिक धन का संग्रह करना उचित नहीं है। यदि कोई ब्रह्मचारी प्रचुर मात्रा में लक्ष्मी एकत्रित कर भी रहा हो तो भी उसकी इच्छा एवं सोच



ऐसी नहीं होनी चाहिए कि इस लक्ष्मी को अपने ऊपर अनावश्यक खरीदारी करने के लिए खर्च करने का उसका अधिकार है। ब्रह्मचारी के लिये किसी विशिष्ट कृष्णभावनाभावित प्रयोजन के बिना अत्यधिक धन रखना या बचत करना ब्रह्मचारी नैतिकता के विरुद्ध है। यह घातक भी है क्योंकि श्रीकृष्ण पर धन खर्च न करके उसे रखे रखना रावण की नीति है और इससे पतन होता है। ब्रह्मचारियों के लिए उचित मान दण्ड यही है कि जो भी धन उन्हें मिले वे मन्दिर में दें।

इस तरह ब्रह्मचारी का मन शांत रहेगा। जीवन में उसका केवल एक स्वार्थ होता है: गुरु तथा श्रीकृष्ण की सेवा करना। उसे पारिवारिक उत्तरदायित्वों के विषय में चिन्ता करने की जरुरत नहीं होती, न ही वह राजनीतिक गुटबंदी में पड़ता है। उसका विमल मन कृष्णभावनामृत के लिए सशक्त उर्वरक्षेत्र होता है। एक बार श्रील प्रभुपाद ने गुरुकुल के सन्दर्भ में कहा था, "सरल, ईमानदार ब्रह्मचारी ब्राह्मणों की ही मुझे आवश्यकता है।"[८३]

## साधन

"हे सम्पत्ति के विजेता अर्जुन। यदि तुम अविचल भाव से अपने मन को मुझ पर स्थिर नहीं कर सकते तो भक्तियोग के नियमों का पालन करो। इस तरह मुझे प्राप्त करने की इच्छा विकसित करो।"[८४]

कृष्णभावनामृत में स्थायी प्रगति का आधार अच्छा साधन है। ब्रह्मचारी जीवन परम्परा से साधन अर्थात मन्त्रों का जाप, शास्त्रों का अध्ययन तथा पूजा के चारों ओर केन्द्रित है।

श्रील प्रभुपाद ने हमें एक निश्चित प्रात:कालीन कार्यक्रम दिया है जिसके अन्तर्गत हैं मंगल आरती, तुलसी आरती, अर्चाविग्रह का अभिवादन, गुरु पूजा तथा श्रीमद्भागवतम् कक्षा और संध्याकालीन कार्यक्रम जिसके अन्तर्गत हैं तुलसी आरती, संन्ध्या आरती तथा भगवद्गीता कक्षा और उसके साथ-साथ हरे कृष्ण महामन्त्र का सोलह माला जप। यदि हम श्रद्धा तथा उत्साहपूर्वक इस कार्यक्रम का दृढ़ता के साथ पालन करें तो हम सदैव कृष्णभावनामृत में प्रसन्नचित रहेंगे।

अतएव भक्तों को मानसिक धरातल से बाहर आकर सीधे इस कार्यक्रम में प्रविष्ट होना चाहिये। कीर्तन में खड़े ही न रहिए। भगवान् की प्रसन्नता के लिए ठीक से नृत्य करें। सोलह माला जप अस्पष्ट घिसटते हुए उच्चारण के साथ नहीं बल्कि पवित्र नाम से प्रार्थना करते हुये कीजिये। मन और कान खुले रखकर कक्षा में ध्यानपूर्वक

सुनिये। श्रीकृष्ण के बारे में सुनने और कीर्तन करने में इतना अमृत है कि कृष्ण, भगवान् चैतन्य के रूप में उस रस का आस्वादन करने स्वयं आते हैं। किन्तु उस स्वाद का आस्वादन करने की पात्रता प्राप्त करने के लिये हमें भरसक प्रयास करना होगा। हमें यह एक डग भरना होगा और फिर श्रीकृष्ण हमारी ओर अपने सौ डग भरेंगे।

उत्तम साधन का अर्थ है प्रतिदिन बिना विफल हुए सम्पूर्ण प्रातःकालीन कार्यक्रम में उपस्थित रहना, अधिक से अधिक प्रातः ४.०० बजे तक उठ जाना, आदि से अन्त तक प्रत्येक उत्सव (गुरुपूजा, कक्षा आदि) में उपस्थित रहना (देर से आना या जल्दी चले जाना नहीं), प्रातः कालीन कार्यक्रम के समय निर्देशित सभी या अधिकांश मालाओं को पूरा करना और पूरे समय उत्साहित तथा सावधान रहना। उत्तम प्रातः कालीन कार्यक्रम हमें दिन भर हमारे कृष्णभावनाभावित कार्यों को पूरा करने की आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है।

वे भक्त जो प्रातः कालीन कार्यक्रम के प्रति सचेष्ट रहते हैं शनैः शनैः कृष्णभावनामृत में शक्ति तथा गहराई विकसित करते हैं। किन्तु वे भक्त, जो किसी भी कारण से प्रातःकालीन श्रवण तथा कीर्तन के प्रति अपने रुझान को कम कर देते हैं वे शनैः शनैः क्षीण तथा माया के आक्रमण के प्रति संवेदनशील होते जाते है। निश्चय ही, जो लोग प्रातः काल उठने तथा प्रबल साधन के लिये वचन बद्ध नहीं होते वे ब्रह्मचारी नहीं बने रह सकते, न ही ऐसे व्यक्तियों को ब्रह्मचारी-आश्रम में रहने की अनुमति देनी चाहिए।

श्रील प्रभुपाद यह भी चाहते थे कि भक्तगण संध्या कालीन कार्यक्रम में सम्मिलित हों अथवा संध्याकाल का उपयोग प्रचार कार्य में लगाएं।

यद्यपि पुजारियों, रसोइयों तथा भ्रमण कर रहे प्रचारकों के लिए कुछ छूट आवश्यक हो सकती है किन्तु हमें सावधान रहना होगा कि हमें उपलब्ध श्रवण तथा कीर्तन कहीं अपर्याप्त न हो या कहीं हम इसके प्रति लापरवाह न हो जायें। यदि किसी कारणवश हमें प्रातःकालीन या संध्या साधन कार्यक्रमों के कुछ अंश से वंचित होना पड़े तो हमें दिन के अन्य समय इसकी पूर्ति कर लेनी चाहिए। रसोइयों तथा पुजारियों के लिए सर्वोत्तम यही होगा कि वे अति शीघ्र जाग जाएं और मंगल आरती के पूर्व जप कर लें।

यदि भक्तगण कृष्णभावनामृत में अपने को निर्बल (क्षीण) अनुभव कर रहे हों, भक्तिमय सेवा के प्रति उत्साह घट रहा हो एवं भौतिक इच्छाएँ बढ़ रही हों, तो



सामान्यतया इसका मूल कारण श्रवण तथा कीर्तन में कमी का होना है। तो उस उत्साह को वापस कैसे लाया जाए? उत्साहपूर्वक व्यवहार करने मात्र से उत्साह आ जायेगा। कीर्तन में उछलने का प्रयास तो कीजिये भले ही यांत्रिक ही सही और देखिये कि क्या आप खिन्न बने रह सकते हैं? श्रील प्रभुपाद ने लिखा है "नृत्य करो। भावावेश न होने पर भी नृत्य करने पर वह आ जाएगा।"[८५]

अध्ययन तथा ध्यानपूर्वक जप नितान्त महत्वपूर्ण हैं। जप के लिए मुख्य बात यह है कि स्पष्ट रूप से उच्चारण कीजिये और ध्यानपूर्वक सुनिये। और ब्रह्मचारियों को अध्ययन के लिये समय निकालना ही चाहिये। भगवद्गीता (१६.१) के अनुसार स्वाध्याय अर्थात शास्त्रों का अध्ययन विशेषकर ब्रह्मचारियों के लिये है। अतः ब्रह्मचारियों को परिश्रम से श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों का तथा अन्य अधिकृत कृष्णभावनामृत साहित्य का अध्ययन करना चाहिये, और व्यर्थ का कर्मी तथा मायावादी कचरा पढ़ने से बचना चाहिये। प्रभुपाद की पुस्तकों का अध्ययन हमें श्रीकृष्ण से आसक्त और माया से मुक्त होने में सहायता करता है।

माया सदैव हमारा उत्साह छीन लेने का प्रयास करती है, और अधिकांशतः संदेह के रूप में भक्तों पर आक्रमण करती है। संदेह ऐसा रोग है जिसका परिणाम आध्यात्मिक मृत्यु हो सकता है।[८३] अनेक भक्त, विशेषकर नवागंतुक भक्तगण, कृष्णभावनामृत विधि का पालन करते हुए भी इसके प्रति पूर्णतया आश्वस्त नहीं होते। उनके लिए श्रीकृष्ण की संस्तुति है, "अज्ञान के कारण तुम्हारे हृदय में जो संदेह उठे हैं उन्हें ज्ञान के हथियार से खंड-खंड कर देना चाहिए।"[८७] श्रीकृष्ण कथा का श्रवण करना भवौषधि है अर्थात भौतिक जीवन रूपी रोग की दवा है।[८८]

प्रभुपाद की पुस्तकों का अध्ययन किये बिना, हम कैसे उस दृढ़ संकल्प को कायम रख पायेंगे जो आत्म-साक्षात्कार के लिये आवश्यक तपस्याओं को स्वेच्छा से अपनाने के लिये आवश्यक है? "कृष्णभावनामृत आन्दोलन से जुड़े सारे भक्तों को वे सभी पुस्तकें पढ़नी चाहिए जो अनुवादित हो चुकी हैं अन्यथा वे भक्त केवल खाएंगे, सोएंगे और अपने पद से च्युत हो जायेंगे। इस तरह वे दिव्य आनन्द के नित्य आनन्ददायक जीवन को प्राप्त करने के अवसर से चूक जाएंगे।"[८९]

श्रील प्रभुपाद ने संस्तुति की है कि जो गोस्वामी (इन्द्रियों के स्वामी) बनना चाहते हैं उन्हें ध्यानपूर्वक 'उपदेशामृत' पुस्तक पढ़नी चाहिए। इसलिए इसमें दिये गये उपदेश से ब्रह्मचारीगण स्पष्टतः लाभान्वित हो सकते हैं।

जप के विषय में श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "समस्त नियमों में से गुरु द्वारा दिया गया कम से कम सोलह माला नाम जप करने का आदेश अत्यावश्यक है।"[१०] सत्स्वरूप दास गोस्वामी ने 'जप रिफार्म नोटबुक' तथा 'रीडिंग रिफार्म नोटबुक' संकलित की हैं जिससे भक्तगण उत्तम जप तथा अध्ययन की आदतें विकसित कर सकें।

## नियमबद्धता

नियमबद्धता का अर्थ है प्रतिदिन उसी काम को उसी समय पर करना या ठीक उसी समय पर न हो तो कम से कम एक समीपवर्ती समय-सारणी पर आधारित क्रम में करना। उदाहरणार्थ, एक भक्त का नियम हो सकता है, ३.३० बजे प्रात: उठकर स्नान करना और मंगल आरती के पूर्व कुछ माला नाम जप करना, दोपहर में मुख्य भोजन करना आदि। ऐसी नियमबद्धता से संकल्प को दृढ़ करने और मानसिक स्तर से बाहर निकलने में सहायता मिलती है। जो भक्त नियत समय पर जागता है वह यह नहीं सोचता कि "बहुत ठंड है," या "मैं थका हूँ।" वह तुरन्त उठ जाता है और उसे यह नहीं सोचना पड़ता कि आगे क्या करना है। वह अपनी समय-सारणी का पालन करता है।

नियमबद्धता मन को शान्त रखने में और समय का सर्वाधिक कार्यक्षमता से उपयोग करने में सहायक होती है। नियमबद्धता के बिना जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि नियमबद्धता सुदृढ़ साधन का आधार है। नियमबद्धता के बिना सही रूप में साधन असम्भव है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी, प्रतिदिन निश्चित समय पर सोना, जागना, खाना, मल त्याग करना एवं स्नान करना लाभप्रद है।

हमारे मन्दिरों में भक्ति के कार्यक्रम तथा प्रसाद के समय निश्चित हैं, अत: यदि हम मात्र मन्दिर के कार्यक्रमों का पालन करें और भक्तों के साथ प्रसाद ग्रहण करें तो उतना तो हम स्वत: नियमित हो जाएंगे।

यात्रा करते समय नियमित रह पाना ज्यादा कठिन है किन्तु सम्भव है। श्रील प्रभुपाद निरन्तर यात्रा करते हुए भी नियमित कार्यक्रम का पालन करते थे।

## व्यस्तता

श्रीकृष्ण का एक शुद्ध भक्त श्रीकृष्ण के लिए कोई भी सेवा करने में, चाहे वह जितनी निम्न क्यों न लगे, संतुष्ट रहता है। ब्रह्मचारी को ऐसे प्रशिक्षित किया जाता



है कि वह जो भी उसे करने के लिये कहा जाये उसे करे। बहुत योग्य होने पर भी एक ब्रह्मचारी श्रीकृष्ण की सेवा के लिये, सभी प्रकार की तुच्छ सेवाओं सहित, जो भी आवश्यक हो उसे करने में इच्छुक तथा तैयार रहता है। एक आदर्श ब्रह्मचारी, सभी सेवाओं को शीघ्रता से, कार्यक्षमता से एवं प्रसन्नतापूर्वक करता है।

परम्परागत गुरुकुल पद्धति में बालकों को कठोर अनुशासन में रखा जाता है। वे ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं, त्यों-त्यों गुरु उन्हें उनकी प्रवृत्तियों के अनुसार काम में लगाता है। इसी तरह जब कोई युवक इस्कॉन में आता है तो आदर्श रूप में उससे जो भी सेवा करने के लिए कहा जाता है उसे वह करता है। (श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर नये व्यक्तियों की परीक्षा लेने के लिए उनसे बर्तन धुलवाते थे, चाहे वे कितने भी उच्च शिक्षा प्राप्त क्यों न हों ) परन्तु कुछ समय पश्चात यदि उसे उसकी मानसिक एवं शारीरिक प्रवृत्तियों के अनुसार यथोचित रूप से सेवा में संलग्न न किया जाये तो वह असंतुष्ट हो सकता है। वस्तुत: यदि कोई ब्रह्मचारी किसी भक्तिमय सेवा में संलग्न नहीं है तो शीघ्र ही वह एक अन्य कार्य में व्यस्त हो जायेगा, जो उसे अनेक वर्षों तक व्यस्त रखेगी - अर्थात विवाह।

गुरु के लिए भिक्षाटन करना ब्रह्मचारियों का परम्परागत कर्तव्य है। "ब्रह्मचारी को शुरु से ही प्रशिक्षित किया जाता है कि वह जीवन के अन्त में किस तरह संन्यासी बने। उसे गुरु के लिए भिक्षा एकत्र करने के द्वारा प्रशिक्षित किया जाता है।"[११]

मन्दिर निर्माण एवं देख-रेख के लिए धन एकत्र करना परम्परागत ब्रह्मचारियों द्वारा भिक्षाटन करने जैसा नहीं है और कुछ भक्तों का मत है कि ब्रह्मचारियों को इस कार्य में नहीं लगाया जाना चाहिए। किन्तु श्रील प्रभुपाद ने स्वयं ब्रह्मचारियों को प्रचुर धन संग्रह करने के कार्य में लगाया था। भिक्षा माँगने से ब्रह्मचारी विनयशीलता सीखता है। वह माँग कर जितना एकत्र करता है, उसे गुरु को अर्पित करके गुरु के प्रति दास भाव को दृढ़ बनाता है। वह त्याग तथा वैराग्य का अभ्यास करता है और इस कहावत को चरितार्थ करता है "मेरा कुछ भी नहीं है।"

यद्यपि आधुनिक जगत में भिक्षाटन की परम्परागत शैली व्यवहारिक नहीं है, किन्तु इस्कॉन ब्रह्मचारी द्वारा भिक्षा संग्रह कार्य को, एक अनोखी दिव्य योजना के माध्यम से, प्रचार कार्य से जोड़ दिया गया है - यह है पुस्तक वितरण।

पुस्तक वितरण से गुरु, भगवान् चैतन्य, श्रीकृष्ण तथा सम्पूर्ण परम्परा तुष्ट होती है। कर्मीजन वर पाते हैं, पुस्तक वितरक आशीर्वाद पाते हैं, कृष्णभावनामृत आन्दोलन फैलता है और श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिए लक्ष्मी मुक्त होती है। पुस्तक वितरण

ब्रह्मचारी के लिए आदर्श सेवा है। एक बार जब यह सुझाव रखा गया कि एक नायक ब्रह्मचारी पुस्तक वितरक को संन्यास प्रदान किया जाए तो श्रील प्रभुपाद ने उत्तर दिया कि यह आवश्यक नहीं है क्योंकि, "वह किसी संन्यासी से बढ़कर कार्य कर रहा है क्योंकि वह दिन प्रतिदिन सैकड़ों पुस्तकें वितरित करता है और अन्यों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है।"[१३]

"पुस्तक वितरण निश्चय ही सर्वोत्तम प्रशिक्षण है। भौतिक जगत की क्षणिक दुःखमय प्रकृति को निरन्तर देखते हुए व्यक्ति भौतिक जीवन से विरक्त रहता है और उसी के साथ पतित बद्धात्माओं पर भी चैतन्य महाप्रभु की अद्वितीय दया प्रतिदिन देखकर कृष्णभावनामृत में अपनी श्रद्धा विकसित करता है। विरोधी तर्कों को पराजित करने तथा अन्यों को आध्यात्मिक जीवन स्वीकार करने के लिए आश्वस्त करने के कारण वह एक सक्षम प्रचारक बन जाता है।" (इन्द्रद्युम्न स्वामी)

संकीर्तन दल में जाना ब्रह्मचारी के लिए परम सौभाग्य का विषय है। यह एक गहन एवं एक लक्ष्य वाला मिशन है - बद्ध जीवों को, श्रील प्रभुपाद की अधिक से अधिक पुस्तकें दिन प्रतिदिन, सप्ताह प्रति सप्ताह, मास प्रतिमास तथा वर्ष प्रतिवर्ष वितरित करना। ऐसे परम शरणागत संकीर्तन-सैनिक तपस्या तथा एकाग्रता में शक्तिशाली बनते हैं और कृष्णभावनामृत में ठोस सुदृढ़ आधार विकसित करते हैं। इसकी संस्तुति की जाती है कि कृष्णभावनामृत में आये नये भक्त प्रथम दो से लेकर चार वर्ष संकीर्तन में, विशेषकर सचल संकीर्तन में व्यतीत करें। इसके बाद चाहे वे जो भी करें, कृष्णभावनामृत में उनकी पैठ हो गई होती है और वह उन्हें आजीवन कृष्ण का स्मरण करते रहने में सहायक होती है।

किन्तु प्रत्येक ब्रह्मचारी प्रतिदिन पुस्तक वितरण करने नहीं जाएगा। कुछ भक्त इस कार्य से तालमेल नहीं बैठा पाएंगे। किन्तु यह अयोग्यता नहीं है। ऐसी अनेक सेवाएं है जिनमें भक्तगण प्रसन्नता से अपने को लगा सकते हैं। उदाहरणार्थ, श्रील प्रभुपाद ने लिखा है "ब्राह्मण ब्रह्मचारी अर्चाविग्रह पूजन के लिए अति उत्तम होते हैं"[१४]

किन्तु यदि ब्रह्मचारीगण प्रचार कर सकें तो यह सर्वोत्तम है। प्रचार कृष्णभावनामृत में एक आस्वाद तथा साक्षात्कार प्रदान करता है जिसकी आवश्यकता विशेषकर ब्रह्मचारियों को अपने आश्रम में उच्च त्यागस्तर बनाये रखने के लिए होती है। अन्ततोगत्वा प्रत्येक सेवा प्रचार ही है क्योंकि सम्पूर्ण कृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रचार के ही निमित्त है। किन्तु पुस्तक वितरण, हरिनाम संकीर्तन, विद्यालयों में प्रचार कार्यक्रम आदि से हम अभक्तों को कृष्णभावनामृत प्रदान करते हुए उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं। इससे हम श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपावृष्टि का प्रत्यक्ष अनुभव कर पाते हैं।



किन्तु किसी में श्रेष्ठता की भावना नहीं आनी चाहिए क्योंकि घमंडी का सिर नीचा होता है। यह आवश्यक नहीं है कि जो ब्रह्मचारी बाहर जाकर पुस्तकें वितरित करता है वह फर्श बुहारने वाले ब्रह्मचारी की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सच्चाई तो यह है कि सभी सेवाएं एक सी हैं - श्रीकृष्ण यथावत् सेवा के बाह्य रूप को नहीं वरन् भक्त के सेवा भाव को ग्रहण करते हैं।

ब्रह्मचारियों को गुरु या उनके प्रतिनिधि सेवा में लगाते हैं। संवेदनशील गुरु या मन्दिर अध्यक्ष यह जानते हुए कि सभी प्रगति तथा शरणागति के विभिन्न स्तरों पर हैं, अपने अधीन ब्रह्मचारी के साथ व्यक्तिगत रूप से व्यवहार करेंगे। कनिष्ठ भक्तों को प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन की विशेषरूप से आवश्यकता होती है। यह बलपूर्वक आगे बढ़ाया जाने वाला आन्दोलन है अतः पीछे से दबाव होना ही चाहिए। किन्तु सर्वोत्तम नायकगण अपने अनुचरों में उत्साह उत्पन्न करते हैं - बल प्रयोग सदैव काम नहीं करता। आदर की माँग करने की अपेक्षा अपनी योग्यता के आधार पर आदर के अधिकारी बनना श्रेयस्कर है।

जहाँ तक सम्भव हो, ब्रह्मचारियों को इस तरह सेवा में लगाया जाना चाहिए कि स्त्रियों के साथ उनका कम से कम लेन-देन हो। भारत से बाहर मन्दिर प्रबन्ध की सेवा में ब्रह्मचारीगण स्त्रियों के सम्पर्क में इस तरह से आते हैं कि उनके ब्रह्मचारी सिद्धान्तों को लगभग सदैव समझौता करना पड़ता है। इसी तरह ब्रह्मचारियों के लिए व्यापार करना तनिक भी उपयुक्त नहीं है। व्यापार में लेन-देन से लाभ-हानि की मनोवृत्ति पैदा होती है और अभक्तों तथा स्त्रियों के साथ भौतिकतावादी लेन-देन सम्भव हो जाता है। जो भक्त धन कमाने में लग जाते हैं वे अक्सर अपनी आत्मा को बेच बैठते हैं। यदि किसी को व्यापार करना है तो इसे गृहस्थों पर छोड़ दें।

अन्ततः हमें जो भी सेवा दी जाये हम यह सोचकर प्रसन्न रह सकते हैं कि श्रीकृष्ण के लिए कुछ करने का सुअवसर मिला है। अंततः भक्ति सेवा तो एक विशेष लाभ है - ऐसा नहीं है कि श्रीकृष्ण को अर्पित करने के लिए हमारे पास कोई अद्भुत वस्तु है। केवल हमें येन केन प्रकारेण अपने को श्रीकृष्ण की सेवा में व्यस्त रखना है क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर कहा गया है। करने के लिए सदैव कुछ न कुछ तो रहता ही है। यदि ऐसा नहीं है तो भक्तों को करने के लिए कुछ न कुछ खोज लेना चाहिये। वह दूसरे भक्त की सहायता कर सकता है, पढ़ सकता है, जप कर सकता है, श्लोक सीख सकता है या और कुछ। भक्तगण! सुस्त मत रहो! सतर्क रहो! जीवन्त रहो! कृष्णभावनाभावित रहो! मन, शरीर तथा वचन से श्रीकृष्ण की सेवा में व्यस्त रहना माया से दूर रहने का निश्चित साधन है।

## प्रचार

रक्षा का सर्वोत्तम उपाय आक्रमण है और माया के विरुद्ध सबसे प्रभावशाली शस्त्र कृष्णभावनामृत का प्रचार है। प्रचार द्वारा हम न केवल चारों ओर फैली माया पर प्रहार करते हैं अपितु अपने हृदयों से माया को धो डालते हैं। ''यदि कोई व्यक्ति प्रचार करने, अभक्तों से सतत चर्चाएँ करने में रुचि नहीं रखता, तो प्रकृति के गुणों के प्रभाव को लाँघ पाना अत्यन्त कठिन है।''[९४] श्रील प्रभुपाद: ''जो लोग इन दो वैदिक ग्रन्थों (भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवतम्) के प्रचारकार्य में अपने को लगाते हैं, वे माया द्वारा हम पर थोपे गये भ्रामक बद्धजीवन से आसानी से बाहर निकल आते हैं।''[९५]

अत: ब्रह्मचारीगण, प्रचार करने का मन बनाइये। कर्मियों को, भक्तों को, अपने आपको तथा दीवारों को प्रचार कीजिये। यदि हम सदैव इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार करने के बारे में सोचेंगे तो भगवान् चैतन्य अवश्य ही हमारी रक्षा करेंगे।

श्रील प्रभुपाद: ''इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का अर्थ है प्रचार करना। प्रचार के बिना किसी को कोई स्वाद नहीं मिल सकता, और बिना स्वाद के आप इस 'हरि हरि बोल' को नहीं बनाये रख सकते। यदि तुम लोग प्रचार नहीं करते, तो मेरे चले जाने के कुछ वर्षों बाद, यह हरे कृष्ण आन्दोलन और नहीं रहेगा। चूंकि गिरजाघरों में कोई प्रचार नहीं कर रहा है, अत: वे बन्द हो रहे हैं। तो फिर तुम लोग इस प्रचारकार्य में गम्भीरता से क्यों नहीं लग जाते? सच कहा जाए, तो मेरे गुरु महाराज ने इस आन्दोलन का इसी कार्य के लिए आविष्कार किया है। मेरी अभिलाषा है कि तुम लोग इस ईशविहीन समाज के विरुद्ध क्रान्ति ला दो। यही मेरा मिशन है। इसलिये मैं इस वृद्धावस्था में भी काम किये जा रहा हूँ। हम प्रत्येक को मार्गदर्शन देना चाहते हैं। इसलिए तुम्हें मेरी पुस्तकों को जानना होगा। पढ़ो और प्रचार करो - दोनों ही बातें होनी चाहिए - तभी तुममें शक्ति आएगी। प्रचार का अर्थ है लड़ना।''[९६]

## भ्रमण

**ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के संग में भ्रमण तथा प्रचार करना अद्भुत जीवन है। विरक्ति, श्रीकृष्ण पर निर्भरता, सादा जीवन तथा उच्च विचार, आत्मनिर्भरता, दिव्य साहसिकता, विविधता, अनुभव अर्जित करना, कुतूहल - ये सभी एक साथ इसी में आ जाते हैं। गतिवान व्यक्ति का स्त्रियों के साथ सम्बन्ध स्थापित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। भ्रमणशील संकीर्तन ब्रह्मचारी को मन्दिर की ब्रह्मचारीणियों के नामों तक का पता नहीं होगा, वे कैसी दिखती हैं यह तो कोसों दूर की बात है।**



वह वस्तुएं भी एकत्र नहीं करेगा - आखिर एक नाइलॉन के झोले में आप कितना रख सकते हैं?

श्रील प्रभुपाद: ''ब्रह्मचारी तथा संन्यासी भ्रमण करने के लिए बने है।''[९७] ''जो लोग आध्यात्मिक प्रवृत्ति के हैं उनके लिए भ्रमण बहुत अच्छा है। आप और लोकप्रिय होंगे और कोई कठिनाई भी नहीं होगी। मन स्थिर रहेगा।''[९८]

## स्वास्थ्य

''जब तक शरीर स्वस्थ तथा मजबूत है तब तक जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए हमें इस तरह रहना चाहिए कि सदैव स्वस्थ रहें और मन तथा बुद्धि बलवान रहे जिससे हम जीवन के लक्ष्य को समस्याओं से पूर्ण जीवन से विभेदित कर सकें।''[९९]

ब्रह्मचर्य स्वयं ही स्वास्थ्य के लिए उत्तम बलवर्धक रसायन है। जैसा कि धन्वन्तरि ने अपने शिष्यों से कहा था, ''ब्रह्मचर्य सचमुच अमूल्य रत्न है। यह सबसे अधिक प्रभावशाली औषधि है। यह वह अमृत है जो रोग, क्षय तथा मृत्यु को नष्ट करता है। शान्ति, कान्ति, स्मृति, ज्ञान, स्वास्थ्य तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य सर्वोच्च धर्म, महानतम ज्ञान तथा सर्वोच्च बल है।'' इसलिए, ''ब्रह्मचारी को किसी प्रकार की शारीरिक शिकायत नहीं होनी चाहिए''[१००]

किन्तु वर्तमान पीढ़ी के लिए स्वास्थ्य विशेष समस्या बन चुका है क्योंकि हमारा पालन पोषण अज्ञानतापूर्ण रद्दी भोजन (जंक-फूड) तथा आत्मघाती लत में हुआ है। कुछ भक्तगण अपनी स्वास्थ्य समस्याओं का प्रत्युत्तर, शारीरिक स्थिति का न के बराबर ध्यान रखते हुए, अपेक्षा के द्वारा देते हैं। किन्तु यह मायावादी दृष्टिकोण के समान है कि ''मैं यह शरीर नहीं। मुझे इससे कुछ लेना देना नहीं है।'' किन्तु जो वैष्णव है वह सोचता है ''यह शरीर मेरा नहीं यह श्रीकृष्ण का है और श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिए इसे यथा आवश्यक स्वस्थ रखा जाना चाहिये।''

श्रील प्रभुपाद को चिन्ता रहती थी कि उनके शिष्य अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखें और वे अक्सर भोजन तथा औषधि के बारे में विस्तार से परामर्श देते थे। वे अपने पत्रों पर हस्ताक्षर करते हुए लिखते, ''आशा है तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा'' क्योंकि यह शरीर श्रीकृष्ण की सेवा करने के निमित्त है। इसलिए ''वैष्णव के लिए भगवान् की सेवा हेतु शरीर की रक्षा करना भक्तिमय सेवा का एक अंग है।''[१०१] कृष्ण के सेवक

के रूप में, हमें अपने स्वास्थ्य का ध्यान, आध्यात्मिक संस्कृति एवं विकास की बलि तथा शारीरिकता में अत्याधिक लिप्त होने के पाश में न गिरते हुए करना चाहिये।

सन्तुलित दृष्टि आवश्यक है: भक्तों को व्यवहारिक स्वास्थ्य रक्षा का मूलभूत ज्ञान होना चाहिए, सूझबूझ से रहना और खाना चाहिए। (नियमित समय पर मन्दिर का प्रसाद ग्रहण करके) और उचित स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये आवश्यक सुधारों को अपनाते हुये, भक्तिमय सेवा करते रहना चाहिए। उन्हें व्यर्थ के आहारों, स्वास्थ्यवर्धक भोजन के पैकेटों या स्वास्थ्य के विषय में कर्मियों के सम्मोहन से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद: "भक्त को चाहिए कि वह केवल उन्हीं वस्तुओं को ग्रहण करे जो उसके शरीर तथा आत्मा को बनाये रखने के लिये उपयुक्त हों और उन चीज़ों का परित्याग करे जिनसे शरीर की आवश्यकताएं बढ़ें। शरीर को बनाये रखने के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं को ही स्वीकार किया जाए। शारीरिक आवश्यकताओं को न्यूनतम बनाकर, कोई अपना समय प्राथमिक रूप से ईश्वर के नाम जप के माध्यम से कृष्णभावनामृत के अनुशीलन में लगा सकता है।"[१०२] "जो अधिक खाता है या बहुत कम खाता है, जो अधिक सोता है अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता उसके लिये योगी बनने की कोई सम्भावना नहीं है। जो खाने, सोने, आमोद-प्रमोद तथा काम करने की आदतों में नियमित रहता है, वह योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेशों को कम कर सकता है।"[१०३]

**भोजन करना**

श्रील प्रभुपाद के अनुसार बीमारी-अधिक खाने, अस्वच्छता, एवं/ या चिन्ता से उत्पन्न होती है। अधिक भोजन करना दर्जनों रोगों की जड़ है। इससे अधिक नींद आती है जो उन्नतिशील भक्तिमय जीवन का एक अन्य अवरोध है। अधिक भोजन करने के अन्तर्गत अधिक मात्रा और अच्छा भोजन दोनों आ जाते हैं। नियमित रुप से गरिष्ठ भोजन करना स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता और ब्रह्मचारियों के लिए तो अनुपयुक्त है ही। "नियमित आहार से नाना प्रकार के रोगों से उत्पन्न उत्पातों से बचा जा सकता है।"[१०४]

श्रील प्रभुपाद ब्रह्मचर्य में जीभ पर नियन्त्रण रखने की महत्ता की व्याख्या निम्नवत् करते हैं -

"भक्तिमार्ग में मनुष्य को नियमों का दृढ़ता से पालन सर्वप्रथम जीभ को नियन्त्रण में रखते हुए करना चाहिए (सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद:)। जीभ (जिह्वा) को नियन्त्रित किया जा सकता है यदि मनुष्य हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करे, श्रीकृष्ण



कथा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न कहे तथा श्रीकृष्ण को अर्पित भोजन के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु न ग्रहण करे। यदि वह इस तरह से अपनी जिह्वा को नियन्त्रित कर सके तो ब्रह्मचर्य तथा अन्य शुद्धिकरण विधियाँ स्वयमेव आ जाएँगी।"[१०५]

परम्परागत रूप से ब्रह्मचारियों को तपस्वी होना चाहिये, विशेषकर खाने के प्रति। अधिक मात्रा में खाने या गरिष्ठ भोजन करने (ऐसा भोजन जिसमें प्रोटीन, वसा, तेल, चीनी, जिसमें शहद, मेवे सम्मलित हैं, अधिक हों) तथा मसालेदार भोजन करने से इन्द्रियाँ बलवान होती हैं और उनको नियन्त्रित कर पाना कठिन हो जाता है। इसे हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है। अत: ऐसा भोजन कम मात्रा में ग्रहण किया जाना चाहिए। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, "भक्तों को चाहिए कि यथासंभव सादा भोजन करें। अन्यथा धीरे-धीरे भौतिक वस्तुओं के प्रति लगाव बढ़ेगा और इन्द्रियाँ प्रबल होने के कारण अधिकाधिक भौतिक भोग चाहेंगी। तब जीवन का वास्तविक कार्य - कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ने का कार्य - रुक जाएगा।"[१०६] "भक्त के लिए विशेष रूप से अत्याधिक भोजन करना बहुत ही बुरा है।"[१०७]

दूध ("दूध अर्थात गाय का दूध"[१०८]) भक्तों के लिए महत्वपूर्ण भोजन है। दूध मस्तिष्क के उन ऊतकों को पोषण पहुँचाता है जिनसे आध्यात्मिक ज्ञान समझने में सहायता मिलती है। "मनुष्य को पर्याप्त मात्रा में दूध पीना चाहिए। इस तरह से वह अपनी आयु बढ़ा सकता है, अपना मस्तिष्क विकसित कर सकता है, भक्तिमय सेवा कर सकता है और अन्ततोगत्वा भगवान् की कृपा प्राप्त कर सकता है।"[१०९] "हमें अपने मस्तिष्क को अत्यन्त स्वच्छ बनाना है जिसके लिए प्रतिदिन, ज्यादा नहीं, एक या आधा सेर दूध पीना चाहिए। यह आवश्यक है।"[११०] दूध काफी गर्म होना चाहिए और उसमें थोड़ा मीठा होना चाहिए जिससे यह आसानी से पच जाए और मस्तिष्क के लिए लाभदायक हो। किन्तु अत्यधिक दूध पीना अच्छा नहीं है। जब श्रील प्रभुपाद ने सुना कि कुछ भक्त अपनी मस्तिष्क शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से बहुत अधिक दूध पीते हैं तो उन्होंने कहा कि अत्यधिक दूध पीना राजसिक है।[१११]

"खाने का कार्यक्रम पोषणयुक्त तथा सादा होना चाहिए, विलासी नहीं। इसका अर्थ है कि भोजन में रोटियाँ, दाल, तरकारियाँ, कुछ मक्खन, कुछ फल तथा दूध रहे। अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है। किन्तु हमें नित्य ही हलवा, रसगुल्ले या ऐसी वस्तुऐं नहीं खानी चाहिएँ। उत्तम प्रकार का भोजन अधिक करने से कामेच्छा जागृत हो सकती है, विशेषतया मिष्ठानों को खाने से। कैसे भी हो, श्रीकृष्ण

प्रसाद ग्रहण करें किन्तु सावधान रहें कि विलासिता में न पड़ें। कृष्ण को तो हम अति सुन्दर व्यंजन अर्पित कर सकते हैं किन्तु हमारे लिये प्रसाद सादा होना चाहिए।"[११२]

"भोजन को कम करना चाहिये। अत्यधिक खाने से खूब नींद आती है और फिर कामेच्छा जागृत होती है।"[११३]

कुछ भक्त प्रसाद ग्रहण करते समय अपनी जिह्वा रोक न पाने के लिए पछताते हैं। किन्तु निराश होने की कोई बात नहीं है। केवल श्रीकृष्ण प्रसाद ग्रहण करने का व्रत लेने मात्र से जिह्वा पहले से ही नियन्त्रित है क्योंकि व्यर्थ के भोजन से इसे रोक दिया गया है। यदि हम धैर्यपूर्वक भक्तिमय सेवा करते रहें तो समय के साथ अधिक खाने की प्रवृत्ति पर स्वयमेव ही काबू पाया जा सकेगा। श्रीकृष्ण हमारी सहायता करेंगे।

जो भी हो, अत्यधिक प्रसाद ग्रहण करना सदैव कोई बड़ा पाप नहीं है। आखिरकार कृष्णभावनामृत 'रसोईधर्म' है। ब्रह्मचारी के रूप में हमें अपने पर नियन्त्रण रखना चाहिए किन्तु भक्त के रूप में हमें जानना चाहिये कि भोग को सही मात्रा में खाने की अपेक्षा दस गुना अधिक प्रसाद लेना श्रेयस्कर है। कभी-कभी, हँसी-हँसी में भक्तगण एक दूसरे को अधिकाधिक खाने के लिए उत्साहित भी करते हैं। यहां तक कि भगवान् चैतन्य भी ऐसा करते थे। भक्ति में संयम तथा उत्सव दोनों होते हैं। नियमाग्रह:[११४] में फँसे बिना इन दोनों को कब और कैसे प्रयोग में लाना है, यह एक कला है, जिसे भक्तों से सीखा जाना चाहिये। (एक बार दक्षिण भारत में प्रभुपाद किसी आजीवन सदस्य के घर प्रसाद ग्रहण करने जा रहे थे। किन्तु प्रभुपाद के संस्कृत सहायक प्रद्युम्न ने उपवास की दलील देकर खाने से इन्कार कर दिया। इस पर प्रभुपाद ने कहा कि उसका उपवास मानसिक सनक है।[११५])

वृन्दावन के षड्गोस्वामी, हमारे गुरूजन, प्राय: कुछ भी नहीं खाते थे। वे राधा-कृष्ण की सेवा में इतना लीन रहते थे कि खाना या सोना भूल गये। हमारे द्वारा इन महान आचार्यों की नकल करने का प्रश्न ही नहीं है। हमें तो केवल उनके आदेशों के अनुसार श्रद्धापूर्वक भक्तिमय सेवा करके उनके पद चिह्नों का अनुसरण करना है।

(भोजन तथा आहार के विषय में अधिक सूचना के लिए "वीर्य धारण" अनुभाग देखें)

**सोना ( नींद )**

सोना तमोगुण की एक अवस्था है इसलिए भक्तगण इसे यथा सम्भव कम करने का प्रयास करते हैं। "मनुष्य को प्रतिदिन छह घंटे से अधिक नहीं सोना चाहिए। जो



व्यक्ति चौबीस घंटो में से छह घंटे से अधिक सोता है वह निश्चय ही तमोगुण के द्वारा प्रभावित है।"[११६] "एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति कृष्णभावनामृत के अपने कार्यों को सम्पन्न करने में सदैव सतर्क रहता है इसलिए सोने में अनावश्यक समय बिताना बहुत बड़ी क्षति मानी जाती है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को यह सहन नहीं होता कि वह अपने जीवन के एक क्षणभर मात्र भी भगवान् की सेवा में लगे बिना रहे। इसलिए वह कम से कम सोता है।"[११७] "मनुष्य आध्यात्मिक अनुशीलन द्वारा नींद (सोने) पर विजय पा लेता है।"[११८]

कुछ भक्त दिन में पाँच घण्टे या इससे कम सोकर भी रह सकते हैं, कुछ को छह घंटे या अधिक चाहिए। नियत समय पर जागना और विश्राम करना—ऐसे नियमन से नींद को नियन्त्रित करने में सहायता मिलती है। सामान्यतया व्यक्ति को लगातार छह घंटे से अधिक नहीं सोना चाहिए। परम्परागत रूप से, ब्रह्मचारियों के लिए दिन में सोना वर्जित है और जहाँ तक सम्भव हो उसे कम करना चाहिए। प्रात:काल ४ बजे के पूर्व जाग जाना आवश्यक है (श्रील प्रभुपाद इस पर बल देते थे)। जहाँ तक सम्भव हो प्रात:कालीन कार्यक्रम के समय ऊँघने से बचना चाहिए क्योंकि यही वह समय है जब हमें आध्यात्मिक ध्वनि को आत्मसात् करने के लिए पूर्ण रूप से जागे रहना चाहिए। यदि प्रात:कालीन कार्यक्रम के समय नींद आए तो अपने मुखमण्डल पर पानी के छींटे डालें।

श्रीकृष्ण की सेवा में घण्टों बिताकर कठिन श्रम करने की इच्छा अच्छी बात है। किन्तु स्मरण रखें कि अठारह घण्टे ठीक से जागे रहना बीस घंटे अर्धनिद्रित रहने की अपेक्षा कहीं अच्छा है। (गाड़ी चालक विशेष ध्यान दें - यदि थके हों तो कदापि गाड़ी न चलाएँ! )। जिन्हें प्रात:कालीन कार्यक्रम में नियमित रूप से नींद सताती हो, उन्हें रात में जल्दी सो जाने का अथवा ऐसा सम्भव न हो तो दिन में थोड़ा विश्राम कर लेने का प्रबन्ध करना चाहिये।

एकान्त स्थान में सोना अच्छा नहीं है, विशेषतया नवदीक्षित भक्तों के लिए। अकेले भोजन करने की ही तरह, इसे इन्द्रियतृप्ति के रूप में लेने एवं आवश्यकता से अधिक करने की प्रवृत्ति होती है। सोने के पूर्व तथा पश्चात अपने गुरु को नमस्कार करें, यह स्मरण रखते हुये कि विश्राम का उद्देश्य उनकी (गुरु की) सेवा करने के लिए पुन: शक्ति प्राप्त करना है। जागने के बाद अपना बिस्तर समेट कर साफ सुथरे ढंग से रखना न भूलें।

ब्रह्मचारियों को एक पतली चटाई पर सोना सबसे अच्छा होता है, गद्दे पर नहीं।

भारत में कुशा की चट्टाइयाँ मिलती हैं और पश्चिम में कृत्रिम रबड़ या फोम की। फोम की चटाइयां फर्श की ठंड को भी रोकती हैं। जाड़ों में भारत में यही काम गद्दों से चलता है। जिनके शरीर में दर्द होता हो उन्हें भी गद्दे की आवश्यकता हो सकती है। गद्दों को पतला होना चाहिए। मोटे, कोमल गद्दे ब्रह्मचारियों के लिए नहीं हैं।

(सोने के विषय में विस्तृत विवरण 'वीर्य धारण' अनुभाग में मिलेगा)

**व्यायाम**

श्रील प्रभुपाद व्यायाम के अधिक पक्षधर नहीं थे किन्तु वे इसके पूर्ण विरुद्ध भी नहीं थे। उन्होंने कहा था कि तैराकी, कुश्ती तथा डंड पेलना ब्रह्मचारियों के लिए उपयुक्त व्यायाम हैं। अतः यदि भक्तगण प्रतिदिन कुछ मिनटों तक व्यायाम करने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। व्यक्ति विशेष की व्यायाम की आवश्यकता उसकी आयु, स्वास्थ्य तथा सामान्य रुचि पर निर्भर करती है। किन्तु सामान्य रूप से यदि भक्तगण शारीरिक रूप से चुस्त हैं तो उन्हें अधिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये। कीर्तन के समय नाचने तथा जप करते समय चलने से शरीर का व्यायाम स्वतः हो जाता है, हमें इसके बारे में सोचना तक नहीं पड़ता। अतः भक्तों को मध्यम व्यायाम करने की सलाह दी जाती है अन्यथा शारीरिक चेतना बढ़ेगी। व्यायाम करते समय प्रभुपाद के भजन या व्याख्यान का कैसेट सुना जाए तो इससे हम शारीरिक स्तर की बजाय कृष्णभावनाभावित स्तर पर बने रह सकते हैं। रात के समय अत्यधिक व्यायाम की संस्तुति नहीं की जाती क्योंकि इससे शरीर की उष्मा तथा सक्रियता ऐसे समय में बढ़ेगी जब इन्हें कम होना चाहिए।

**शारीरिक गठन**

श्रील प्रभुपाद ने एक बार कहा कि ऋषिकुमार नामक भक्त का शारीरिक गठन ब्रह्मचारी के लिए आदर्श था। वह मझोले आधार का था उसके शरीर पर थोड़ी सी मुलायम चर्बी थी, बहुत मोटा भी नहीं, एकदम पतला भी नहीं, पुष्ट मांसल वाला भी नहीं।[११९] निःसन्देह हम अपने शरीर की मूलभूत संरचना को नहीं बदल सकते किन्तु भक्त के लिए मोटा होना बुरा है।[१२०] और योगियों की तरह दुबला तथा भूखे मरना भी हमारी विधि नहीं है। श्रील प्रभुपाद चिन्तित हो उठते थे यदि वे अपने किसी शिष्य को बहुत दुबला पतला देखते और वे बल देते थे कि भक्त पर्याप्त भोजन करें।[१२१] ब्रह्मचारियों को निश्चित रूप से 'मांस पेशियाँ' उमाड़ने का प्रयास नहीं करना चाहिए। जो भी 'मिस्टर यूनिवर्स' का अनुकरण करना चाहता है, वह स्पष्टतः देहात्मबुद्धि से बहुत हद तक भ्रमित है और भगवद्गीता के प्रथम उपदेश "तुम यह शरीर नहीं हो"



को समझना प्रारम्भ करने से भी कोसों दूर है। इसी तरह शरीर को आकर्षक बनाने के लिए 'धूप स्नान' या अन्य कोई क्रिया करना मात्र माया है।

**स्वच्छता**

स्वच्छता वैदिक संस्कृति का विस्तृत अंग है। आन्तरिक शुचिता उत्पन्न करने के लिए बाह्य शुचिता आवश्यक है। यदि हम अपने शरीर तथा परिवेश को ही स्वच्छ नहीं रख सकते तो फिर हम उस धूल को हटाने की आशा कैसे कर सकते हैं जो हमारे हृदयों में अनन्तकाल से जमी हुई है? "स्वच्छता का देवत्व से अति निकट का सम्बन्ध है।" श्रील प्रभुपाद : "यदि आप स्वच्छ नहीं हैं तो श्रीकृष्ण आप से कोसों दूर रहेंगे।" प्रभुपाद "क्रान्तिकारी स्वच्छता" चाहते थे।[१२२] स्वच्छता सात्विक तथा स्वास्थ्यप्रद है। अस्वच्छता तामसिक तथा असहनीय है। वैदिक संस्कृति के अनुसार ब्रह्मचारियों को स्वच्छ रहना चाहिए। वस्तुतः श्रीमद्भागवत में कलियुग में पतन के जिन लक्षणों की भविष्यवाणी की गई है उनमें एक है "ब्रह्मचारीगण अस्वच्छ रहेंगे।"[१२३] हमें ऐसा ब्रह्मचारी नहीं होना चाहिए।

बाह्य स्वच्छता के लिए प्रतिदिन तीन बार (प्रातः, दोपहर तथा सायं) स्नान करना चाहिए या कम से कम दो बार या बहुत ही कम हो तो जगने पर एक बार। हर बार साबुन का उपयोग आवश्यक नहीं क्योंकि केवल जल ही शुद्ध करने वाला है। मलत्याग के बाद स्नान करना अनिवार्य है।

स्नान करते समय शीघ्रता से शिश्न के ऊपर की त्वचा हटा कर सफाई करें जिससे वहाँ मल एकत्र न हो पाये।

तौलिया या गमछा एक बार प्रयोग करने के बाद दूषित हो जाता है इसलिए इसे धो डालना चाहिए। गन्दे तौलिये से देह पोंछना हाथी स्नान जैसा है—अर्थात पुनः शरीर दूषित हो जाता है। तौलिये की अपेक्षा गमछा जल्दी सूखता है इसलिए भक्तों के लिए व्यवहार्य है। प्रत्येक स्नान के बाद गमछे को साबुन से धोना आवश्यक नहीं है - स्वच्छ जल से भिगोकर निचोड़ना पर्याप्त है। किन्तु उसे साबुन से नियमित धोते रहना चाहिए और निश्चित ही ऐसा तो होने ही नहीं देना चाहिये कि उसमें से दुर्गंध आने लगे।

लघुशंका (पेशाब) के बाद शिश्न को लोटे द्वारा जल से धो लेना चाहिए (जैसा कि प्रभुपाद करते थे) जिससे मूत्र लगा न रहे। फिर हाथ धोना चाहिए। (प्रभुपाद कहते थे कि साबुन से धोयें।) और पाँवों को भी जल से धोयें। किसी भी अशुद्ध वस्तु (यथा मुँह, नथुने, पाँव, या गंदी वस्तु) को छूने के बाद हाथ धोयें।

दांत, कान तथा नाखून स्वच्छ रखने चाहिएं, जिह्वा को प्रतिदिन साफ करना चाहिए, नाखून काटने चाहिएं तथा सिर और दाढ़ी को नियमित रूप से मूंडना चाहिए। बाल शरीर के अपशिष्ट पदार्थ से उत्पन्न होते हैं इसलिए ये मल तुल्य हैं। नियमित रूप से बाल बनाने से, न केवल हम स्वच्छ दिखते हैं वरन् स्वच्छ एवं स्पष्ट चिंतन शक्तिवाला अनुभव करते हैं। कपड़े, माला की थैली (प्रभुपाद दो थैलियाँ रखने को कहते थे), जनेऊ, जूते, ब्रह्मचारी आश्रम, वाहन - इन सब को स्वच्छ रखना चाहिए। कोई व्यक्ति कितना स्वच्छ एवं व्यवस्थित रहता है इसे देख कर उसके बारे में काफी जाना जा सकता है। श्रील प्रभुपाद सदैव स्वच्छ रहते थे - निष्कलंक अलौकिक कुलीन।

निस्सन्देह आन्तरिक स्वच्छता के बिना बाह्य स्वच्छता व्यर्थ है। आन्तरिक स्वच्छता के लिए हरे कृष्ण जपें और यौन के विषय में न सोचें।

## वीर्य धारण

प्रगतिशील मानव जीवन के लिए वीर्य धारण करना इतना आवश्यक है कि यह विचित्र लगता है कि आधुनिक सभ्यता का सारा प्रयास अधिकाधिक वीर्यस्खलन पर आधारित है। शरीर में धारण किया गया वीर्य मस्तिष्क को पोषित करने के लिए ऊपर जाता है, शरीर को बलिष्ठ तथा स्मृति एवं बुद्धि को कुशाग्र बनाता है। दृढ़ संकल्प, आशावादिता, विश्वास, इच्छाशक्ति, स्थिर बुद्धि, उत्तम चरित्र, तीक्ष्ण स्मृति तथा अच्छा स्वास्थ्य - ये सब संरक्षित वीर्य के फल हैं। कहा जाता है कि चारों कुमार भौतिकवादी कर्म करने को तैयार नहीं थे क्योंकि वे अपने वीर्य ऊपर की ओर चढ़ने (ऊर्ध्वरेतस) के कारण अत्यधिक उत्थापित (उदात्त) थे।[१२४]

वैज्ञानिकों ने परीक्षण करके देखा है कि वीर्य में हार्मोन, प्रोटीन, विटामिन, खनिज, आयन, एंजाइम, सूक्ष्म मात्रिक तत्व तथा अन्य जीवनदायी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप, यह तत्त्व (वीर्य) अंड के साथ मिलने पर, नये शरीर के जनन के लिये पर्याप्त होता है। प्रकृति की व्यवस्था से ही यदि यह सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाता अपितु भीतर रखा जाता है तो यह शरीर तथा मस्तिष्क का पोषण इस तरह करता है जैसा किसी भी टानिक या भोजन द्वारा सम्भव नहीं। विटामिन तथा खनिज पूरकों के लिए जो हवस आज चल रही है वह अपने द्वारा उत्पन्न न्यूनताओं को पूरा करने का प्रयास है। अधिकांश लोग नहीं जानते कि वे उस आवश्यक शारीरिक तरल के साथ अपनी जीवन शक्ति निकाल दे रहे हैं। यदि वीर्य का क्षय होता है तो शरीर तथा इन्द्रियों के समस्त कार्य निर्बल हो जाते



हैं। बारम्बार वीर्य स्खलन से दृढ़ संकल्प तथा आध्यात्मिक समझ के लिए आवश्यक स्वच्छ, सात्विक बुद्धि नष्ट होती है। किन्तु, यदि वीर्य को शरीर में धारण किया जाये तो उससे एक जीवनदायी तरल, जिसे आयुर्वेद में ओजस कहा गया है, उत्पन्न होता है जो बल, कान्ति, वर्धित मानसिक शक्ति तथा रोगों के प्रति प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करता है और बुढ़ापे को मन्द करता है।

वैज्ञानिक इसे न तो सिद्ध कर सकते हैं, न ही नकार सकते हैं किन्तु यह योगियों के तेज में तथा नियमित रूप से अपने मस्तिष्क का स्खलन करने वालों के मुरझायेपन में दिखता है। तो वीर्य का धारण अंततः मनुष्य को आध्यात्मिक चेतना के उच्चतर स्तरों तक पहुँचने के लिए होता है। शरीर में वीर्य धारण करने से ही मनुष्य महानता की ओर प्रवृत्त होता है।

इसके विपरीत जो लोग वीर्य स्खलन के आदी हैं वे तुच्छ तथा पशुवत कामुक बन जाते हैं। असंयम का विनाशकारी फल उनकी प्रतीक्षा करता है। वे निम्न जीव योनि में डाल दिये जाते हैं। इस जीवन में भी वीर्य की अत्यधिक क्षति से शारीरिक तथा मानसिक क्षीणता उत्पन्न होती है। ज्यों-ज्यों शरीर बूढ़ा होता जाता है, जीवनशक्ति तथा कार्य सम्पन्न करने की इच्छा मन्द पड़ती जाती है और शाश्वत थकावट आ जाती है। अपने को कृत्रिम रूप से तेजवान तथा सक्रिय बनाये रखने के लिए ली जानेवाली गोलियाँ तथा मादकद्रव्य उनके शारीरिक तथा मानसिक ह्रास में चार चांद लगाते हैं। जैसे-जैसे समय से पहले ही वृद्धावस्था आती जाती है उनके क्षीण हुए शरीर उन दर्जनों रोगों का प्रतिरोध नहीं कर पाते जो शरीर की प्रत्येक कोशिका को विनष्ट करने लगते हैं। ऐसे लोगों के लिये सर्वसामान्य वृद्धावस्था से सम्बन्धित स्मरणशक्ति का ह्रास, राहत प्रतीत होता है। श्रील प्रभुपाद: "जो व्यक्ति युवावस्था में जितना ही आनन्द उठाता है, वृद्धावस्था में वह उतना ही कष्ट भोगता है।"[१२५]

श्रील प्रभुपाद: "वीर्य को नष्ट करना भी अवैध यौन है।"[१२६] "वीर्य का स्खलन करने की प्रवृत्ति मृत्यु का कारण है। इसलिए दीर्घ जीवन की कामना रखने वाले योगी तथा आध्यात्मवादी वीर्य स्खलन करने से अपने आपको रोकते हैं। जो व्यक्ति जितना ही अधिक वीर्य स्खलन रोक सकता है वह उतना ही दीर्घकाल तक मृत्यु से दूर रह सकता है। ऐसे अनेक योगी हैं जो इस विधि से ३०० से ७०० वर्षों तक जीवित रहते हैं और भागवतम् में स्पष्ट कहा गया है कि वीर्य स्खलन भयावह मृत्यु का कारण है। जो यौन भोग में जितना ही अधिक लिप्त रहता है वह शीघ्र मृत्यु के प्रति उतना ही संवेदनशील होता है।"[१२७]

इसलिए ब्रह्मचारियों को वीर्य को व्यय न करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हें, अपनी जीवन शक्ति के मूल्य पर खरीदी जाने वाली तृप्ति की क्षणिक अनुभूति को रोकना चाहिये।

दुर्भाग्यवश कृष्णभावनामृत में आने वाले लगभग सारे भक्तों को कभी ऐसा प्रशिक्षण नहीं मिला प्रत्युत इसके विपरीत प्रशिक्षण मिला है। और जो लोग नियमित रूप से वीर्य का स्खलन करते थे उनके लिये स्खलन को रोक पाना मुश्किल होगा। किन्तु हमें प्रयत्न करना होगा। श्रील प्रभुपाद: "प्रत्येक व्यक्ति को व्यर्थ में वीर्य स्खलित करने से सावधान रहने की शिक्षा दी जानी चाहिए। यह सारे मनुष्यों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।"[२९] यहाँ पर कुछ संकेत दिए जा रहे हैं जो सहायक बनेंगे।

सबसे प्रथम बात : स्त्रियों के बारे में मत सोचो। वासनापूर्ण विचार यौन इन्द्रियों में उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। यदि हम कामवासना के बारे में सोचेंगे तो आश्चर्य नहीं कि रात्रि में स्वप्नदोष हो जाए।

किन्तु ब्रह्मचर्य के लिये गम्भीरता से प्रयासरत् भक्त भी यौन स्वप्नों से पीड़ित हो सकता है। जागृत अवस्था में वह अपनी सुदृढ़ बुद्धि का उपयोग कर मन को वश में रख सकता है, परन्तु स्वप्नावस्था में उनकी अर्धचेतना की गहराई में घुसी निम्न इच्छायें, प्रकट हो सकती हैं। इसके लिये वास्तविक उपाय है, भक्तिमय सेवा द्वारा चेतना का सम्पूर्ण शुद्धिकरण। परन्तु क्योंकि इसमें कुछ समय लग सकता है, ऐसे शारीरिक कारक जो वीर्य धारण को प्रभावित करते हैं, ध्यान में रखे जा सकते हैं।

शरीर की आन्तरिक उष्मा को अत्यधिक रूप से न बढ़ाना महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद आंतरिक ऊष्मा को, रजोगुण से सम्बंधित अत्यधिक पित्त की दशा के रूप में बताता है, जो राजसिक भाव या राजसिक भोजन, यथा अधिक मिर्च वाले, से शरीर में उत्पन्न ऊष्मा के रूप में अनुभव होती है। आयुर्वेद पेट में ठूस-ठूस कर खाना भरने से जननेन्द्रियों पर उत्पन्न दबाव के प्रति भी सावधान करता है।

इसलिए भोजन तथा भोजन की आदतें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। आध्यात्मवादियों को सादा और संतुलित मात्रा में भोजन करना चाहिए। (स्वास्थ्य के अन्तर्गत "भोजन करना" अनुभाग देखें)। अधिक खाने से शरीर में उपयोग के लिए आवश्यकता से अधिक ऊर्जा आ जाती है जो अक्सर वीर्य स्खलन के रूप में बाहर आती है। अधिक भरा पेट जननांगों पर दबाव डालता है जिससे वीर्य स्खलन होने की सम्भावना उत्पन्न होती है।



भरपेट खाकर सोने से बचें - योगी रात्रि में न खाने का अभ्यास करता है। सोने से कम से कम २-३ घंटे पूर्व अन्तिम भोजन कर लेना चाहिए। भोजन को हल्का तथा सुपाच्य होना चाहिए। यहां तक कि गर्म दूध भी सोने के तुरन्त पूर्व नहीं पीना चाहिए, बल्कि लगभग आधा घंटा पूर्व पीना चाहिए। गरिष्ठ, भारी तला, मसालेदार तथा मीठा भोजन शरीर को उष्ण बनाते हैं इसलिए इनसे सावधान रहें, विशेषकर रात्रि के समय। रात में खट्टा (खट्टे फल तथा दही) तथा तीखा भोजन करने से बचना चाहिए, इसी तरह से मिठाइयों, पनीर तथा गाढ़े दूध की बनी वस्तुओं को नहीं लेना चाहिए। ऐसा दूध जो तनिक भी खट्टा हो गया हो उसे रात में ग्रहण नहीं करना चाहिए।

कुछ शाकों में ऐसा पदार्थ रहता है जो वीर्य को पतला बनाता है जिससे इसके स्खलित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इनमें सबसे निकृष्ट बैंगन होता है। इसकी ऊपरी त्वचा विशेषरूप से बुरी होती है। इसके बाद हरी मिर्च आती है। परम्परागत श्री वैष्णवजन मिर्च, इमली तथा लाकुड़ का बहिष्कार करते हैं क्योंकि इनमें कामवासना उत्तेजित करने का गुण होता है। गाजर, लाकुड़ तथा कुछ हद तक चुकन्दर वीर्य को उष्ण बनाते हैं जिससे उसके स्खलित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। किन्तु यह प्रभाव अत्यधिक सुस्पष्ट नहीं होता इसलिए ब्रह्मचारीगण मध्यम मात्रा में इन शाकों को ले सकते हैं।

सबसे अच्छा तो यह है कि रात में छ: घंटे से अधिक न सोया जाए और दिन में कम से कम या बिल्कुल न सोया जाए। यदि कोई व्यक्ति प्रात:काल नहीं उठ सकता तो उसका तथाकथित ब्रह्मचर्य व्रत निरर्थक है। रात में देर से सोना स्वास्थ्य तथा वीर्यधारण के लिए भी बुरा है। अत: जल्दी सोना और जल्दी जागना ही श्रेष्ठ है। ब्रह्ममुहूर्त, अरुणोदय या गोधूलि बेला में सोना और जब थके न हो तो सोते रहना भी घातक है - इसमें वीर्यक्षति की सम्भावना अधिक है। भक्तों के लिये निद्रा को कम करने का एक अन्य कारण-जब कोई व्यक्ति वास्तव में थका होता है तो उसे गहरी नींद आती है और स्वप्नों से उत्पन्न उपद्रव भी कम होता है।

आयुर्वेदाचार्य ब्रह्मचारियों के लिए करवट लेकर सोने को सर्वोत्तम मानते हैं। पीठ के बल सोना इतना अच्छा नहीं है और पेट के बल सोना तो स्वास्थ्य के लिये बिल्कुल बुरा एवं वीर्य स्खलन के लिए घातक है। पीठ सीधी करके (मुड़ी हुई नहीं) तथा हाथों को जननांगों से दूर रखकर सोना चाहिए। यदि आपकी नींद गहरी न होकर हल्की रहती है, तो ऐसे स्थान में सोयें जहां किसी तरह का शोर-गुल न हो। सोने के पूर्व लघुशंका करके, हाथ और पैर शीतल जल से धोकर सुखा लें।

कब्ज स्वप्नदोष का मुख्य कारण होता है। यदि नित्य आमाशय साफ नहीं होता तो बड़ी आंत में मल तथा उससे सम्बन्धित विषैले पदार्थ एकत्र होते हैं। इससे उस क्षेत्र में पित्त बढ़ जाता है और वीर्य की थैली पर दबाव पड़ता है जिससे वीर्य के निकलने में आसानी होती है। किन्तु बल लगाकर मल त्याग से बचना चाहिए क्योंकि इससे भी वीर्य की थैली पर दबाव पड़ता है।

कुछ अन्य बातें: गर्मजल की अपेक्षा शीतल जल (बहुत ठंडा नहीं) से स्नान करना उत्तम है। या मैल दूर करने के लिए पहले गर्म जल से स्नान करें और अंत मे ठंडे जल से। शरीर को शीतल करने के लिय बाल्टी से नहाना फुहार स्नान से अधिक प्रभावशाली होता है। गुप्तांगो पर पर्याप्त शीतल जल डालना एक दैनिक क्रिया के रूप में किया जा सकता है। लघुशंका के बाद लिंग को धोने से यूरिक अम्ल हट जाता है अन्यथा उससे यौन ग्रंथि उत्तेजित हो सकती है। एकादशी के दिन यथा सम्भव पूर्ण उपवास लाभप्रद होता है। ऐसी अनेक आयुर्वेदिक औषधियाँ तथा योगासन हैं जो ब्रह्मचर्य को बढ़ाने वाले हैं। यद्यपि श्रील प्रभुपाद ने इनके प्रयोग के लिए कभी नहीं कहा किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनका प्रयोग नहीं कर सकते हालांकि उनसे आश्चर्यजनक लाभ न भी हो। त्रिफला (सामान्यतया त्रिफला चूर्ण के रूप में लिया जाता है) एक बहुपरिचित सस्ती आयुर्वेदिक औषधि है जो अनेक अवस्थाओं में लाभकारी है और ब्रह्मचर्य के लिए अच्छी है। नियमित रूप से मुलैठी (संस्कृत भाषा में : यष्टि-मधु) का सेवन वीर्य स्खलन को रोकने में सहायक हो सकता है। किन्तु इसे, व्यावसायिक रूप से बनाई मीठी गोलियों के स्थान पर मूल रूप में लेना श्रेयस्कर है। आयुर्वेदिक उपचार लाभप्रद हो सकता है यदि अच्छा वैद्य मिल सके और उसके निर्देशों का काफी समय तक कड़ाई से पालन किया जाए, किन्तु अधिकांश भक्तों को इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

एक बार श्रील प्रभुपाद ने एक भक्त को जब पाँव पर पाँव चढ़ाये बैठे हुए पाँव हिलाते देखा तो उसे रोका। इस तरह पाँव हिलाना मानसिक चंचलता का परिचायक है और इससे प्रजननांग उत्तेजित होते हैं।

एक बार मेलबार्न में भागवतम् की कक्षा में श्रील प्रभुपाद ने कहा, "यदि कोई पच्चीस वर्ष की आयु तक वीर्य को धारण कर सके तो मस्तिष्क आत्म-साक्षात्कार के लिए अत्यधिक उर्वर हो जाता है।" तत्पश्चात् चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए और सभी के मुखों को नीचा देखकर वे बोले, "वैसे भी, यदि तुम लोग केवल हरे कृष्ण का जप करो तो सब ठीक हो जायेगा।"[१२९]



यह कलियुग है, हम सभी पतित हैं। अनेक भक्तों ने भक्त बनने के पूर्व इतनी बार वीर्य स्खलन किया है कि वे चाह कर भी वीर्य स्खलन को रोक नहीं पाते। यहाँ तक की गम्भीर भक्तगण जो वीर्य स्खलन के विरुद्ध हैं, वे भी अनिच्छुक रूप से शरीर तथा मन पर बाह्य प्रभावों यथा भक्ति के पूर्वकालीन जीवन का शेष प्रदूषण, शरीर को कमजोर बनाने वाले शारीरिक रोग, शारीरिक ऊष्मा, पापी लोगों का खाना खाने से उत्पन्न सूक्ष्म प्रदूषण के फलस्वरुप वीर्य स्खलित कर बैठते हैं।

यदि वीर्य के व्यय का कारण जानबूझकर किये गये प्रयास या यौन का चिंतन नहीं है, तो अत्यधिक पश्चाताप की कोई आवश्यकता नहीं है। वीर्य का अनिच्छुक स्खलन, दाँत गिर जाने के समान ही, आकस्मिक (एवं अवांछनीय) हो सकता है। इस बात पर ध्यान करते हुए कि शरीर सदैव वीर्य उत्पन्न कर रहा है, वीर्य का प्रासङ्गिक स्खलन, इसका प्राकृतिक रूप से उमड़ कर बह जाना भी समझा जा सकता है। ऐसे आकस्मिक स्खलन के लिये शास्त्र में शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि के लिये विधियाँ बताई गई हैं, किन्तु इस्कॉन ब्रह्मचारियों के लिये स्नान करना एवं हरे कृष्ण जपना ही पर्याप्त है। ऐसी स्थितियों में, ब्रह्मचारियों को नियम उलंघन या उनका सही प्रकार से पालन न करने का दोषी ठहराने की आवश्यकता नहीं है।

फिर भी, यह जितना कम हो उतना अच्छा है। ब्रह्मचारियों को, सीधी भक्तिमय सेवाओं में संलग्न होने के साथ-साथ, वीर्य के व्यय को जैसे भी आसानी से सम्भव हो, रोकने का प्रयास करना चाहिये। उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि वे क्या, कब, कितना और कहाँ खाते हैं, उनकी सोने की आदतें कैसी हैं, वे किससे बात करते हैं और किन से सुनते हैं, बैठते एवं सोते समय उनकी मुद्रा कैसी है, और उनका समुचित शारीरिक स्वास्थ्य कैसा है। वे व्यायाम या योगासन भी कर सकते हैं, यदि यह वास्तव में उनके ब्रह्मचारी जीवन में सहायक हो।

सभी प्रयासों कें बावजूद भी, यदि कोई ब्रह्मचारी वीर्य क्षय करता है, तो वह घृणा का अनुभव कर सकता है, किन्तु उसे जानना चाहिये कि भक्तिमय सेवा के लिये यह कोई अयोग्यता नहीं है। ब्रह्मचारी की वास्तविक योग्यता यह है कि वह अपना जीवन श्रीकृष्ण को समर्पित करना चाहता है और इस तरह यौन जीवन से सदा सदा के लिए मुक्त होना चाहता है। ऐसा संकल्प किसी भी भौतिक परिस्थितियों को पार कर जाता है क्योंकि जो लोग निष्ठावान हैं उनकी सहायता श्रीकृष्ण करते हैं। स्वप्नदोष से पीड़ित ब्रह्मचारीगण यह जानकर आश्वस्त हो सकते हैं कि इस समस्या में वे किसी भी प्रकार से अकेले नहीं हैं। चलिये हम सभी हरे कृष्ण का जप करें और पतितों

के रक्षक श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा के लिए प्रार्थना करें।

अवांछित वीर्य स्खलन के बारे में श्रील प्रभुपाद का निम्न उद्धरण लागू होता है, "(भक्त) आकस्मिक घटनाओं के प्रति निश्चेष्ट रहता है किन्तु कृष्णभावनामृत या भक्ति योग में अपना कर्तव्य करने के लिए वह सदा सचेष्ट रहता है। दुर्घटनाएं कभी उसे उसके कर्तव्य से विचलित नहीं करतीं। जैसा कि भगवद्गीता में (२.१४) कहा गया है—आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत। वह ऐसी आकस्मिक घटनाओं को सहता है क्योंकि वह जानता है कि ये आती जाती रहती हैं और उसके कर्तव्य को प्रभावित नहीं करतीं। इस तरह वह योगाभ्यास में सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करता है।"[१३०]

## ब्रह्मचारी की वेशभूषा तथा बाह्याकृति

"शुद्ध कुश घास हाथ में लिये, ब्रह्मचारी को चाहिए कि नियमित रूप से मूंज की पेटी बाँधे और मृगचर्म के वस्त्र पहने। वह जटाएं रखे, दंड तथा कमंडलु ले और जनेऊ से सुशोभित हो। शास्त्रों की यही संस्तुति है।"[१३१]

यह नारद मुनि द्वारा दिया गया ब्रह्मचारी के वेश का विवरण है। नारद मुनि की परम्परा के आधुनिक युग के आचार्य श्रील प्रभुपाद अपने ब्रह्मचारियों को केसरिया वस्त्र पहनवाते थे और उनके सिर मुँडवाते थे।

इस्कॉन के ब्रह्मचारियों को चाहिए कि वे सिर मुँडवायें, चोटी रखें तथा शरीर के बारह स्थानों पर तिलक लगाएं; केसरिया वस्त्र धारण करें; कौपीन पहनें; सरल तथा स्वच्छ रहें; और प्रसन्न दिखें।

मुँडा सिर, शिखा, तिलक तथा केसरिया वस्त्र - ये भक्त ब्रह्मचारी के विशिष्ट चिन्ह हैं। हम इसके लिए प्रसिद्ध हैं। इसकी परवाह न करें कि लोग क्या कहते हैं (और अक्सर यह इतना बुरा नहीं जितना भक्तगण कल्पना करते हैं)। यदि वे भक्त को वैष्णव वेश में देखते हैं तो सोचते हैं, "ये हरे कृष्ण वाले हैं" और इस तरह वे थोड़ी आध्यात्मिक प्रगति करते हैं।

यदि हम अपने को सर्वदा भक्तों की तरह प्रदर्शित करने का साहस करें तो अन्ततोगत्वा लोग हमें हमारे अनुसार स्वीकार करेंगे। कभी-कभी भक्त को कर्मी वस्त्र पहनना आवश्यक हो सकता है। किन्तु यदि हम वेश बदलने की आदत बना लें तो लोग सोचेंगे कि हम कुछ छिपा रहे हैं। इसलिए जहां तक सम्भव हो, भक्तों को चाहिए कि अपने को स्पष्टत: भक्तों के रूप में ही प्रस्तुत करें।



वैष्णव की तरह वेशभूषा धारण करना हमारे लिए भी अच्छा है। इससे हम अपने को भक्त जैसा अनुभव करते हैं - हम भौतिकतावादी लोगों से भिन्न हैं और हम ऐसा चाहते भी हैं। जब हम भौतिक जगत में निकलें तो यह याद रखना होगा कि हम प्रभुपाद तथा इस्कॉन का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और तदनुसार आचरण करें। वैष्णवों का वेश धारण करने के परिणामस्वरूप, हम प्राय: प्रश्नों को उकसाते हैं, जिसके फलस्वरूप हम ऐसे लोगों को प्रचार कर पाते हैं, जो शायद अन्यथा कभी किसी भक्त से बात न करते।

भक्तों की भांति वेश धारण करना इन्द्रियतृप्ति में लिप्त होने के विरुद्ध कवच का काम भी करता है। कर्मी वेश घातक है - ऐसे कार्यों को करने का सूक्ष्म रूप से अधिकार जिन्हें हम धोती एवं कुर्ते में नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, ब्रह्मचारी सामान्यतया युवक, स्वस्थ तथा तेजवान होते हैं अतएव स्त्रियों के लिए आकर्षक होते हैं। किन्तु यदि वे सिर मुँडाये हों, तिलक लगाये तथा केसरिया वस्त्र में हों तो यह आकर्षण बहुत कम होगा। भक्त का वस्त्र तथा तिलक धारण करना, मुँडे सिर में चोटी धारण करने का परम कारण है मात्र यह कि श्रील प्रभुपाद हम सभी से यही चाहते थे।

वे भक्त जिन्हें भक्ति करते समय कर्मी वस्त्र पहनने के लिए बाध्य होना पड़ता है उन्हें इसकी आदत नहीं डालनी चाहिए। सबसे अच्छी बात तो यह है कि आश्रम लौट कर तुरंत नहाकर तिलक लगाएं और भक्तों के वस्त्र धारण कर लें। मन्दिर के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के लिए कर्मियों के वस्त्र पहनने का प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्री तथा पुरुष भक्तों के नियमित तथा अनावश्यक रूप से कर्मी वस्त्र पहनकर एक दूसरे के आसपास रहने से एक अपवित्र वातावरण का निर्माण होता है, अत: इससे बचना चाहिये।

बाल (केश) रखने का अर्थ है आसक्ति अत: यदि कुछ केश रखना वास्तव में आवश्यक न हो, तो ब्रह्मचारियों को चाहिये कि सप्ताह में एक बार, पक्ष (पन्द्रह दिन) में एक बार या कम से कम महीने में एक बार अवश्य बाल मुंडवा दें।* लम्बे बालों के साथ केसरिया वस्त्र अटपटा लगता है - वैराग्य के रंग के साथ आसक्ति के लक्षण।

दाढ़ी मूंछ भी सफाचट रखें। न तो मूँछे रहें, न खूँटियाँ दिखें। बगलें भी साफ

* आयुर्वेद के अनुसार बढ़ते बच्चों के लिए जल्दी जल्दी सिर मुंडन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। उनके लिये पक्ष (पन्द्रह दिन) में एक बार मुंडन करना अच्छा है।

रखें, विशेषतया गर्म जलवायु वाले भागों में जहाँ कमीजें नहीं पहनी जातीं और उन भक्तों द्वारा जो वेदी पर जाते हैं।

शिखा को छोटी होना चाहिए (श्रील प्रभुपाद: गौड़िय वैष्णव शिखा १½ इंच चौड़ी होती है—इससे अधिक नहीं। इससे बड़ी शिखा का अर्थ है अन्य सम्प्रदाय" [३२])और उसमें गांठ होनी चाहिए। न तो इसे गूंथा जाये और न ही जटाजूट होने दिया जाए।

अपने पास आवश्यकता के अनुसार वस्त्र रखें—मान लें कि तीन जोड़ी भक्तों के वस्त्र और आवश्यक्ता पड़े तो कुछ कर्मी वस्त्र। अल्मारी भर के कपड़े न रखें — यह तो अत्याहार है अर्थात आवश्यक्ता से ज्यादा संग्रह, जो भक्ति में बाधक है।[३३]

गृहस्थ श्वेत वस्त्र पहनते हैं और ब्रह्मचारी तथा संन्यासी केसरिया। अत: दोनों को मिलाएं नहीं। किसी एक को पहनें और स्पष्ट करें कि आप किस आश्रम में हैं। परम्परागत रूप से केसरिया संन्यास का रंग है। इसे लोक व्यवहार की तरह नहीं अपितु उन उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा पहना जाना चाहिये जो इसमें युक्त गम्भीरता को बनाये रख सकें।

अपने वस्त्रों को गाढ़ा लाल न रंगे। गहरे लाल वस्त्र मायावादी तथा शिव और काली के पूजक पहनते हैं। केसरिया वस्त्र धारण किये भक्त अधिक अच्छे दिखते हैं यदि उनके सभी वस्त्र एक समान रंग वाले हों - ऐसा नहीं कि उनकी धोती पीली हो और कुर्ता चटक नारंगी।

कुछ ब्रह्मचारी यह मानकर कि केसरिया वेश तथा इससे जुड़ा उत्तरदायित्व उनकी वर्तमान चेतनावस्था में उनके लिए अनुपयुक्त है, श्वेत वस्त्र पहनना पसन्द करते हैं। उन्होंने विवाह करने का मन बना लिया हो, या सोच रहे हों किन्तु विवाह करने की कोई तत्काल योजना उनकी नहीं है। या वे अपनी चेतना को अति दूषित मानते हों या भक्ति के प्रति उनका रवैया इतना दृढ़ न हो कि वे केसरिया वस्त्र पहनने के लिए अपने को पात्र समझते हों। कुल मिलाकर अच्छा होगा कि जो न तो विवाहित हैं न ही वैराग्य का अभ्यास दृढ़ता से कर रहे हैं, वे श्वेत वस्त्र धारण करें और अपने को वैरागी के रूप में गलत रूप से प्रस्तुत न करें। निश्चित ही अपनी सेवा के बदले जो पैसा स्वीकार कर रहे हों, उन्हें केसरिया वस्त्र धारण करने का दु:साहस नहीं करना चाहिये।

मोजे, चादर, जैकेट, स्कार्फ या हैट खरीदते समय यदि गुलाबी या नारंगी रङ्ग न मिलें तो मटियाला, भूरा, घूसर या भूरा लाल रंग चुने जा सकते हैं। ब्रह्मचारियों के लिए लाल, श्वेत, पीला या काला, गौण वस्त्रों के लिये अन्य सम्भव रङ्ग हैं किन्तु हरे, नीले या बहुरंगी वस्त्रों से बचना चाहिए।



ब्रह्मचारीगण पूरी लम्बाई की धोती, कच्छ (वह भाग जो पीछे कमर में दबाया जाता है) के साथ पहनते हैं। केवल संन्यासी ही बिना कच्छ के रहते हैं। इसी प्रकार गाँठ लगाया हुआ केसरिया ऊपरी वस्त्र भी, चाहे आगे से पहना जाये या बाजू में से, केवल संन्यासियों के लिये है। किन्तु गृहस्थों के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है, विशेषकर के पुजारियों के लिए, जो कभी-कभी श्वेत रङ्ग का गाँठ वाला ऊपरी वस्त्र पहनते हैं।

कौपीन कतिपय उन नसों को नियमित करके इन्द्रिय संयम में सहायक होता है जो अन्यथा उत्तेजना उत्पन्न करने वाली होती हैं। कौपीन को कसकर बाँधना चाहिए किन्तु इतनी कड़ाई से नहीं कि आघात पहुँचे। तीन बार स्नान करने वाले ब्राह्मणों के लिये कौपीन व्यवहारिक है क्योंकि ये शीघ्र ही सूख जाते हैं और सस्ते भी होते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे अनेक भक्त कर्मियों द्वारा उपयोग किये जाने वाले अधोवस्त्र पहनना पसन्द करते हैं। कौपीन पीछे कमर में अंदर की ओर दबा होना चाहिये, न कि बन्दर की पूछ की तरह बाहर लटका हो। कौपीन कपड़े के दो टुकडों का बना हुआ होना चाहिये। चौड़ाई दो चूचुकों के बीच की दूरी के बराबर, और लम्बाई कमर की गोलाई से दो मुट्ठी अधिक होनी चाहिये। शास्त्र के अनुसार जो भाग कमर पर कसा जाता है उसकी गाँठ दाएँ हाथ की ओर होनी चाहिये।

भक्ति विहीन विचारों को प्रकट करने वाली टी-शर्ट भक्तों के लिये व्यर्थ एवं अनावश्यक है। यदि पवित्र नाम या भक्तिमय प्रतीक अंकित टी-शर्ट या हरिनाम चादर पहनें तो सावधानी बरतें कि नमस्कार करते समय वे जमीन को न छू जाए। अच्छा हो कि उन्हें (या माला की झोली को) मोजों, कौपीन अथवा अन्य दूषित वस्तुओं के साथ या ऐसे स्नानघर में जिसमें पखाना भी साथ में हो, न धोएँ।

ब्रह्मचारी सादा एवं स्वच्छ वेशभूषा धारण करता है और स्वयं तथा अपने वस्त्रों को साफ सुथरा रखता है। प्रचार की कतिपय परिस्थितियों मे "फैन्सी ड्रेस" न्याय संगत हो सकती है किन्तु ब्रह्मचारियों के लिए सामान्यतया सूती धोती तथा कुर्ता सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं। किन्तु हमें दीन-हीन भिखारियों जैसा नहीं दिखना चाहिए। बुरी तरह फटे तथा मैले कुचैले वस्त्रों का परित्याग करना चाहिए और हमें पाँव में चप्पल इत्यादि कुछ न कुछ पहनना ही चाहिये। यदि हम नंगे पाँव जाएंगे तो लोग हमें हिप्पी समझेंगे। और औपचारिक परिस्थितियों में प्रचार करने के लिये, श्रेष्ठ होगा कि वस्त्रों पर इस्त्री की हुई हो।

सूझबूझ से वस्त्र पहनें। यदि ठंड है तो गर्म कपड़े पहनें। विशेष रूप से पाँवों को गरम रखना चाहिए। ठंडे फर्श पर चलते या खड़े रहते समय मोजे अवश्य पहनें।

अंगूठियाँ, कंगन, महँगी घड़ियाँ, महँगे धूप के चश्मे, कढ़ाई वाले कुर्ते एवं रंगीन किनारीदार धोतियाँ, सामान्यतया ऐसे लोगों के चिन्ह हैं जो अपने शरीर को संवर्धित करते हों या दूसरे शब्दों में स्त्रियों को आकर्षित करने का प्रयास करते हों। गृहस्थ इनका उपयोग कर भी सकते हैं और नहीं भी, कोई कुछ नहीं कहेगा, किन्तु ये ब्रह्मचारियों के लिए उपयुक्त नहीं हैं। यही बात अत्यधिक सुगंधित आफ्टर-शेव, डीओडोरेंट एवं साबुनों के विषय में भी सही है।

कभी-कभी ऐसा माना जाता है कि लोग ऐश्वर्य प्रदर्शन से आकृष्ट होंगे। विशेषतया गरीब देशों में ऐसा होता है इसलिये प्रभुपाद ने भारत में भव्य मन्दिर बनवाये। भारत में हमारे प्रचारक, अच्छा प्रभाव डालने के लिये, अक्सर कीमती वस्त्र पहनते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐश्वर्य प्रदर्शन का उल्टा प्रभाव पड़ता है - लोग हमें साधु के वेश में भौतिकवादी मान बैठते हैं। और वस्तुत: जब तक हमें पर्याप्त अनुभूति न हो, मात्र रेशमी वस्त्र पहनने से हम प्रचारक नहीं बन सकते।

श्रील प्रभुपाद बल देते थे कि हमारी सबसे बड़ी सम्पदा हमारी शुद्धता है। इसलिए भक्तों को सदैव प्रसन्न दिखना चाहिए। (पुरानी भगवद्दर्शन पत्रिकाओं में देखिये—चकाचौंध कर देने वाले दर्जनों भक्तों के चित्र देखकर आप दंग रह जायेंगे) श्रील प्रभुपाद: "आध्यात्मिक प्रगति के कार्य में लगे ब्रह्मचारी का अत्यन्त स्वस्थ तथा कान्तिवान दिखना अनिवार्य है।"[१३४] यदि कोई भक्त सुस्त और खिन्न दिखता है तो हम समझ सकते हैं कि उसे भक्ति रस नहीं मिल रहा है और वह इन्द्रियतृप्ति के बारे में चिन्तन कर रहा है। मुखमण्डल मन का दर्पण कहा गया है।

हम धोखा नहीं दे सकते और यदि हम प्रयास करते हैं तो हास्यास्पद दिखेंगे। दिखावटी मुखाकृति से कोई ब्रह्मचारी नहीं बन सका। किन्तु यदि हममें सच्चा आनंद है, तो वह हमारा कृष्णभावनामृत का सर्वोत्तम विज्ञापन है।

## नग्नता

वैदिक संस्कृति में नग्नता बिल्कुल सराही नहीं जाती।[१३५] गुप्तांगो को सदैव ढक कर रखना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो ब्रह्मचारी को अपने गुप्तांग तक देखने से बचना चाहिए। शरीर के गुप्तागों को देखना न केवल असभ्य है अपितु इससे अवांछित इच्छाओं का उत्प्रेरण होता है। श्रील प्रभुपाद: "अपने को नग्न देखना पागलपन का आरम्भ है।"[१३६] कमरे में एकान्त होने पर भी क्षण भर के लिए नग्न नहीं होना चाहिए। इसमें स्नान करते वस्त्र बदलते तथा सोते समय के क्षण सम्मिलित हैं।



स्नान करते समय गमछा पहने रहें। केवल कौपीन पर्याप्त नहीं। स्नान करने के बाद एक सूखे गमछे को, पहने हुये गीले गमछे के चारों ओर एक हाथ से पकड़ें और दूसरे हाथ से गीले गमछे को निकाल दें (कठिन प्रतीत होता है परन्तु है सरल - भारत में प्रयोग में लाई जाने वाली, सामान्य रीति)। गीले गमछे को पानी में धोकर अच्छे से निचोड़ लें और फिर इससे शरीर को पोछें (अधिकांश पानी पुछ जायेगा, एवं शेष शरीर की गर्मी से सूख जायेगा)। श्रील प्रभुपाद इसी तरह नहाते थे। वस्तुत: भारत के लाखों लोग अभी भी इसी तरह से प्रतिदिन नहाते हैं - अधिकांश घर से बाहर कुएं पर, तालाब या नदी में। फिर भी वे अपने गुप्तांगों को प्रदर्शित नहीं होने देते, यहाँ तक कि अवयवों को भी नहीं।

कपड़े बदलने के लिये, जब तक नये कपड़े को पहन न लिया जाये, एक धोती या गमछे को कमर पर लपेट कर रखें। सोते समय कम से कम कौपीन तथा गमछा तो पहने ही रहें। गमछे को घुटने तक होना चाहिए, इससे शालीनता बनी रहती है। पश्चिम से आने वाले भक्तों को यह पहले पहल विलक्षण लगेगा। किन्तु वस्त्राच्छादित रहना तनिक भी कठिन नहीं है : केवल आवश्यकता से अवगत होना है। यह वैदिक धरोहर का अंग है जो वास्तविक रूप में शिष्ट सभ्यता के आचरण के उचित मानदण्ड को बताती है। जिस तरह शाकाहारी बन जाने पर समझ में आता है कि मासांहार कितना घृणित है या कि कृष्णभावनामृत में आकर भक्त समझ पाता है कि श्रीकृष्ण के बिना जीवन कितना निरर्थक है उसी तरह उसे जो अपने को वस्त्राच्छादित रखना सीखता है, ऐसा क्षण भर भी न करना, भद्दा प्रतीत होता है।

## ब्रह्मचारी का सामान्य आचरण तथा स्वभाव

हर प्राणी एक व्यक्ति है। संसार के सारे नियम किसी व्यक्ति की व्यक्तिगतता को दूर नहीं कर सकते। अत: भले ही ब्रह्मचारीगण कठोर नियमावली का पालन करें किन्तु ब्रह्मचारी आश्रम में सभी तरह के पात्र रहते हैं। जो लोग अद्वितीय बनना चाहते हैं उनमें विषमता असामान्य नहीं होती और ब्रह्मचारी इसके अपवाद नहीं हैं। हर व्यक्ति में विलक्षणताएँ पाई जाती हैं और जब हम एकान्तता के बिना, सतत प्रयास का जीवन जीते हों तो वे और सुस्पष्ट हो जाती हैं - हमारे बीच काफी ऐसे अनोखे भक्त हैं। इस तरह की विविधता हमारे पहले से ही रोचक कृष्णभावनामृत जीवन को ओर अधिक रोचक बना देती है। किन्तु सनक हमारा मानदण्ड नहीं है। हमारा मानदण्ड, श्रील प्रभुपाद के अनुसार यह है कि, "भक्त को पूरा भद्र पुरुष होना चाहिए।"

आदर्श ब्रह्मचारी के आचरण सम्बन्धी कुछ निर्देश दिये जा रहे हैं। यदि आप उनमें पूरे नहीं उतरते तो चिन्तित न हों - शायद ही कोई पूरा उतरता हो। हम सभी आध्यात्मिक प्रगति की सीढ़ी के विभिन्न डंडों पर भौतिक प्रकृति के गुणों से संघर्ष कर रहे हैं। किन्तु सर्वोच्चता के मानदण्ड तक पहुँचने का प्रयास करें। वृन्दावन के षड्गोस्वामियों तथा श्रील प्रभुपाद जैसे महान भक्तों के कार्यों तथा आचरणों से शिक्षा तथा प्रेरणा ग्रहण करें। यदि आप किसी भक्त में, चाहे वह संन्यासी हो, या नया भक्त कोई सद्गुण देखें तो उससे सीखें। बारम्बार प्रयत्न करें।

ब्रह्मचारी के जीवन में गुरु के प्रति समर्पण तथा मैत्री जीवन के मार्गदर्शक नियम हैं।[१३७] वह कोई ऐसा कार्य नहीं करेगा जिससे उसके गुरु अप्रसन्न हो क्योंकि गुरु को वह श्रील प्रभुपाद तथा गुरु परम्परा का शुद्ध प्रतिनिधि मानकर उनकी पूजा करता है। अन्यों के साथ उसका व्यवहार सरल तथा निष्पक्ष होता है और वह इसके प्रति सदैव जागरुक रहता है कि वह गुरु का प्रतिनिधि है। इस प्रकार एक ब्रह्मचारी सुशीला: साधव:—सुशील साधु पुरुष होता है।[१३८] वह लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास नहीं करता। वह आत्मतुष्ट, प्रसन्नचित्त तथा आश्वस्त रहता है—कभी खिन्न नहीं रहता। इसलिए सारे लोग, यहाँ तक कि अभक्त भी, उसे चाहते हैं। षड्गोस्वामी सज्जनों तथा दुर्जनों को समान रूप से प्रिय थे क्योंकि वे किसी के प्रति ईर्ष्याभाव नहीं रखते थे। श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, "हमें अपने सामान्य व्यवहार में हर एक से मैत्रीभाव रखना चाहिए।"[१३९] (तो फिर भक्तों के साथ व्यवहार के सम्बंध में क्या कहा जाए।)

नारदमुनि ने ब्रह्मचारियों को दासवन् नीच: अर्थात दास की तरह अति विनीत तथा आज्ञाकारी बताया है।[१४०] यदि ब्रह्मचारी आज्ञाकारी नहीं है तो उसके ब्रह्मचारी होने का कोई अर्थ नहीं है। ब्रह्मचारियों को कठिन परिश्रम करने, तप करने, अनुशासन स्वीकार करने तथा समर्पण के लिए तैयार रहना चाहिये। यह तो समझ में आता है (हालांकि बहुत अच्छा नहीं है) यदि कोई गृहस्थ अति समर्पित न हो किन्तु यदि ब्रह्मचारी ऐसा न हो तो यह विपथगमन है। यदि कोई ब्रह्मचारी, विशेषतया कनिष्ठ ब्रह्मचारी, समर्पित, अनुशासित तथा अधिकारीगण के आदेशों को स्वीकार करने को तैयार नहीं है तो वह ब्रह्मचारी कदापि नहीं है और आश्रम में रहने के उपयुक्त नहीं है।

अत्यधिक स्वतंत्रता, विशेषकर उन ब्रह्मचारियों के लिये जो आश्रम में नये भर्ती हुए हैं, ठीक नहीं है। नवागन्तुक को झुकने के लिये और बिना किसी कुड़कुड़ के जो कहा जाए उसे करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस अनुशासनात्मक विधि का



पालन करने से समर्पण का भाव अधिक प्रबल हो जाता है। ऐसे ब्रह्मचारी पर विश्वास किया जा सकता है कि वह किसी भी परिस्थिति में ठीक से कार्य कर सकता है।

परम्परानुसार ब्रह्मचारीगण सेवा करने के लिए हैं, सेवा कराने के लिए नहीं। इसलिए ब्रह्मचारियों को दूसरों से सेवा लेने की न तो आशा करनी चाहिए, न ही माँग। प्रत्युत, उन्हें अन्यों की सेवा करने के लिए उत्सुक रहना चाहिए। विशेष रूप से परम्परा से ब्रह्मचारी संन्यासियों के सहायकरूप में कार्य करते रहे हैं। ब्रह्मचारी को दूसरों की सेवा ग्रहण करने से अनिच्छुक होना चाहिए विशेषकर नियमित रूप से और कोई निजी सेवक तो रखना ही नहीं चाहिए। ऐसा ब्रह्मचारी इसका अपवाद हो सकता है जो वर्षों से भक्ति में लगा रहा हो और वृद्धावस्था में अशक्त हो। ऐसा सेवक भी गुरुभाई या गुरु भाई के स्तर का नहीं होना चाहिए।

आदर्श ब्रह्मचारी आध्यात्मिक प्रगति के लिए अपना जीवन अर्पित करता है और अपने को भौतिक भोग से विरक्त रखने तथा आत्म संयमित होने का प्रयास करता है। किन्तु वह मूर्खतावश जिद्दी नहीं होता और ऐसे भक्तों की निन्दा नहीं करता जो उसके समान कठोरता से पालन नहीं करते। वह न तो अज्ञानी या भोलाभाला या वासना का पुंज होता है अपितु वह सतोगुणी ब्राह्मण की तरह आचरण करता है।

स्थिरता ब्रह्मचारी जीवन की आधार शिला है। प्रारम्भ में कृष्णभावनामृत के सभी सिद्धांतों में प्रशिक्षण को स्वीकार कर लेने के बाद, एक गम्भीर ब्रह्मचारी, जीवन भर इन मानदण्डों का सतत् एवं दृढ़ रूप से पालन करता है।

यदि कोई भक्त सारे नियमों का पालन करता है और उत्तम रीति (जैसा कि सारे अच्छे ब्रह्मचारी करते हैं) से सेवा करता है तो माया उसे मिथ्या ही गर्वित होने, अपने को अन्य भक्तों से श्रेष्ठ समझने की चाल में फँसाने का प्रयत्न करेगी। हमें विचार करना चाहिए कि अभी ठीक से कार्य करते हुए भी इसकी कोई प्रत्याभूति नहीं है कि भविष्य में भी हम उच्च मानदण्ड स्थिर रख सकेंगें। हमारे देखते ही देखते कई भक्तों ने विस्मयकारी प्रगति की किन्तु, मात्र मिथ्या अभिमान से जनित पापों के कारण उनका पतन हो गया। सच्ची तथा स्थायी प्रगति के साथ साथ विनयशीलता का होना आवश्यक है क्योंकि घमंडी का सिर नीचा होकर रहेगा।

## ब्रह्मचर्य - विद्यार्थी जीवन के रूप में

श्रील प्रभुपाद, बच्चों को सरलता से अपने जीवन को पूर्ण बनाकर भगवद्धाम जाने का सुअवसर प्रदान करने के लिये, गुरुकुलों की स्थापना करना चाहते थे। श्रील

प्रभुपाद: "यदि कोई व्यक्ति जीवन के प्रारम्भ से भक्ति का अभ्यास करे तो वह निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जाएगा।"[१४१] हमारे गुरुकुलों में चाहे जो भी न्यूनतायें रही हों किन्तु वे विशेष हैं क्योंकि वे श्रीकृष्ण पर केन्द्रित हैं। श्रील प्रभुपाद ने आधुनिक विद्यालयों को "बूचड़खानें"[१४२] इसलिये कहा है क्योंकि उन्होंने देखा कि वे असहाय बालकों के मस्तिष्क में इन्द्रियतृप्ति तथा मनोकल्पना की प्रवृत्तियों को भर रहे हैं।

और हम लोग, जो अपनी युवावस्था में या उसके बाद इस्कॉन में सम्मिलित हुए उनका क्या? क्या हम कृष्णभावनामृत के छात्र बन सकते हैं? उत्तर हाँ में है - हमें गम्भीर भक्त छात्र बनना चाहिए। परम्परानुसार ब्रह्मचारी वैदिक ज्ञान का अध्ययन अपने गुरु के पथप्रदर्शन में करते थे और गुरु को तुच्छ सेवायें प्रदान करते थे। इस्कॉन ब्रह्मचारियों के लिए भी ये दोनों बातें उपलब्ध हैं। अध्ययन तथा प्रशिक्षण के पहलुओं को कभी कम करके नहीं आँकना चाहिए। गुरु अपने शिष्य से इसलिये सेवा कराता है जिससे वह उसे वैदिक ज्ञान प्राप्त करने का पात्र बना सके। जब तक भक्त के हृदय में दिव्य ज्ञान की जागृति न हो तब तक गुरु-शिष्य सम्बन्ध का कोई अर्थ नहीं है। यह ज्ञान शास्त्रों में निहित है और श्रील प्रभुपाद ने अपने भक्तिवेदान्त तात्पर्यों में आध्यात्मिक ज्ञान के गूढ़तम रहस्य, सीधी भाषा में दिये हैं। किन्तु शास्त्रों के सन्देश को समझने की छात्र की शक्ति इस पर निर्भर करती है कि प्रामाणिक गुरु की उस पर कितनी कृपा है।

शनै: शनै: कृष्णभावनामृत विषयक अनेक नई-नई पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित की जा रही हैं और श्रील प्रभुपाद यह चाहते थे। किन्तु, श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें हमारे आंदोलन का आधार हैं। श्रील प्रभुपाद ने हमारे पढ़ने के लिए पर्याप्त दर्शन दे रखा है। दर्शन श्रीकृष्ण से अभिन्न है - अति व्यापक, असीम। "यदि हम प्रतिदिन सम्पूर्ण भगवद्गीता का वाचन करें, तो भी प्रत्येक पठन में हमें नई-नई व्याख्या मिलेगी। दिव्य ग्रन्थों की यही प्रकृति है।"[१४३]

ब्रह्मचारी आश्रम से गृहस्थ या संन्यास आश्रम में जाने के पूर्व ब्रह्मचारी को श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों का उचित बोध होना चाहिए। हर भक्त को कम से कम दर्शन का मूलभूत ज्ञान तो होना ही चाहिए। अन्यथा उसकी कृष्णभावना ठीक से विकसित नहीं होगी। यदि ब्रह्मचारी को वैदिक ज्ञान के प्रति रुचि नहीं है तो फिर उसके ब्रह्मचारी होने का क्या अर्थ है? दूसरी ओर, यदि एक ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों को सावधानीपूर्वक एवं नियमित रूप से पढ़ने की आदत बना ले तो यही उसके जीवन को सफल बनाने के लिये पर्याप्त होगा।



दर्शन के अलावा कृष्णभावनामृत, संस्कृति, कला तथा विज्ञान की बहुरंगी पक्षों वाली स्थिति है। जो किसी भी पक्ष को सीखने का कष्ट करेंगे, जीवन को समृद्धतर पायेंगे। हम सभी में छिपी प्रतिभाएँ हैं, तो क्यों न कतिपय प्रतिभाओं का विकास श्रीकृष्ण की सेवार्थ किया जाये? जैसा कि नारदमुनि ने कहा है, ब्रह्मचारी को दक्ष होना चाहिए।[१४४] इसकी व्याख्या करते हुए श्रील प्रभुपाद ने कहा है कि ब्रह्मचारी को हर काम में दक्ष होना चाहिए।[१४५]

जहाँ तक सम्भव हो हर ब्रह्मचारी को कक्षा लेना, अतिथियों का स्वागत करना, प्रचार करना, संस्कृत श्लोक उद्धृत करना, खाना पकाना, अर्चाविग्रह की आधारभूत पूजा करना, कीर्तन का नेतृत्व करना, भजन गाना तथा मृदंग बजाना आना चाहिए। चतुर्दिक कुशल ब्रह्मचारियों के लिए आधुनिक युग में सीखने के लिये उपयोगी अन्य और क्षमतायें हैं यथा वाहनों का आधारभूत रख-रखाव, कम्प्यूटर दक्षता तथा प्रारम्भिक लेखा।

भक्तों को वैदिक शिष्टाचार (दाएँ एवं बाएं हाथ का सही प्रयोग, पुस्तकों पर पांव न रखना आदि) तथा स्वास्थ्य तथा सफाई के नियम जानना और व्यवहार में लाना आना चाहिए।* उन्हें कपड़े धोने, कपड़ों में इस्त्री करने, अपने को तथा अपने कक्ष को साफ सुथरा रखने से लेकर किसी भी परिस्थिति में अपनी देखभाल स्वयं करने तक में आत्मनिर्भर होना चाहिए। अतएव जो भक्त हमारे आन्दोलन में आते हैं उन्हें प्रशिक्षित किया जाना चाहिये। आज के कनिष्ठ ब्रह्मचारी कल के वरिष्ठ ब्रह्मचारी बनेंगे। आज का प्रशिक्षणार्थी कल का शिक्षक है।

यदि आप भक्तिमय सेवा के किसी भी पक्ष में विशिष्टता प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखते हैं तो अपने अधिकारियों से अनुमति लेकर आगे बढ़ो, उसमें तल्लीन हो जाओ। गुरुओं तथा कृष्णभावनाभावित नायकों का एक कर्तव्य है कि वे ब्रह्मचारी को उसकी प्रवृत्ति के अनुसार मार्गदर्शन दें जिससे वह सदैव उत्पत्तिजनक और सुखी रहे। अत: मार्गदर्शन प्राप्त करके श्रीकृष्ण के लिए दक्ष वक्ता, रसोईया, पुजारी या अन्य कुछ बनें। अच्छे से मृदंग बजाना सीखिये और सैकड़ों श्लोक कंठस्थ कीजिये। यदि कृष्णभावनाभावित होने के पूर्व के जीवनकाल से आप में कोई अतिरिक्त दक्षता हो - यथा बागवानी, कला या कम्प्युटर, सभी प्रकार से उस कौशल को कृष्णभावनामृत में विकसित कीजिये। श्रीकृष्ण के लिए कुछ सीखिये, कुछ कीजिये और अन्यों को भी वैसा करने के लिए

* भक्ति विकास स्वामी की प्रकाशित होने वाली पुस्तक, वैष्णव संस्कृति, शिष्टाचार एवं व्यवहार में इन विषयों की विस्तार से व्याख्या मिलेगी।

प्रशिक्षित कीजिये। कृष्णभावनामृत में अपने जीवन को सफल बनाइये। यह सोचकर कि कर्मी जीवन ऐसा कुछ प्रदान कर सकता है जो कृष्णभावनामृत में सम्भव नहीं, असंतुष्ट होकर, छोड़कर न जायें। हममें जो भी लालसाएँ हैं वे कृष्णभावनामृत में तुष्ट हो सकती हैं।

## ब्रह्मचारी आश्रम ( निवास )

ब्रह्मचारी निवास स्थान एक बड़े शयनागार या छोटे-छोटे कमरों के प्रकार का हो सकता है। दोनों में से किसी भी प्रकार में, अच्छा हो यदि सभी ब्रह्मचारी साथ साथ एक ही क्षेत्र में रहें। भक्तों के लिए एकान्त वास या अत्यधिक गोपनीयता संस्तुत नहीं की जाती। ऐसी परिस्थिति में अधिक देर तक सोने अथवा अन्य किसी प्रकार से माया के चंगुल में पड़ने की प्रवृत्ति होती है।

एक बार श्रील प्रभुपाद हैदराबाद में ब्रह्मचारी कमरे में (१०.८ x ३.५ मीटर) गये और कहा, "इसमें चालीस, ब्रह्मचारी रह सकते हैं।" भक्त अचम्भित हुए और सोचा प्रभुपाद उपहास कर रहे हैं किन्तु ऐसा नहीं था।[१४६]

स्पष्टत: ब्रह्मचारी आश्रम को ब्रह्मचारिणी तथा गृहस्थ क्षेत्रों से दूर और मन्दिर के निकट होना श्रेयस्कर है। उसमें शौचालय तथा स्नान सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए जिससे हर कोई समय से मंगल आरती में पहुँच सके।

श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों का पूरा सेट उपलब्ध होना चाहिए या अच्छा हो कि एक पृथक पुस्तकालय-वाचनालय हो। (अभी तक हमारे अधिकतर मंदिरों में यह महत्वपूर्ण सुविधा उपलब्ध नहीं है। भक्तगण, विशेषतया ब्रह्मचारीगण श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिए सब कुछ त्यागते हैं। यदि सम्भव हो तो ऐसा एक स्थान होना ही चाहिए जहाँ जाकर वे श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में तन्मय हो सकें।)

इस्कॉन के प्रारम्भिक दिनों में, भक्तगण पलंग पर सोने के आदी नहीं थे किन्तु आजकल हमारे अनेक आश्रमों में यह एक मानक साज-सामान है। पलंग आवश्यक रूप से बुरे नहीं (यद्यपि परंपरानुसार ब्रह्मचारियों से उन्हें प्रयोग करने की अपेक्षा नहीं) किन्तु मुझे इनके होने से कोई लाभ नहीं दिखता। धन खर्च होने के अलावा ये काफी स्थान घेरते हैं और उपयोग में लाये जाने के लिये सतत् प्रलोभन प्रदान करते हैं। इसके अलावा, मुलायम गद्दे स्वास्थ्य के लिए अहितकर हैं। फर्श पर सोना ब्रह्मचारी की सरलता तथा तपस्या के आदर्शों के अनुकूल है। ब्रह्मचारी को किसी विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं होती। वह कहीं भी विश्राम कर सकता है। पलंग आसक्त होने के



लिये मात्र एक अन्य वस्तु है। जागने पर एक ब्रह्मचारी अपने बिस्तर को सफाई से समेट कर अलग स्थान पर रख देता है (जो दिखती नहीं, वह भुला दी जाती है) और जहाँ वह सोया रहता है उस स्थान पर पोछा लगाता है। श्रील प्रभुपाद: "ब्रह्मचारी फर्श पर लेटता है।"[१४७]

ब्रह्मचारी कमरे की दीवारों पर (वैसे तो अन्यत्र कहीं भी) जो चित्र हों वे ठीक से मढ़े हों, किसी पत्रिका से काट कर इधर उधर चिपकाये न जाएँ। उनकी ओर पाँव करके न सोएं। दर्पण तो ब्रह्मचारियों के लिए अभिशाप है। अत: दीवार में एक छोटा सा दर्पण रखें जिसमें देखकर तिलक लगाया जा सके।

ब्रह्मचारी आश्रम को साफ सुथरा रखा जाना चाहिए। इसका अर्थ है नित्य बुहारा जाना तथा पानी से धोया जाना श्रील प्रभुपाद: "यदि भक्तगण अपने कमरों को प्रतिदिन पानी से धोते नहीं तो वे सूकरों की तरह रहते हैं।" चीजों को इधर उधर बिखरी न रहने दें - लॉकरों का इस्तेमाल करें। यदि हम गंदगी करें तो तुरन्त साफ कर दें, किसी दूसरे पर न छोड़ें। कूड़ादान रखें और इसका प्रयोग करें तथा इसे प्रतिदिन खाली करें। धुलाई के कपड़ों की टोकरी भी रखें एवं गंदे कपड़ों को इसके अंदर रखें, न कि इसके ऊपर, इसके पास, इसके चारों ओर या आधे अंदर आधे बाहर। गीले कपड़ों को सूखने के लिए बाहर या अलग कमरे में टांगें। विशेषकर तौलियों तथा कौपीनों को दृष्टि से दूर रखें। दीवारों, छतों, पंखों, खिड़कियों तथा चित्रों को भी साफ रखें। तिलक को गंदा न करें। अलमारियों के पीछे तथा कोनों में मकड़ी के जालों तथा एकत्रित धूल पर नजर रखें।

सामुदायिक रहन-सहन के मूलभूत नियमों का पालन करें। सामुदायिक रूप से काम आने वाली चीजों (यथा पुस्तकों)को घर न ले जाएँ। उपयोग करने के उपरांत उन्हें उनके सही स्थान पर पुन: रख दें। किसी अन्य व्यक्ति की कोई व्यक्तिगत वस्तु उपयोग करने के पूर्व अनुमति लें।

ब्रह्मचारी आश्रम में प्रसाद लाने का अर्थ है चीटियों, तिलचट्टों तथा चूहों को आमंत्रण देना और प्रसाद को छिपाकर रखना शुद्ध भक्ति नियमों के प्रतिकूल है। भागवतम् के अनुसार "साधु संन्यासी को उसी दिन या अगले दिन खाने के उद्देश्य से खाद्य पदार्थ का संग्रह नहीं करना चाहिए। यदि वह इस आदेश की अवज्ञा करता है और मधुमक्खी की तरह स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ एकत्रित करता रहता है तो यह एकत्रित पदार्थ उसे निश्चय ही नष्ट कर देंगे।[१४८]

वायु को शुद्ध रखने के लिए अगरबत्ती जलाएं तथा अधिक से अधिक शुद्ध हवा को आने दें। बदबू अप्रिय होती है और बासी (बन्द) हवा हानिकारक है। शौचालय तथा स्नान घर वाले क्षेत्र को सदैव स्वच्छ तथा विसंक्रमित रखें। सामूहिक स्थानों में यदि सर्वोत्तम सफाई न रखी जाये, तो रोग तेजी से फैलता है।

ब्रह्मचारी आश्रम में कर्मी पुस्तकों, पत्रिकाओं या अखबारों के लिए कोई स्थान नहीं है। जिन भक्तों को अपनी सेवाओं के सम्बंध में ऐसी चीजें पढ़नी पड़े तो वे एकान्त में पढ़ें।

नियम-निष्ठ अनुशासन वाले आश्रम में बिजली निश्चित समय पर जलाई एवं बंद की जाती है (उदाहरणार्थ ३.३० बजे प्रातः तथा ९.३० बजे रात)। सबसे अच्छा होगा कि प्रभुपाद भजन कैसेट सुनते हुए जागें। देर से सोने वालों तथा जल्दी जागने वालों को चाहिए कि शान्तिपूर्वक, बिना बिजली जलाये और केवल आवश्यकता पड़ने पर टार्चलाइट का प्रयोग करते हुये और उसमें भी दूसरों के मुँह पर न पड़े ऐसी सावधानी रखते हुए जाएं। ऐसे तथाकथित ब्रह्मचारी जो रात में देर तक इतना शोर मचाते हुए जागते हैं कि उन के कारण दूसरे लोग ठीक से विश्राम नहीं कर पाते और फिर प्रातःकालीन कार्यक्रम में सोते हैं, वे उपयुक्त ब्रह्मचारी नहीं हैं और आश्रम में रहने योग्य नहीं है।

जागने पर बिस्तर में लेटे-लेटे अर्धचेतन अवस्था की मूर्छा का आनन्द लेने का प्रयास न करें। तुरन्त उठ जायें और हरे कृष्ण जपें। उठने में जिद्द करने वालों को दृढ़तापूर्वक फुसलाकर स्फूर्तिमान किया जाना चाहिये - उन्हें उनकी विपन्नावस्था में न सड़ने दें। श्रील प्रभुपादः "जो जल्दी नहीं जाग सकता वह आध्यात्मिक जीवन के प्रति गम्भीर नहीं है।"[९९]

ब्रह्मचारी आवास को वास्तव में आश्रम बनाने के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि कृष्ण-चेतना के भाव को प्रबल रखा जाए। यह स्वयं भक्तों पर निर्भर करता है। दर्शन की बातें करें, पवित्र नामों का जप करें, प्रभुपाद की पुस्तकें पढ़ें, श्लोक वाचन करें। समय न गँवाएँ तथा प्रजल्प न करें। अन्यथा वातावरण असह्य हो जाएगा।

## निजी सम्बन्ध

श्रील प्रभुपादः "गुरुभाइयों के बीच सम्बन्ध को अत्यन्त शुद्ध तथा मनोहारी होना चाहिए अन्यथा हमारी संस्था का भविष्य बहुत आशावान नहीं है।"[१००]

सामूहिक रहन-सहन तनावयुक्त हो सकता है, विशेषतया जब कठोर नियमों,



कड़ी समय-सारणी तथा कृष्णभावनाभावित आचरण के आदर्श मानदण्डों के अनुसार चलने का दबाव हो। इसके अतिरिक्त आधुनिक समाज में जीवन इतना सम्भ्रांत पूर्ण हो सकता है कि ब्रह्मचारी आश्रम में सम्मिलित होने वाले अनेक भक्तों की मानसिकता विक्षुब्ध एवं जटिल हो सकती है। पाश्चात्य देशों में विशेषकर अनेकों को विक्षुब्धकारी या विकृत अनुभवों से होकर गुजरना पड़ा होगा यथा विफल प्रेम सम्बन्ध, टूटा हुआ पारिवारिक जीवन, समलैंगिकता, छेड़छाड़, नशा तथा हिंसा।

वे मनः शान्ति, प्रेम, सुरक्षा की तलाश में कृष्णभावनामृत में आते हैं - अर्थात श्रीकृष्ण के चरण कमलों की छाया में अधिक सहज, शुद्ध तथा सरल जीवन हेतु। विभिन्न पृष्ठभूमियों वाले लोग इस आन्दोलन में सम्मिलित होते हैं इसलिए यदि हम भक्तों के समाज में शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं तो हमें कृष्णभावनामृत के विकास की सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार के व्यक्तियों के साथ मिलजुल कर रहना सीखना होगा। मिथ्या अहंकार के कारण हममें यह सोचने की प्रवृत्ति है कि कृष्णभावनामृत के प्रति हमारा दृष्टिकोण ही "सही" है। किन्तु अधिक प्रबुद्ध भक्त का लक्षण है अन्यों की त्रुटियों पर बल न देकर उनके द्वारा की गई सेवा की प्रशंसा करने को तैयार रहना।

हमें अपने मन्दिरों में ऐसा दिव्य पारिवारिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए कार्य करना चाहिए जिसमें सम्भावित भक्तगण स्वतः श्रीकृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण करने के लिए प्रवृत्त हों। स्नेह, बुद्धि, विनयशीलता, अन्यों की बात सुनने के लिये इच्छुक, सहानुभूति, अन्यों का विचार, प्रिय वचन तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार की अर्थात दूसरे शब्दों में परिपक्व कृष्णभावनामृत की आवश्यकता है। विचारशीलता से काफी अन्तर आ सकता है - जैसे अन्य भक्त के कपड़ों को तार से उठाकर परत कर देने का कष्ट उठाना।

हमारे आन्दोलन की विचित्र दुविधा है कि प्रायः नवीन भक्तगण उन भक्तों की अपेक्षा अधिक उत्साही होते हैं जो बहुत समय पूर्व दीक्षित हुए हैं। किन्तु अधिक वरिष्ठ भक्त की सदैव आलोचना करना ठीक नहीं है। कृष्णभावनामृत में स्थिरता की वास्तविक परख कुछ महीनों में नहीं अपितु अनेक वर्षों में होती है। सामान्यतया वरिष्ठ भक्तों को उपदेश देने का कार्य उनके तुल्य या उनसे वरिष्ठ भक्तों (आंदोलन में बिताया गया समय, सेवा सम्बन्धी ज्ञात तथ्य, कृष्णभावनामृत विधि पालन करने में दृढ़ता इत्यादि के आधार पर) द्वारा किया जाना चाहिए।

नये या संघर्ष कर रहे भक्तों से व्यवहार करते समय विशेषरूप से विचारशील रहें। अधिक आयु वाले व्यक्ति जो ब्रह्मचारी आश्रम में आते हैं उनका भी विशेष ध्यान

रखना होगा – क्योंकि देर से आने वाले लोग तपस्या तथा दबावपूर्ण जीवनशैली से तालमेल नहीं बैठा पाते। आयु तथा अनुभव में अधिक परिपक्व होने के कारण वे युवक ब्रह्मचारियों के साथ सम्बन्ध नहीं बना पाते।

आखिर, कृष्णभावनामृत स्वैच्छिक विधि है। यह आन्दोलन केवल प्रेम तथा विश्वास पर, सहयोग की भावना पर चल सकता है। श्रील प्रभुपाद: "भक्त का कर्तव्य है कि अन्यों के साथ, विशेषतया अन्य भगवद्भक्त से व्यवहार करते समय सदैव सचेत रहे।"[६१] यदि हम भक्तों के साथ व्यवहार में सावधानी नहीं रखेंगे तो हमारे निजी सम्बन्धों में तनाव आएगा। दुर्बल भक्तजन निरुत्साहित होकर चले जा सकते हैं और कृष्णभावनामृत में अपने जीवन को पूर्ण कर पाने के महान अवसर से वंचित हो सकते हैं।

भक्तों के बीच वास्तविक मैत्री हार्दिक तथा गहरी होती है। यह अति महत्वपूर्ण है कि ब्रह्मचारीगण परस्पर प्रेम, विश्वास और मैत्री उत्पन्न करें जो एक दूसरे के दास के दास होने की इच्छुकता पर आधारित हो। भक्तगण एक दूसरे का ध्यान रखते हैं और आगे बढ़ने में सहायता करते हैं। यदि इस आन्दोलन के भीतर हम एक या दो प्रगाढ़ मैत्री भी स्थापित कर सके तो यह आजीवन हमें पथ पर स्थिर रखने में बहुत सहायक होगी।

किन्तु कभी-कभी भक्तगण, एकाकी अनुभव कर सकते हैं, भले ही वे कई अच्छे भक्तों के साथ रह रहे हों। वे किसी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रख पाते। कभी-कभी भक्त विवाह भी कर लेते हैं क्योंकि वे सहानुभूति तथा घनिष्ठ मैत्री की खोज में रहते हैं। भक्तों के साथ सही प्रकार से सम्बन्ध स्थापित न कर पाने की अक्षमता हमारी कृष्णभावनामृत की प्रगति में निश्चित ही बाधा पहुँचाएगी और ऐसी समस्याओं को दूर करने के लिए हम श्रील रूप गोस्वामी की पुस्तक 'उपदेशामृत' के श्लोक ४ पर विचार कर सकते हैं जिसमें उन्होंने भक्तों द्वारा बाँटे जाने वाले छ: प्रकार के प्रेम विनिमयों की व्याख्या की है। कृष्णभावनामृत परीक्षित विधि है। यह काम करती है। अत: यदि हमें एकान्त का अनुभव हो तो हमें अन्य भक्तों से बातें करने का प्रयास करना चाहिए और उनके साथ श्रील रूप गोस्वामी द्वारा बताई गई विधि से कृष्णभावनामृत को बाँटना चाहिए। जो भक्त हृदय से विनीत है, जो वैष्णवों की तुच्छ सेवा करने के अलावा कुछ भी नहीं चाहता एवं कुछ भी अपेक्षा नहीं करता, उसे अन्यों के साथ तालमेल रखने में कोई समस्या नहीं आयेगी।



## ब्रह्मचारी नायक

यदि सम्भव हो तो ब्रह्मचारी नायक को ब्रह्मचारियों के साथ रहना चाहिए। उसे वरिष्ठ, आदर्श तथा प्रौढ़ भक्त होना चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचारी हमारे समाज के रत्न तुल्य हैं। वे बिना किसी प्रत्याशा के श्रीकृष्ण के लिए स्वेच्छा से सारा दिन कठिन श्रम करते हैं, संयम से रहते हैं, विनीत होते हैं और दुर्लभ ही कभी शिकायत करते हैं। प्राय: वे ही प्रचार तथा पुस्तक वितरण के द्वारा हमारे मिशन का अग्रणी कार्य कर रहे होते हैं। वे प्राय: नवयुवक होते हैं, दो या तीन वर्षीय भक्त, और मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन के लिए वरिष्ठ भक्तों की संगति पसन्द करते हैं। किन्तु हमारे बड़े केन्द्रों में आवश्यकतानुसार हर वस्तु विभागों में बँटी हुई है। वरिष्ठ भक्त या तो विवाह कर लेते हैं या विशेष सेवा में यथा प्रबन्धन में लग जाते हैं। प्राय: असावधानीवश ही नये भक्त बिना नायक के रह जाते हैं। यद्यपि वे कुछ काल से वहाँ रहने के कारण यह जानते हैं कि क्या क्या करना है और अन्यों का मार्गदर्शन कर सकते हैं फिर भी वे किसी आश्रम नायक की संगति की प्रशंसा करेंगे एवं उससे लाभान्वित होंगे।

ब्रह्मचारी नायक वरिष्ठ ब्रह्मचारी, संन्यासी या त्यागी गृहस्थ हो सकता है। वह ब्रह्मचारियों के साथ या उनसे कुछ अलग रह सकता है। (और, यदि अभ्यागत या निवासी संन्यासियों के आवास ब्रह्मचारियों के आवासों के निकट हों तो यह दोनों के लिए लाभकर होगा।) ब्रह्मचारी नायक की अपनी पूर्णकालिक नियमित सेवा होगी, किन्तु फिर भी वह ब्रह्मचारियों का अवलोकन करता रहेगा। वह देखेगा कि वे हर चीज़ को स्वच्छ रखें, मन्दिर के कार्यक्रमों में जायें, उन्हें प्रोत्साहित और परामर्श देगा, और कभी-कभी उनके साथ बैठकर पढ़ेगा यानि कि वह वहाँ है और सुलभ है। हम सभी को ऐसा व्यक्ति चाहिए जिसका हम सम्मान करते हों और जिस पर हमें विश्वास हो, जिससे हम अपने मन की बात विश्वासपूर्वक कह सकें। समर्पित भक्तों को मार्गदर्शन और परामर्श देना श्रीचैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आंदोलन के प्रति महती सेवा है।

## गृहस्थ पुरुषों के प्रति मनोवृत्ति

कुछ दिग्गज ब्रह्मचारी गृहस्थों के प्रति या यहाँ तक की उन ब्रह्मचारियों के प्रति जो उनकी अपेक्षा कम कठोर हैं, सतत् कटु स्वभाव बनाये रखते हैं। निस्संदेह ब्रह्मचारियों को एक दूसरे को ब्रह्मचारी जीवन की महिमा तथा गृहस्थ जीवन के खतरों के बारे में प्रचार करना चाहिए क्योंकि ऐसे विचार-विमर्श स्वस्थ होते हैं और मन

को प्रबल बनाने में सहायक होते हैं। किन्तु व्यर्थ ही आलोचना करना या श्रेष्ठ भावना उत्पन्न करना शुद्ध भक्ति के नियमों के विरुद्ध हैं और आध्यात्मिक प्रगति को क्षति पहुँचाने वाले हैं। यह आवश्यक नहीं है कि निष्ठावान ब्रह्मचारी मायाजाल में फँसे प्रतीत होने वाले गृहस्थ की तुलना में कृष्ण को अधिक प्रिय हों। अंततोगत्वा, हम सब माया के हाथों में खिलौनों के तुल्य हैं। यदि श्रीकृष्ण अपनी सुरक्षा वापस खींच लें तो हम अपना व्रत नहीं रख पाएंगे। हम कितनी ही कठोरता क्यों न बनाएं रखें, कितनी ही तपस्या क्यों न करें किन्तु यदि हम गर्व करेंगे तो यह हमारी मूर्खता होगी। आध्यात्मिक प्रगति के बाह्य प्रदर्शन पर भी ऐसे वैभव के भ्रमों से हमारी वास्तविक उन्नति बहुत मन्द होगी।

यह रोचक बात है कि परम्परागत गुरुकुलों में गुरु प्राय: गृहस्थ होते थे। उदाहरणार्थ श्रीकृष्ण के गुरु, सान्दीपनी मुनि। और ऐसे अनेक महापुरुष, जो हमसे कहीं अधिक महान थे, गृहस्थ हुए हैं। बारह महाजनों में से सात गृहस्थ हैं या थे। आज भी कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अनेक प्रबुद्ध समर्पित भक्त गृहस्थ हैं।

अत: किसी प्रकार की दुर्भावना बनाये रखे बिना, हमें अच्छी संगति, जहाँ कहीं भी मिले, स्वीकार करनी चाहिये। नरोत्तम दास ठाकुर गाते हैं, "भक्त चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, यदि वह 'गौरांग' के नाम का उच्चारण करता है तो मैं उसका संग करना चाहूँगा।" इसलिए ब्रह्मचारियों को गृहस्थ भक्तों की विनीत भाव से सेवा करने और उनके द्वारा की जाने वाली सेवा का आदर करने के लिये उत्सुक होना चाहिये।

किन्तु ठीक से जाँच लें कि संगति अच्छी हो। ऐसे भक्तों से मिलने-जुलने से सावधान रहें जिनके विचार तथा बातें केवल पारिवारिक मामलों तथा धन कमाने में उलझी हों, जो आनन्द लेने के भाव में हों या जो कृष्णभावनामृत के नियमों का दृढ़ता से पालन नहीं करते हों। ब्रह्मचारीगण समाजीकरण तथा गृहस्थों के घरों के चारों ओर मंडराने के लिये नहीं हैं। और यदि कोई गृहस्थ नियमित रूप से टी.वी. देखते हों और अन्य प्रकार से कर्मियों का अनुकरण करते हों तो उनके घरों से दूर रहें - यह गृहस्थ आश्रम न होकर अन्धकूप है। (निश्चय ही, प्रचारकार्य के लिए हमें कर्मियों के घर जाना होता है किन्तु तब तो हमें और भी सावधान रहना होगा। मात्र हमें शिक्षा देने के लिए श्रील प्रभुपाद ने कहा है, "जब भी मैं किसी धनी व्यक्ति के घर में प्रवेश करता हूँ तो मैं श्रीकृष्ण से यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं कहीं नीचे न गिर जाऊँ।")

और यद्यपि गृहस्थ भक्त अच्छा संग प्रदान करते हों, फिर भी अच्छा होगा कि ब्रह्मचारीगण उनसे उनके घरों में या उनके परिवारजनों के साथ अधिक संग न करें।



ऐसा करते समय, एक ब्रह्मचारी को दृढ़ आंतरिक प्रतिज्ञा बनाये रखनी ही चाहिये नहीं तो वह पारिवारिक जीवन के स्नेह तथा आराम के प्रति आकृष्ट हो सकता है और सोच सकता है, "मैं भी यह आनन्द ले सकता था।" एक बार कोई ब्रह्मचारी ऐसा सोचना प्रारम्भ करता है, तो उसके पतन का बीजारोपण हो जाता है।

गृहस्थ भक्तों से विपरीत, ब्रह्मचारीगण बिना किसी बाह्य व्याकुलता के कृष्णभावनामृत में अपने को निमग्न कर सकते हैं। गृहस्थजन प्राय: सन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों से प्रेरणा दिये जाने की अपेक्षा करते हैं। संन्यासियों का विशिष्ट कर्तव्य है कि वे गृहस्थों का मार्गदर्शन करें और उन्हें ऊपर उठाएं। विनीत, प्रसन्नचित्त ब्रह्मचारी भी सर्वत्र प्रशंसित होंगे।

## महिला भक्तों के साथ व्यवहार

सामान्य भौतिकवादी स्त्रियों तथा श्रीकृष्ण की शरण लेने आई स्त्रियों में आकाश पाताल का अन्तर है। इस्कॉन में सारी स्त्रियाँ भक्त हैं अतएव वे धन्य हैं। उनमें से कुछ अपने पूर्व जीवनों से स्पष्टत: प्रबुद्ध हैं। उनके साथ दूर से किन्तु सम्मान से पेश आना चाहिए। यदि वे गम्भीर भक्त हैं तो वे आपकी नियम-निष्ठा का आदर करेंगी।

प्रशिक्षण के अभाव या स्त्री स्वतन्त्रता के विचारों से लगाव के कारण महिला भक्त कभी-कभी आपके साथ अनुचित व्यवहार कर सकती हैं। अच्छा हो कि इस पर ध्यान न दें, इसको लेकर तमाशा न खड़ा करें। स्त्रियों को सतीत्व में प्रशिक्षित होना चाहिए किन्तु आधुनिक स्त्रियाँ ऐसी नहीं हैं। हम पुरुष भी अभी तक, स्त्रियों के साथ व्यवहार में शोषणकारी कामुक मानसिकता से प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए हम भी गलत हो सकते हैं। यदि आवश्यक हो तो मन्दिर के अधिकारियों से परामर्श करें।

इस्कॉन के इन प्रारम्भिक दिनों में हमें न केवल नियम-निष्ठ अपितु यह समझ कर सहनशील भी होना होगा कि अधिकांश पाश्चात्यवासी रात भर में अपना सामाजिक आचरण बदल कर परम्परागत भारतीय वैष्णवों जैसे नहीं हो सकते। श्रील प्रभुपाद इस विषय में अति संवेदनशील थे अतएव पश्चिम में वे कृष्णभावनामृत स्थापित करने में सफल हो सके।

प्राय: ब्रह्मचारियों में स्त्रियों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति होती है किन्तु श्रील प्रभुपाद ने कभी ऐसा नहीं किया क्योंकि वे आकर्षण-विकर्षण से परे और मात्र हर एक को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाना चाहते थे। जब एक भक्त ने श्रील प्रभुपाद से शिकायत की कि स्त्रियों के होने से हमारे आन्दोलन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो

गई हैं और यह सुझाव रखा कि और अधिक स्त्रियों को पूर्णकालीन भक्त के रूप में स्वीकार न किया जाये तो श्रील प्रभुपाद ने उत्तर दिया, "वे श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करने आई हैं। हम उन्हें निकाल नहीं सकते।"[१५२] (पाश्चात्य देशों में ब्रह्मचारिणियों को अलग से रहने के लिए सुविधा प्रदान की जाती है।)

"जहाँ तक महिला भक्तों द्वारा उत्पन्न अशांति की बात है तो वे भी जीव हैं। वे भी श्रीकृष्ण के पास आई हैं। तो जान बूझकर मैं उन्हें मना नहीं कर सकता। यदि हमारे पुरुष सदस्य, ब्रह्मचारी तथा संन्यासीगण, कृष्णभावनामृत में स्थिर हो जाऐं तो कोई समस्या ही न रहे। यह पुरुष सदस्यों का कर्तव्य है कि वे एकदम स्थिर तथा सतर्क रहें। यह हरिदास ठाकुर की तरह नियमित नाम जप से हो सकता है। जब भी कोई तरुणी आए तो हमें हरिदास ठाकुर का स्मरण करना चाहिए और हमारी रक्षा करने के लिए उनकी कृपा की याचना करनी चाहिए। हमें यह सोचना चाहिए कि ये सुन्दर गोपियाँ श्रीकृष्ण के भोग हेतु हैं। यह हमारे समाज के लिए दुविधा है कि हम इन युवतियों को अस्वीकार नहीं कर सकते और साथ ही ये तरुणों के लिए महान घातक आकर्षण हैं।"[१५३]

यह सूचित किये जाने पर कि मन्दिर में स्त्रियों की उपस्थिति से कुछ ब्रह्मचारीगण अशांत अनुभव करते हैं तो श्रील प्रभुपाद ने व्यंग्य करते हुए सुझाया कि ब्रह्मचारीगण जंगल चले जाएं।[१५४] पूर्वकाल में ब्रह्मचारी जंगल में, शहरों के विक्षोभ से दूर रहते थे। किन्तु आधुनिक युग में यह सम्भव नहीं। वस्तुत: प्रचार के फलस्वरूप कृष्णभावनामृत के प्रति कम से कम उतनी ही मात्रा में स्त्रियाँ भी आकृष्ट होंगी जिस मात्रा में पुरुष और हम उनके अस्तित्व को, न ही श्रीकृष्ण की सेवा करने के उनके अधिकार को, अस्वीकार कर सकते हैं। प्रत्युत, जो कोई भी कृष्णभावनामृत में आता है उसे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। किन्तु जब तक कोई पूर्णरूपेण शुद्ध न हो, यदि कोई पुरुष भक्त श्रेष्ठ भावना से भी किसी स्त्री को कृष्णभावनामृत ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करना प्रारम्भ करता है, तो भावनात्मक तथा शारीरिक स्थल पर आकृष्ट होने की प्रवृत्ति रहती है। इसलिए यद्यपि ब्रह्मचारी किसी को भी प्रचार कर सकते हैं, अच्छा यही होगा कि स्त्रियाँ स्त्रियों को प्रचार करें।

१९६७ में श्रील प्रभुपाद ने न्यूयार्क शहर में द्वितीय एवेन्यू मन्दिर में एक कक्षा में घोषणा की, "इन लड़कियों को इन्द्रियभोग के विषय के रूप में मत देखो। इन्हें श्रीकृष्ण की संगिनियों के रूप में देखो।"[१५५] और १९७० के दशक के मध्य भाग में, अमरीका में संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों का एक दल गृहस्थों तथा स्त्रियों के लगाव



के बारे में अत्यधिक नैतिक बन गया। इससे तनाव उत्पन्न हो गया और १९७६ के मायापुर पर्व के अवसर पर विस्फोटक स्थिति तक पहुँच गया। समस्या का समाधान करते हुए (जैसा वे सदैव करते थे—कृष्णभावनामृत के प्रचार द्वारा) श्रील प्रभुपाद ने कहा कि पुरुष भक्तगण स्त्रियों को "हे माता" कहकर सम्बोधित करें तथा स्त्रियाँ पुरुषों को "प्रिय पुत्र" के समान देखें।[१५६]

१९६८ में सीएटल में एक वार्तालाप के समय श्रील प्रभुपाद ने कहा, "अब दूसरी बात - लड़कियों को हेय न समझा जाए। कभी-कभी, वस्तुत:, शास्त्र में हम कहते हैं कि स्त्री बन्धन का कारण है। किन्तु इसको इतना न बढ़ाया जाए कि स्त्रियाँ हेय हैं। जो लड़कियाँ आती हैं, उनके साथ हम अच्छा व्यवहार करें। अन्ततोगत्वा, कृष्णभावनामृत में आने वाला कोई भी, चाहे पुरुष हो या स्त्री, अत्यन्त भाग्यशाली है। एक दूसरे को 'प्रभु' कहकर सम्बोधित करने के पीछे भाव यही है कि 'आप मेरे स्वामी (प्रभु) हैं'। प्रभु का अर्थ है 'स्वामी' इसलिए हर कोई अन्यों से 'मेरे प्रभु' के रूप में व्यवहार करे। यह वैष्णव बोध है। आध्यात्मिक जीवन में यौनवाद जैसी कोई वस्तु नहीं। यौन जीवन को हम जितना विस्मृत करेंगे, समझिये आध्यात्मिक जीवन में हम उतनी प्रगति कर रहे हैं। अत: भावना यह होनी चाहिए - स्त्रियों, गुरु बहनों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाए।"

ब्राजील के एक मन्दिर के ब्रह्मचारी इतने उत्तेजित हो गये कि वे सारी स्त्रियों को निकालने पर तुल गये। जब जी.बी.सी, परम पूज्य हृदयानन्द गोस्वामी को पता लगा तो उन्होंने हास्य में व्यंग्य करते हुए कहा, "परिहास मत करो। फिर ब्रह्मचारियों के लिये ऐसा कोई नहीं होगा जिसके लिये वे सेवा करें।"

स्त्रियों के सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में कुछ ऐसी बातें हैं जिनको, जब तक कोई बहुत आत्मसंयमी एवं दक्ष प्रचारक न हो, जन सामान्य के बीच तथा कक्षाओं में दोहराते समय सतर्क रहना चाहिये, विशेषतया जब महिला भक्त या अतिथि उपस्थित हों। (उदारणार्थ वे उद्धरण जिनमें कहा गया है कि स्त्रियाँ पुरुषों की तुलना में कम बुद्धिमान होती हैं या कि वे नौ गुना अधिक कामुक होती हैं इत्यादि) अंतत:, मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य तथा कलौ शूद्र सम्भव:। इस युग में हर कोई निम्न जन्मा है। चाहे पुरुष हों या स्त्रियाँ, हम सभी श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा श्रील प्रभुपाद की कृपा पर निर्भर हैं। हम न तो उन स्त्रियों को निरुत्साहित करना चाहते हैं जो पहले से भक्त हैं, न ही उन्हें जो संभावित भक्त हैं। न ही हम ब्रह्मचारियों को कृत्रिम रूप से गौरवान्वित बनाना चाहते हैं। संवेदनशील विषयों को दक्ष भक्तों को सुलझाना चाहिये।

वैदिक सामाजिक दर्शन कहता है कि स्त्रियों को पुरुषों द्वारा रक्षा प्रदान की जानी चाहिये किन्तु यह कार्य गृहस्थों का है, ब्रह्मचारियों या संन्यासियों का नहीं। ब्रह्मचारी के लिए तो तरुणियों का अर्थ है परेशानी। तरुण स्त्रियाँ कितनी ही निष्ठावान क्यों न हो, ब्रह्मचारियों के सम्पर्क में आने पर एक प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न होती है जो भक्ति की उन्नति के लिए स्वास्थ्यप्रद नहीं है। जिनका तरुण स्त्री भक्तों से नियमित सम्पर्क रहता है, चाहे अबोधता वश या सेवा के सम्बन्ध में, उनका दुर्बल होना निश्चित है। वे भले ही ऐसी संगति के दुष्प्रभाव को देख न पाएं किन्तु तब भी यह रेडियो सक्रियता की तरह मन्द, सूक्ष्म तथा अपरिवर्तनीय होता है।

ब्रह्मचारी को उस दशा में अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए जब कोई स्त्री उसके साथ "बहुत अच्छा" व्यवहार करती है (जैसे, उसे लगातार महाप्रसाद देती रहती है)। स्त्री द्वारा सेवा पुरुष के लिए जाल है।[५७] स्त्रियों का स्वभाव है कि वे एक पुरुष की शरण तथा सुरक्षा चाहती हैं क्योंकि सामान्यतया आध्यात्मिक तथा भौतिक, दोनों ही दृष्टियों से विवाहित होना उनके लिए लाभदायक होता है। किन्तु ब्रह्मचारियों को जान लेना चाहिए कि यद्यपि विवाह कर लेने पर वे भौतिक दृष्टि से उन्नति करते हैं किन्तु यह तथाकथित उन्नति मात्र इन्द्रियतृप्ति में फँसना है। इसलिए पुरुष की आध्यात्मिक उन्नति के लिए स्त्री के बिना रहना स्वाभाविक रूप से श्रेयस्कर है। इस ज्ञान के आधार पर कार्य करते हुए, जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी बना रहना चाहता है उसे उन स्त्रियों के प्रति भौतिक सहानुभूति से मुक्त रहना होगा जो पतियों की खोज में हों।

श्रील प्रभुपाद: "हमारे संघ के प्रबन्धकों को यह देखना चाहिए कि सारे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी बने रहें और सारी स्त्रियाँ विवाहित हो लें।" भक्तगण: "श्रील प्रभुपाद ऐसा किस तरह सम्भव है?" श्रील प्रभुपाद: "यही तो तुम्हारा प्रबन्ध है।"[५८]

श्रील प्रभुपाद ने टिप्पणी की है, "ये लड़कियाँ सामान्यत: हमारे समाज में उपयुक्त पति खोजने आती हैं।"[५९] स्वाभाविक है कि भक्तिनें सर्वश्रेष्ठ भक्तों से विवाह करना चाहेंगी। वे उन ब्रह्मचारियों के प्रति अधिक आकृष्ट होती हैं जो स्थिर, समर्पित, परिपक्व तथा विश्वसनीय हैं। कुटिलतावश, वे ब्रह्मचारी जो ब्रह्मचारी बने रहने के प्रति गम्भीर होते हैं, अधिकांशत: उत्तेजित ब्रह्मचारीणियों के लक्ष्य बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को जो ब्रह्मचारी जीवन बिताने के प्रति समर्पित हो, किसी स्त्री द्वारा शिकार बनाया जाना उस व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के प्रति हिंसात्मक कार्यवाही मानी जा सकती है। दूसरी ओर इसे परीक्षा भी माना जा सकता है जिससे होकर बड़े-बड़े मुनियों तक को निकलना पड़ता है।



यदि ऐसा ब्रह्मचारी, जो ब्रह्मचारी बना रहना चाहता है यह देखे कि कोई युवती उसके प्रति मैत्रीभाव स्थापित कर रही है तो उसके कानों में खतरे की घंटी बज उठनी चाहिए और उसे उस स्थिति से अपने को बाहर कर लेना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो अच्छा यही होगा कि उसको कोई उत्तर न दिया जाए। शिष्ट बने रहकर उदासीनता दिखाने और लगातार अरुचि प्रदर्शित करने से स्त्रियाँ शीघ्र ही आश्वस्त हो जाती हैं कि उन्हें वैवाहिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए अन्यत्र खोज करनी चाहिए। ऐसे व्यवहारों में भावुकता के लिए कोई स्थान नहीं होता। यदि ब्रह्मचारी मन को आन्दोलित होने देता है और वह थोड़ी सी भी रुचि दिखाता है, तो उत्साहित हुई आखेटिका शिकार के हृदय को कामबाणों से बेधे बिना नहीं रुकेगी।

किन्तु यदि कोई स्त्री एक अनिच्छुक ब्रह्मचारी के प्रति अपनी इच्छाओं को बनाये रखती है, तो ब्रह्मचारी स्पष्टत: उस स्त्री से कह सकता है, माताजी, मैंने पहले ही अपने अनेक जीवनों को आप जैसी अनेक स्त्रियों को दिया है। कृपया मुझे आशीर्वाद दें कि मैं यह जीवन, बिना किसी अनावश्यक उपद्रव या बन्धनों के, पूर्णरूपेण श्रीकृष्ण को दे सकूँ। यदि ब्रह्मचारी अपने निश्चय के प्रति गम्भीर है तो एक निर्लज्ज स्त्री ही और आगे उसका पीछा करना कायम रखेगी।

किन्तु हमारे मंदिरों में, अक्सर यह एक व्यवहारिक आवश्यकता होती है कि पुरुष तथा स्त्रियाँ साथ-साथ भक्ति सेवा में संलग्न हों। हम ऐसी स्थितियों से बच नहीं सकते यद्यपि मन्दिर के अधिकारियों को इसका प्रबन्ध करना चाहिए कि भक्त तथा भक्तिनें यथा सम्भव अलग रहें। ब्रह्मचारियों को स्त्री भक्तों के साथ अत्यधिक परिचित या स्वच्छंद या उनके साथ मैत्री स्थापित किये बिना, उनके प्रति वैष्णव सम्मान बनाये रखना चाहिये। श्रील प्रभुपाद ने कहा है, "संन्यासियों के मस्तक पर 'शीतल स्थान पर रखें' अंकित रहना चाहिए जिस तरह मक्खन की टिक्की पर ठप्पा लगा रहता है।"[६०]

## अभक्त महिलाओं के साथ व्यवहार

विकसित देशों में अभक्त महिलाओं के साथ व्यवहार करना और भी बड़ी समस्या है क्योंकि उन्हें इसका कोई अनुमान नहीं कि ब्रह्मचारियों के साथ किस तरह से व्यवहार किया जाए। न ही उनको समझा पाना सम्भव है। यह अति घातक है - अच्छा हो कि पूर्णत: अपने को दूर रखा जाए (जो कि असम्भव है)।

ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि ब्रह्मचारी स्त्रियों को प्रचार नहीं कर सकते किन्तु जब एक स्त्री की कृष्णभावनामृत के प्रति रुचि जागृत हो जाए तो अच्छा होगा कि

उसे और आगे प्रचार स्त्री भक्तों द्वारा किया जाये। अन्यथा यदि कोई ब्रह्मचारी उसी स्त्री को बारम्बार उपदेश देता है तो घी और आग का सिद्धान्त निश्चित रूप से कार्य करेगा।

संकीर्तन के दौरान भक्तों का प्राय: अभक्त स्त्रियों के साथ विस्तृत सम्पर्क रहता है, अतएव उनके पास श्रीचैतन्य महाप्रभु से अपनी रक्षा के लिए निरन्तर प्रार्थना करते रहने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं रहता। उन्हें अपने मन को दृढ़ता से वश में रखते हुए, सतर्क रहना चाहिए जिससे वे अजामिल की तरह "एक वेश्या की वासनापूर्ण घातक चितवन के शिकार न बन सकें।"[१६१] संकीर्तन भक्तों को बहुत बुरे स्थानों में यथा अश्लीलता युक्त दुकानों तथा मदिरालयों में जाने से बचना चाहिए। पुस्तकें वितरित करने के लिए अन्य प्रचुर स्थान हैं। भले ही हम पर तुरंत कुप्रभाव न पड़े किन्तु जो भी हम देखते हैं वह हमारे मन में एक छाप छोड़ता है। बाद में, हो सकता है वर्षों बाद, वे अनुभव चेतना में पुन: उमड़ें और उत्तेजना उत्पन्न करें। जैसे प्रभुपाद ने एक रॉक संगीत सभा में प्रचार के बाद कहा था, "यह स्थान ब्रह्मचारियों के लिए नहीं है।"[१६२]

जो संकीर्तन ब्रह्मचारी संकीर्तन करते समय स्त्रियों के सम्पर्क में उत्तेजना का अनुभव करें उन्हें पुरुषों को प्रचार करने तथा पुस्तक वितरित करने पर एकाग्र होने का परामर्श दिया जाता है। यदि भक्त को लगे कि अभक्त स्त्रियों के सतत् सम्पर्क से वह अपनी आध्यत्मिक शक्ति को बनाये नहीं रख पा रहा और अनुभव करे कि कृष्णभावनामृत में उसकी स्थिति खतरे में है, तो उसे चाहिए कि वह मन्दिर अधिकारियों से विचार विमर्श करे और आवश्यकता पड़े तो अपनी सेवाओं में परिवर्तन कराए।

## बच्चों के साथ व्यवहार

जो ब्रह्मचारी गुरुकुल से जुड़े हैं उनके अतिरिक्त अधिकांश ब्रह्मचारियों का बच्चों के साथ अधिक सम्पर्क नहीं होगा। ब्रह्मचारियों को बच्चों के साथ छिछोरा खेल करने या उन्हें दुलारने की कोई आवश्यकता नहीं है (बच्चों या पशुओं को चूमने पुचकारने का अर्थ है उनके शरीरों का आनन्द लेने का प्रयास)। बच्चों के साथ कोई भी व्यवहार कृष्णभावनामृत के आधार पर होना चाहिए।

बालिग जो भी दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं उसे बच्चे सराहते हैं इसलिए विशेषकर बच्चों की उपस्थिति में ब्रह्मचारियों को आदर्श कृष्णभावनाभावित ढंग से आचरण करने के लिये उत्तरदायी होना चाहिये। ऐसा नहीं कि ब्रह्मचारी के लिए परिहास या



हल्कीफुल्की बातें करना वर्जित है किन्तु बच्चों के समक्ष अनेक वयस्कों की बचकाना बनने की प्रवृत्ति न तो वयस्कों के लिए न ही बच्चों के लिए लाभदायक है।

यदि आपको लगे कि बच्चे को सही करने या डाँटने की आवश्यकता है तो अच्छा होगा कि उनके माता-पिता या शिक्षकों को सूचित किया जाये। बच्चे बहुत ही संवेदनशील होते हैं।

## परिवार तथा मित्रों के साथ व्यवहार

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अभक्तों की संगति करने में रुचि नहीं लेता। किन्तु वह भक्ति में आने के पूर्व के समय के 'सगे सम्बन्धियों' के प्रति पूर्णतया असंवेदनशील नहीं रह सकता। सामान्यतया माता-पिता तथा अन्य जन यह नहीं समझ पाते कि 'उनके बच्चे' ने क्यों सिर मुंडाने तथा कीर्तन करने, नाचने और प्रसन्न रहने के लिए हर वस्तु का त्याग कर दिया। कभी-कभी पारिवारिक सदस्य कृष्णभावनामृत के प्रति अनुकूल होते हैं, कभी उदासीन तो कभी शत्रुतापूर्ण। किन्तु यदि सम्मानपूर्वक उनसे व्यवहार किया जाए तो लगभग सभी स्थितियों में माता-पिता शनै: शनै: अपने पुत्र के "हरे कृष्ण" होने से तालमेल बैठा लेंगे। कभी-कभी वे स्वयं भी भक्त बन जाते हैं।

अत: श्रेयस्कर है धैर्यवान् रहना तथा उन्हें क्रुद्ध न करने का प्रयास करना। यदि वे शिकायत करते हैं तो कृष्णभावनामृत में अपने सम्मिलित होने के कुछ सकारात्मक पहलुओं को बतलाओ जिनकी वे प्रशंसा कर सकें - कि आप प्रसन्न हैं, स्वच्छ जीवन बिता रहे हैं, इत्यादि। और उन्हें प्रसाद देना न भूलें, जितनी बार और जितनी मात्रा में सम्भव हो।

यदि वे लगातार विरोध करें तो इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता कि शालीनतापूर्वक किन्तु दृढ़ता से उनसे सम्पर्क तोड़ दें जब तक वे अपना दृष्टिकोण बदलने को तैयार न हो जायें। अन्ततोगत्वा यह आपका जीवन है, जैसा आपको श्रेष्ठ लगे वैसा करने के लिये।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा कुछ परामर्श: "आपका आपके माता पिता जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं, उनके साथ व्यवहार के तरीके के सन्दर्भ में मैं आपको बताना चाहूँगा कि आप चार प्रकार के लोगों के साथ चार अलग अलग प्रकार से व्यवहार करें। एक भक्त को भगवान् और भगवद्भक्तों से प्रेम करना चाहिये। भक्त को भक्तों के साथ मैत्री करनी चाहिये। भक्त को अबोध लोगों को उपदेश देने का प्रयास करना चाहिये और भक्त को विरोधी तत्त्वों को अस्वीकार करना चाहिये। माता-पिता के रूप में उन्हें

सामाजिक रीति के अनुसार यथोचित सम्मान दिया जाना चाहिये, किन्तु उनके ईश्वर विहीन निर्देशों को तुम स्वीकार नहीं कर सकते हो। मतभेद से बचने के लिये श्रेष्ठ है उनके निर्देशों के प्रति हाँ या ना कहे बिना मौन रहा जाये। हमें संसार में सभी के साथ मित्रता रखने का प्रयास करना चाहिये, किन्तु इस संसार के किसी सम्बन्धी द्वारा संलग्न किये जाने के कारण, हम अपने कृष्णभावनामृत के सिद्धांतों को नहीं त्याग सकते। उन्हें यह न पता लगने दें कि आप अपने माता-पिता के निर्देशों से सहमत नहीं, किन्तु साथ साथ उनसे व्यवहार करने में अत्यंत सावधान रहो। यदि तुम उनके निर्देशों का विरोध करोगे और उन्हें इसका पता लगने दोगे, तो वे दु:खी होंगे।"[६३]

## अभक्तों के साथ सामान्य व्यवहार

भागवतम् के अनुसार मध्यम स्तर का भक्त, अभक्तों के दो प्रकार को पहचानता है और तदनुसार उनसे व्यवहार करता है।[६४] उसे अबोधों के प्रति दया दिखानी चाहिये (उन्हें कृष्णभावनामृत देकर) और शत्रुओं से बचना चाहिये।

हमारा आंदोलन एक अग्रणी आंदोलन है और, विशेषकर पश्चिम में, इसे दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है। नि:संदेह, प्राय: सहिष्णुता से भी सामना होता है, किन्तु दुर्लभ ही वे हमें समझ पाते हैं। साधुओं का सम्मान करने की संस्कृति वहाँ बिल्कुल नहीं है।

नवीन भक्तगण जिन्हें भक्तिमय सेवा में स्थिरता प्राप्त करना अभी शेष है, अक्सर प्रात: कालीन कार्यक्रम में तो कृष्णभावनामृत के आनन्द का अनुभव करते हैं, किन्तु मन्दिर के प्रांगण से बाहर निकलते ही अपनी चेतना को माया में न गिरने देने से रोकने को कठिन पाते हैं।

इन परिस्थितियों में यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वे अभक्तों, जिनकी आदतें, विचार एवं टिप्पणियाँ प्रारम्भिक भक्तों की कोमल श्रद्धा को सतत् रूप से क्षीण बनाती हों एवं कृष्णभावनामृत में उनकी स्थिति को ही खतरा पहुंचाती हों, के प्रति रक्षात्मक या नकारात्मक दृष्टिकोण बना लें।* निस्सन्देह, सभी अभक्त नितान्त असुर या धूर्त नहीं हैं और उनका इस प्रकार समान वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। न तो हम स्वयं को वास्तव में भक्त ही मान सकते हैं, बल्कि भक्त बनने का प्रयास ही कर रहे हैं। फिर भी, कर्मियों (श्रील प्रभुपाद द्वारा सामान्य रूप से आधुनिक जगत में भौतिकतावादियों

* इन मुद्दों पर पूर्ण विवेचना के लिये आत्म साक्षात्कार का विज्ञान पुस्तक में प्रकाशित श्रील प्रभुपाद द्वारा लिने लुडविग को लिखे गये पत्र को देखें।



की व्याख्या करने के लिये प्रयुक्त शब्द) एवं भक्तों में एक महान अंतर है। और सभी भक्तों के लिये, आकांक्षी या प्रगत, अभक्तों का संग अरुचिकर होता है और हानिकारक भी हो सकता है (सिवाय इसके कि हम उन्हें श्रीकृष्ण की सेवा में लगा रहे हों, जो आनन्ददायक है)

भक्तिरसामृतसिन्धु भक्तों को निर्देश देती है कि वे सामान्य व्यवहार में असावधान भी न रहें, किन्तु साथ ही अभक्तों की संगति भी त्याग दें। हमें इस भौतिक जगत के साथ उतना ही सम्बन्ध रखना चाहिये जितना आवश्यक हो, या दूसरे शब्दों में, मात्र आवश्यक विषयों के लिये ही। ऐसा करते समय हमें इस प्रकार से व्यवहार करना चाहिये कि अभक्तगण धीरे-धीरे कृष्णभावनामृत के प्रति अनुकूल बन सकें, या कम से कम इसके प्रति शत्रुता न रखें।

## अभक्तिपूर्ण आसक्तियों का परित्याग

कृष्णभावनामृत आध्यात्मिक जगत की संस्कृति है, विविध दिव्य कार्यों का अविरत उत्सव। किन्तु हम इतने दुर्भाग्यशाली हैं कि हम अभी भी इन्द्रियसुख की संसारी वार्ताओं के प्रति आकृष्ट होते हैं।

एक वास्तविक भक्त को अभक्तिपूर्ण साहित्य को पढ़ने (जब तक यह सेवा से सीधे रूप से सम्बन्धित न हो यथा माली का बागवानी की पुस्तक पढ़ना), टी.वी. देखने, सिनेमा जाने, अभक्तों द्वारा पकाये खाने को खाने, खेल कूदों की जानकारी रखने, राजनीति, फैशन, मार्शल कला सीखने, या अभक्तिपूर्ण संगीत सुनने से कुछ लेना-देना नहीं है।* चंचल मन इन सभी व्यर्थ के कार्यों में संलग्न होने के औचित्यों को इस

* वैष्णव आचार्यों के भजनों को रॉक संगीत की धुन पर गाना अनुचित, अनावश्यक एवं एक रसाभास है। भक्ति योग आत्मा की संस्कृति है। परम्परागत भक्ति धुनें, जो वैदिक संगीत विज्ञान पर आधारित हैं, स्वाभाविक रूप से श्रीकृष्ण के लिये हमारी सुसुप्त भावनाओं को जगाने में सहायक होती हैं। रॉक धुनें यौन, मादक द्रव्यों एवं हिंसा के प्रति आसक्ति को उत्तेजित करती हैं। यद्यपि कृष्णभावनामृत बोल के साथ रॉक धुनों का कृष्णभावनामृत विहीन लोगों को आकृष्ट करने के सम्बन्ध में कुछ मूल्य हो सकता है (श्रील प्रभुपाद ने निश्चय ही चेंज ऑफ हार्ट एलबम को स्वीकृति दी, जिसमें रुचिकर एवं सीधे रूप में कृष्णभावनामृत बोल, मृदु पोप पर गाये गये थे, किन्तु उन्होंने कहा कि इसे मन्दिर में नहीं बजाना चाहिये), किन्तु वास्तविक वस्तु को प्राप्त किये हुए भक्तों के लिये उनका महत्व नगण्य है। उच्चस्तरीय कृष्णभावनामृत मानदण्ड प्राप्त एवं बनाये रखने के इच्छुक लोगों को श्रील प्रभुपाद के रिकॉर्ड किये गये प्रवचनों, वार्तालापों, भजनों एवं कीर्तनों को प्रतिदिन सुनने की संस्तुति की जाती है। इस संदर्भ में गीता ४.२६ के अनुवाद तथा तात्पर्य को देखें।)

भ्रम को खोजकर गढ़ता है कि किस प्रकार ये कार्य भक्तिमय सेवा से सम्बन्धित हैं। किन्तु ९५ प्रतिशत अवसरों पर हम इन कार्यों में भक्ति के लिये नहीं अपितु अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिये लिप्त होते हैं।

भगवान् चैतन्य ने आगाह किया है कि अभक्तों के भोजन को खाने से मन दूषित हो जायेगा, इस प्रकार हम कृष्ण का स्मरण नहीं कर पायेंगे और हमारा जीवन नष्ट हो जायेगा। अभक्तों द्वारा पकाया गया अन्न विशेषकर प्रदूषित होता है। यदि हम बढ़िया प्रसाद ले सकते हों तो अन्य किसी वस्तु की क्या आवश्यकता है? यहाँ तक कि भ्रमण के समय भी, हमें सुविधा के लिये अपने मानदण्डों का त्याग न करने के लिये सावधान होना चाहिये। श्रील प्रभुपाद: "अपवित्र एवं पापी पुरुष या स्त्री द्वारा पकाया हुआ भोजन अत्यंत संक्रामक है।"[१६५]

हम क्या पढ़ रहे हैं, इसके प्रति भी हमें सावधान रहना चाहिये। समाचार पत्रों एवं पत्रिकायें हमें ऐसी जानकारी प्रदान कर सकती हैं जो हमारे लिये प्रासंगिक हो किन्तु उनमें ऐसी भी अनेक जानकारियाँ होती हैं जो हमें नहीं चाहियें। उनमें सामान्यतया आकर्षक स्त्रियों के चित्र भी होते हैं। अनेक अभक्तिपूर्ण साहित्यों में सूक्ष्म यौन सम्बन्धी निहित अर्थ रहते हैं, जो मन को दूषित एवं बुद्धि को विचलित कर सकते हैं। यौन साहित्य, यहाँ तक कि तथाकथित वैज्ञानिक प्रकार के भी, कठोर रूप से त्याज्य हैं। जैसे पकाने वाले की चेतना भोजन में प्रवेश करती है, वैसे ही लेखक के विचार लेखन में प्रविष्ट होते हैं। सूक्ष्म रुप से प्रदूषित होने से बचने के लिये हमें सावधान रहना होगा।

कर्मी वस्त्रों को धारण करना, जबकि इसकी कोई स्पष्ट आवश्यकता न हो, भौतिक आसक्ति की अभिव्यक्ति है। एक बार श्रील प्रभुपाद ने कुछ भक्तों को लम्बे बाल रखने एवं नियमित रूप से सिर न मुँडाने के लिये डांटा। यद्यपि उन्होंने अपने ऐसा करने के सभी प्रकार के औचित्य प्रस्तुत किये यथा यह प्रचार में सहायक है, श्रील प्रभुपाद ने वास्तविक कारण को भाँप लिया : हिप्पी बीज।[१६६] "हिप्पी बीज", यह सार गर्भित संक्षिप्त वचन उन हर वस्तुओं के लिये प्रयोग किया जा सकता है जो स्पष्टत: प्रामाणिक रूप से एवं सीधे प्रकार से कृष्ण की सेवार्थ न हों।

हम कदाचित समझ भी न पायें कि यह कैसे हो रहा है, किन्तु ये भौतिकतावादी प्रवृत्तियाँ अदृश्य रूप से हमारी चेतना में विष घोल देती हैं। हम प्रकृति के गुणों से मुक्त होने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु ये कर्मी आसक्तियाँ हमें नीचे घसीटेंगी। हम कह सकते हैं, वे प्रबल आसक्तियाँ तो हैं, मैं क्या कर सकता हूँ? हम यह कर सकते



हैं कि उनको शरणागत होने एवं उन्हें पुन: पालने के स्थान पर, उनसे मुक्ति पाने के लिये प्रयास करें।

यदि मेरे पाठक इन प्रतिबंधों को अत्यधिक धर्मान्धता या अयथार्थवादी मानते हैं तो मैं उन्हें सूचित करना चाहूँगा कि १९७७ के पूर्वकालीन इस्कॉन में (जब श्रील प्रभुपाद स्वयं हमारा नेतृत्व एवं मार्ग निर्देशन कर रहे थे) इन सभी का निषेध था और भक्तों के अंतर्गत इनका प्राय: चलन ही नहीं था। श्रील प्रभुपाद ने इतने अच्छे ढंग से हमें प्रशिक्षित किया था। यह केवल उनके चले जाने के बाद ही है कि उनके द्वारा बहुत परिश्रम से सिखाई अनेक चीज़ों को हमने भुला दिया है।

कृष्णभावनामृत का अर्थ है नवीन जीवन, वास्तविकता का नया परिपेक्ष। यदि हम माया की जंजीरों से मुक्त होना चाहते हैं, तो हम सांसरिक लिप्तता को पकड़े नहीं रह सकते। यदि हम वास्तव में श्रीकृष्ण को पाना चाहते हैं, तो हमें इन आसक्तियों को काटना ही होगा। मोह के एक भी क्षेत्र में रुचि बनाये रखना, कृष्णभावनामृत में हमारी प्रगति में अवरोधक सिद्ध होगा। याद रखें, कृष्णभावनामृत का वास्तविक विचार है मन, शरीर एवं वाणी को श्रीकृष्ण के शरणागत करना। कृष्णभावनामृत के ऊपरी स्तर से परे जाने का अर्थ है गम्भीर बनना।

इन भौतिक आसक्तियों को कृष्णभावनामय आसक्तियों से बदलना होगा। यह सम्भव है अपनी इच्छाओं को कृष्णभावनामृत का अनुगामिनी बनाकर न कि इच्छाओं को माया की अनुगामिनी बनने के लिये वापिस घुमा कर। यह कैसे किया जाये? हम कृष्णभावनामृत साहित्य पढ़ सकते हैं (श्रील प्रभुपाद ने हमें प्रचुर मात्रा में दिया है), कृष्णभावनामृत भजन गा सकते हैं (अनेक भजन हैं),कृष्णभावनामृत नाटक खेल सकते हैं (इसकी संभावनायें अनेक हैं), कृष्णभावनामृत दर्शन पर विचार-विमर्श कर सकते हैं (इसमें असीमित गहराई है), कृष्ण के लिये अनेक व्यंजन बना सकते हैं (हज़ारों व्यंजन हैं)। श्रीकृष्ण सम्पर्क हमें शुद्ध करेगा। किन्तु भक्ति विहीन कार्य रजो एवं तमो गुणों से ओत-प्रोत होते हैं और मात्र मन को प्रदूषित एवं अशांत करते हैं। एक गम्भीर भक्त को उन्हें त्याग देना चाहिये।

## युक्त वैराग्य

वैराग्य श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों के जीवन को पोषित करने वाला आधारभूत सिद्धांत है। इस वैराग्य को देखकर, पूर्ण पुरुषोत्तम् भगवान्, श्रीचैतन्य महाप्रभु, अत्यंत संतुष्ट होते हैं।[१६७]

श्रील रूप गोस्वामी ने वैराग्य के वास्तविक अर्थ का विश्लेषण किया है : जब कोई व्यक्ति किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं होता, किन्तु साथ ही हर वस्तु को कृष्ण के सम्बन्ध में स्वीकारता है, तो वह सही रूप से स्वामित्व की भावना के परे स्थित होता है। दूसरी ओर जो हर वस्तु को, कृष्ण के साथ उनके सम्बन्ध को न जानते हुए, त्याग देता है, वह अपने वैराग्य में पूर्ण नहीं है।[६८]

अर्थात् यदि एक भक्त के पास किसी वस्तु को श्रीकृष्ण के सेवार्थ प्रयोग में लाने का अवसर हो तो उसे ऐसा करना चाहिये, यद्यपि वह वस्तु सामान्य तथा भौतिकतावादी उद्देश्यों के लिये प्रयोग में लाई जाती हो। यह युक्त वैराग्य कहलाता है। भक्त सभी प्रकार के यंत्रों का प्रयोग करते हैं, लाखों डालर एकत्र एवं व्यय करते हैं, स्त्रियों को सेवा में लगाते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाते हैं - सब कृष्ण की सेवा के लिये ही हैं।

फिर भी हमें सावधान रहना होगा। श्रील प्रभुपाद एक बंगाली कहावत कहा करते थे, मछली पकड़ो, किन्तु पानी न छुओ। भौतिक संसार में हर पग पर खतरा है। यदि हम कृष्ण के साथ सम्पर्क को भूल जायेंगे, तो पुनः भौतिक चेतना की ओर प्रलोभित हो जायेंगे। श्रील प्रभुपादः "भौतिक जगत में सभी कष्ट अति व्यय के फलस्वरूप हैं।" धन एवं शक्ति उन्मादक हो सकते हैं, प्रबन्ध का कार्य इस भ्रम को उत्पन्न कर सकता है "मैं कर्ता हूँ, मैं नियन्ता हूँ," और मशीनें मोहित कर सकती हैं। हम अपने को बलवान मान सकते हैं किन्तु श्रील प्रभुपाद हमारी समस्त दुर्बलताओं को जानते थे।

इसलिये उन्होंने बल दिया कि हमें सही दृष्टिकोण बनाये रखने के लिये नियमित रूप से श्रीकृष्ण के विषय में सुनना चाहिये। एक भक्त को प्रगति करने के लिये पर्याप्त मात्रा में श्रवण और कीर्तन करना ही चाहिये। यद्यपि वह सेवा में तल्लीन हो, तो भी यह पर्याप्त नहीं। श्रवण एवं कीर्तन गुणवत्ता के साथ-साथ पर्याप्त परिमाण में होना ही चाहिये। कार्य के लिये कार्य करने, धन एवं मशीनों को कुशलतापूर्वक संचालित करने में आनन्द उठाने से, मनुष्य की चेतना भौतिकतावादी की चेतना के समान बन सकती है। भूतकाल में अनेक भक्त जीवन के लक्ष्य से भ्रमित हुए हैं या युक्त वैराग्य के नाम पर ऐश्वर्यमय जीवन के प्रति मोहित हुए हैं। वैराग्य एवं भोग की भावनाओं में भेद कभी-कभी बहुत सूक्ष्म हो सकता है, किन्तु मनोवृत्ति, एक कर्मी एवं एक भक्त के बीच भेद स्थापित करती है - एक भोग करना चाहता है, दूसरा सेवा करना चाहता है। वैराग्य के बिना, युक्त वैराग्य की कोई सम्भावना नहीं है।



भौतिक ऐश्वर्य को, स्वयं प्रभावित हुए बिना, कृष्ण की सेवा में, लगाने की योग्यता, उन्नत भक्तों के लिये सम्भव है। अतः विशेषकर ब्रह्मचारियों को युक्त वैराग्य का अभ्यास आत्मसंयम के साथ, एक दक्ष गुरु के मार्गदर्शन में, सदैव सुविधाजनक जीवन के स्थान पर तपस्या एवं आत्म-परित्याग के जीवन की ओर प्रवृत्त होते हुए, श्रील प्रभुपाद द्वारा अनुमोदित मान-दण्डों के अंतर्गत करना चाहिये।

पुस्तकें आधार हैं
प्रचार सार है
उपयोगिता सिद्धान्त है
शुद्धता शक्ति है।

## भारत

यदि आप मान सकें तो भारत ब्रह्मचारियों के लिये एक महान स्थान है। भारत में आपको तपस्वी बनने का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं - जीवन स्वतः तपस्याजनक है। यदि आपका तपस्या की ओर रुझान है तो भारत वर्ष में आपको उपयुक्त वातावरण मिलेगा। आधुनिक भारत के पश्चिम की नकल उतारने के दयनीय प्रयासों के बावजूद, नारकीय यौन, हिंसा युक्त सिनेमा एवं संगीत के समूह जाल होने पर भी, भारत अब भी पश्चिम की तुलना में कहीं कम कामोत्तेजक है। निःसंदेह यदि कोई पतित होना चाहता है तो वह कहीं भी पतित हो सकता है, किन्तु भारत में पश्चिम की तुलना में अवसर कम दुराग्रही हैं। यहाँ अभी भी कुछ सभ्यता एवं संस्कृति शेष है।

और यह उन कारणों में से एक है जिनके कारण श्रील प्रभुपाद चाहते थे कि भक्तगण भारत आयें। भारतीयों के लिये पाश्चात्य भक्तगण अत्यन्त प्रभावकारी होते हैं। भारतीय सामान्यतया पाश्चात्य भक्तों, विशेषकर यदि वे निपुण प्रचारक हों ओर उन्हें साधुओं के अनुरूप व्यवहार करना आता हो, के प्रति आदरभाव रखते हैं। पाश्चात्य भक्तों के लिये भारत में प्रचार करने और साथ साथ कुछ वैदिक संस्कृति सीखने के महान अवसर हैं।

उन्हें कृष्णभावनामृत का व्यापक परिपेक्ष यह अनुभव करके मिल सकता है कि किस प्रकार अब भी लाखों लोग इसे मानते एवं अपनाते हैं। वे पवित्र धामों, विशेषकर मायापुर तथा वृंदावन, को देखने तथा उनकी सेवा करने, साधुओं के अनुरूप व्यवहार करना सीखने, और भक्तिमय कौशलों तथा भोजन पकाने एवं शास्त्रों की जानकारी रखने वालों को प्रचार करना सीखने का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। भारतीय जीवन की

कठिनाइयों का सामना करने के लिये उन्हें सहिष्णुता, धैर्य तथा आत्म-निर्भरता का विकास करना होगा। भक्तगण सीख सकते हैं कि बड़ों और छोटों से किस प्रकार व्यवहार किया जाये एवं कैसे गम्भीर आचरण किया जाये। भावी गृहस्थ देख सकते हैं कि गृहस्थ जीवन कैसा होना चाहिये और बच्चों का लालन-पालन कैसे किया जाये।

भारत में उपलब्ध वास्तविक लाभ उन भक्तों को मिलता है जो यहाँ संक्षिप्त काल के लिये नहीं वरन् दीर्घकालीन सेवा करने आते हैं। ऐसा आवश्यक एवं व्यवहारिक नहीं कि प्रत्येक भक्त भारत में सेवा करे, किन्तु गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पूर्व, एक या दो वर्ष भारत वर्ष में व्यतीत करना ब्रह्मचारियों के लिये अत्यंत सहायक होगा। विशेषतया यदि कोई भक्त भारत में यात्रा करते हुए प्रचार कार्य करता है और कुछ-कुछ ग्रहणशील एवं बुद्धिमान है तो वह प्रचुर मात्रा में कृष्णभावनाभावित कौतुक तथा साहस प्राप्त कर सकता है और कृष्णभावनामृत की व्यापक दृष्टि प्राप्त कर सकता है जो आजीवन उसके साथ रहेगी।

सभी प्रबन्ध प्रासंगिक अधिकारियों से परामर्श के आधार पर किये जाने चाहियें।

## कामवासना पर विजय

जिस प्रकार गरुड़ सर्पों का शत्रु है, जैसे निर्विशेषवाद भक्ति का शत्रु है उसी प्रकार कामवासना बद्धजीव का शत्रु है। यह नरक के तीन द्वारों में से पहला है।[९९] कामवासना इतनी शक्तिशाली है कि इसे जीत पाना असम्भव प्रतीत हो सकता है। ब्रह्मचारी यौन इच्छा से लड़ने की प्रतिज्ञा लेता है और कभी-कभी सोच सकता है कि वह युद्ध जीत रहा है, किन्तु शीघ्र ही पुनः भौतिक इच्छा के सागर में निमग्न हो जाता है।

इसका कारण है पूर्वकालीन संस्कार (चित्त, अर्धचेतना में पड़ी छाप)। बद्धजीव का हर कार्य, विचार एवं इन्द्रिय अनुभव एक संस्कार उत्पन्न करता है। हर संस्कार उन मानसिक छापों के भंडार में जुड़ जाता है जो मृत्यु के समय भी नष्ट नहीं होते। यौन क्रियायें या मात्र यौन का विचार भी विशेष रूप से प्रबल संस्कारों को उत्पन्न करता है। ये संस्कार व्यक्ति की वृत्ति को प्रभावित करते हैं और असंख्य वासनाओं को जन्म देते हैं।

पूर्व जन्मों की यह छाप यानि संस्कार, अर्धचेतना की गहराइयों में दबे रहते हैं और इसलिये दृढ़ता से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला भक्त अब भी प्रबल यौन इच्छाओं को धारण किये हो सकता है। शुद्ध प्रतीत होने वाला ब्रह्मचारी भी गुप्त यौन



इच्छाओं को धारण किये हो सकता है जो किसी भी क्षण उदित होकर उसे भस्म कर सकती हैं, जैसा कि अजामिल के साथ हुआ।[९०] हम कैसे इस नित्य शत्रु, ज्ञान एवं विज्ञान के इस नाशक पर विजय प्राप्त कर सकते हैं?[९१] यदि हम यौन उत्तेजना से पीड़ित हों तो क्या कर सकते हैं?

यौन आकर्षण पर विजय प्राप्त करने की एक विधि है, और यह विधि है भक्तिमय सेवा की पद्धति। भक्तिमय सेवारूपी परम शुद्धिकरण की विधि में, ब्रह्मचर्य का अभ्यास आवश्यक किन्तु गौण है। एक मात्र भक्तिमय सेवा द्वारा ही भौतिक इच्छाओं पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त की जा सकती है। आयुर्वेदिक उपचार की तरह, रोग का शमन तुरन्त नहीं होगा, किन्तु पूर्ण होगा। लाखों जन्मों से हम भौतिक इच्छाओं के वशीभूत हो रहे हैं, और उन्हें हटा पाना सरल नहीं है। उन पर विजय प्राप्त करने के लिये हमें जीवनभर भक्तिमय सेवा निरन्तर करते रहने का एक गम्भीर एवं परिपक्व निर्णय लेना होगा। यही एकमात्र उपाय है।

सर्वप्रथम तो हमें यह समझना होगा कि प्रत्येक व्यक्ति कामवासना से उत्तेजित है। शुद्ध भक्तों, जो इस संसार में दुर्लभ हैं, को छोडकर, ब्रह्मा से लेकर चींटी एवं खटमल तक, हर कोई यौन आकर्षण से विचलित है। यहाँ तक कि संन्यासी एवं अन्य उन्नत भक्त भी किसी भी समय माया के आक्रमण का विषय बन सकते हैं। किन्तु चूंकि उन्होंने इन स्थूल इच्छाओं पर नियन्त्रण का अभ्यास किया है, वे कृष्णभावनामृत में स्थिर रह पाते हैं।

हमें यह सोचकर हतोत्साहित नहीं हो जाना चाहिये कि यौन इच्छा पर विजय पाना असम्भव है। हमें दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि यह सम्भव है। प्रहलाद महाराज यौन उत्तेजना की तुलना खुजली से करते हैं।[९२] यह खुजलाहट उत्पन्न करती है और हम खुजलाना चाहते हैं। किन्तु यदि हम खुजलाते हैं तो यह और भड़कती है। अच्छा है खुजलाये बिना सहन किया जाये, तब समय बीतने पर यह खुजलाहट धीरे-धीरे चली जाएगी। हमें यथार्थवादी होना होगा कि लगभग सभी को, भौतिक इच्छाओं में सर्वाधिक मूलभूत तथा अति प्रबल इस इच्छा को जीतने में, पर्याप्त समय, धैर्य तथा विश्वास की आवश्यकता होगी। हमें, श्रीकृष्ण से इस दुष्ट मन को वश में करने में सहायता करने की प्रार्थना करते हुए, कृष्णभावनामृत में चलते रहना होगा।

भगवद्गीता में कृष्ण स्वीकार करते हैं कि चंचल मन को वश में करना अति दुष्कर है, किन्तु विश्वास दिलाते हैं कि निरन्तर अभ्यास तथा वैराग्य से ऐसा सम्भव

है। श्रील प्रभुपाद: ''प्रशिक्षण से मनुष्य यौन जीवन को भूल सकता है।''[७७] परम्परानुसार ब्रह्मचारियों को जन्म से ही कठोर प्रशिक्षण दिया जाता था। किन्तु हमारा लालन-पालन अत्यंत विक्षुब्ध समाज में हुआ है जिसमें इन्द्रिय नियमन का कोई अभ्यास नहीं है, प्रत्युत इसके विपरीत अभ्यास है। फिर हमारे लिये मन तथा इन्द्रियों को वश में करना तथा दृढ़ ब्रह्मचारी बन पाना कैसे सम्भव हो पायेगा?

नि:सन्देह मन और इन्द्रियों को वश में करना, विशेषतया आधुनिक युग में, अत्यन्त कठिन है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम प्रयास ही न करें। जब तक हम प्रयास न करें, हम सभ्य मानव भी नहीं हो सकते, आध्यात्मिक अभ्यर्थी होने की बात तो दूर रही।

यदि हम सचमुच सहायता चाहते हैं तो श्रीकृष्ण अवश्य ही हमारी सहायता करेंगे। हमें अत्यन्त पतित अवस्था से उबारने के लिए ही कृष्ण, भगवान् चैतन्य महाप्रभु के रूप में आये हैं, सर्वश्रेष्ठ परामर्श देने के लिये कि हरे कृष्ण का जप करो। जो लोग पवित्र नाम का जप निष्ठा तथा धैर्यपूर्वक करते हैं उनके लिए सब कुछ सम्भव है। जप से हृदय निर्मल होता है। चेतो दर्पणमार्जनम् । श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है - इहा हैते सर्व सिद्धि हैबे सबार - ''हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने से प्रत्येक को सर्व सिद्धि मिलेगी।''[७८]

जैसे श्रील प्रभुपाद ने व्याख्या की है - ''प्रत्येक व्यक्ति वासनामयी इच्छाएँ पूरी करना चाहता है। अत: जब तक कोई सतोगुण या दिव्यता के पद पर न हो, वह यही चाहेगा। यही भौतिक जगत है - रजस-तम:। जैसे कि मैं कोई भूखा व्यक्ति हूँ। भोजन हो और मैं उसे खाना चाहूँ। यदि मैं इसे बलपूर्वक लूँ तो यह अवैध है, किन्तु यदि मैं दाम चुका कर लूँ तो यह वैध है। किन्तु मैं भूखा हूँ, और भोजन चाहता हूँ। ऐसा चल रहा है। हर कोई कामुक है। इसलिये 'कानून सम्मत वेश्यागमन' की बात की जाती है। वे चाहते हैं।''

''इसलिये विवाह कानून सम्मत है, बस इतना ही। कामवासना तथा इच्छा वही है, चाहे विवाहित हो या अविवाहित। इसलिए वैदिक कानून कहता है, 'विवाहित होना अच्छा है। इससे तुम अपने को वश में रख सकते हो।' इस तरह वह अविवाहित जीवन की अपेक्षा कम कामुक होगा। इसलिये गृहस्थ जीवन एक छूट है - वही कामवासना नियमानुसार है। विवाहित जीवन के बिना वह अनेक प्रकार के शील भंग करेगा इसलिए अच्छा होगा कि वह - स्त्री तथा पुरुष दोनों ही - एक से तुष्ट हों



और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करें।''

''इस भौतिक जगत में हर जीव इन्हीं कामवासना की इच्छाओं तथा लोभ को लेकर आया है। यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवता भी। ब्रह्मा अपनी ही पुत्री पर कामुक हो उठे थे। और शिवजी मोहिनी मूर्ति पर उन्मत हो गये थे। तो फिर हम तुच्छ प्राणियों की क्या बिसात? कामवासना तो है ही। यही भौतिक जगत है।''

''पूर्णतया कृष्णभावनाभावित हुए बिना यह कामवासना रोकी नहीं जा सकती। यह सम्भव नहीं। यही तपस्या है, कि हम स्वेच्छा से कुछ असुविधा स्वीकार करते हैं। तपसा ब्रह्मचर्येण। तपस्या का अर्थ है प्रथम ब्रह्मचर्य - किस तरह यौन इच्छा से बचा जाए। यही पहला पग है। उनकी तपस्या कहाँ है? इस तपस्या को करना बहुत कठिन है। इसीलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने हरिनाम प्रदान किया है। यदि आप नियमित रूप से हरे कृष्ण का जप करें तो आप स्वस्थ हो जाएंगे। अन्यथा नियमित तपस्या आजकल असम्भव प्राय: है।''[७९]

हमें हरे कृष्ण का जप करना है, मशीनी ढंग से नहीं, अपितु ब्रह्मचर्य के आठ अंगों का ठीक से पालन करने के लिए श्रीकृष्ण को वास्तव में पुकारते हुए। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''यदि हम निष्पाप होकर हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने के नियम पर दृढ़ रहें तो श्रील हरिदास ठाकुर की कृपा से हम स्त्रियों के प्रलोभन से बच सकते हैं। किन्तु यदि हम हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने में दृढ़ नहीं हैं तो हम किसी भी समय स्त्रियों के शिकार बन सकते हैं।''[८०]

वेदान्तसूत्र में (४.४.२२) अनावृत्ति: शब्दात् अर्थात ''शब्द से मुक्ति'' का प्रसंग आया है। ऊँचे स्वर में तथा स्पष्ट उच्चारण के साथ जप करने से कामवासना पर विजय पाने में सहायता मिलती है। परम्परागत गुरुकुलों में ब्रह्मचारीगण प्रतिदिन घंटों वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करने के साथ साथ भक्तगण भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतम् या अन्य शास्त्रों के श्लोकों का जोर जोर से उच्चारण करने के साधन को अपना सकते हैं।

जप (उच्चारण) के साथ-साथ भौतिक जीवन की वास्तविकताओं के बारे में भी नियमित श्रवण करना चाहिए। श्रीमद्भागवतम् में ययाति, पुरुरवा तथा सौभरि जैसे महापुरुषों के कार्यकलापों का वर्णन हुआ है जिन्होंने यौन का आनन्द उठाने के प्रयास में वर्षों बिताकर यह पाया कि इसमें तनिक भी आनन्द नहीं है। उनकी कथाएँ इसलिये अंकित हैं जिससे बुद्धिमान लोग उनको मात्र सुनकर ही उसी निष्कर्ष को प्राप्त हों।

हृदय में निहित कामवासनाओं को दूर करने के लिये गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की लीलाओं का श्रवण करने की विशेष संस्तुति की जाती है।[१७७] किन्तु "यदि आप राधारानी के साथ श्रीकृष्ण की लीलाओं को देख या सुनकर अधिक कामुक होते हैं तो इसका अर्थ है कि आप योग्य नहीं हैं। इन्हें बन्द कर दें। मूर्खता न करें।"[१७८]

श्रवण के साथ मनन करने से साक्षात्कार होता है। तथ्य है यौन के विचार से भी पूरी तरह विरुचि हो जाना। किन्तु जब तक हम इस अवस्था तक पहुँच न जाएं, हमें यह समझ कर कि यौन हमारे हित में नहीं है, मन तथा शरीर को सावधानी से वश में करना चाहिए। इसलिए निम्नांकित बातों पर विचार करने के लिए बुद्धि लगानी चाहिए:

युवती के सौन्दर्य की क्षणिक प्रकृति; आज की युवतियां कल की वृद्धाएँ बनेंगी।

उस सौन्दर्य की मोहमयी प्रकृति; इस पर विचार करें कि यदि त्वचा न रहे तो स्त्री का शरीर कितना सुन्दर रह जाएगा!

यौन से सुख नहीं मिलता। जरा अभक्तों को देखें - उन्हें यौन प्राप्त है किन्तु वे दु:खी हैं। भक्तगण सुखी हैं और वे जितना आगे बढ़ते जाते हैं और भौतिक लिप्तता का परित्याग करते हैं वे उतना ही अधिक सुखी हो जाते हैं।

इसके विपरीत यौन में लिप्तता, चाहे वैध हो या अवैध, हमें कष्ट देती है। (देखें—"यौन-अपार कष्ट का कारण")। यद्यपि यौन इच्छा (कामवासना) सामान्यतया लोगों द्वारा अति प्रशंसित है किन्तु यह हृदय में पीड़ा पहुँचाती है।

यौन निराशाजनक है, सर्वप्रथम इसलिये क्योंकि वास्तविक क्रिया में अपेक्षित सुख कभी नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में, यह उतना आनन्ददायक नहीं जितना माया हमें विश्वास दिलाती है।

यौन हताशाजनक है, क्योंकि इसके लिये इच्छायें तो असीमित हैं, किन्तु इसमें युक्त होने की शारीरिक क्षमता एक समय में मात्र कुछ क्षणों तक ही सीमित है।

भक्तों को उच्चतर आस्वादन का उच्चतर ज्ञान तथा अनुभव होता है। जिस तरह धनी व्यक्ति निर्धन व्यक्ति द्वारा चखे जाने वाले मोटे चावल का स्वाद नहीं जान सकता उसी तरह पतित भक्त यौन के मोहक आनन्द को भोग नहीं सकता, भले ही वह प्रयास क्यों न करे।



दीक्षा लेते समय हमने व्रत लिया था। जो व्यक्ति उचित तथा अनुचित का अन्तर जानता है और जिसने पाप न करने का व्रत ले रखा है, यदि वह जानबूझ कर अवैध यौन में लिप्त हो तो उसके गम्भीर परिणाम होंगे।

अवैध यौन से या यौन के विषय में सोचने से भी दूर रहने का प्रमुख कारण यही है कि यह गुरु तथा श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने वाला नहीं है।

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, भगवान् पर ध्यान करने से कामवासना तथा अन्य मानसिक विक्षोभों को जीता जा सकता है।[१७९] विशेषरूप से, भागवतम् में कहा गया है कि श्रीकृष्ण की भौहों का ध्यान करने से कामवासना पर विजय पाई जा सकती है।[१८०] यह वास्तव में अत्यन्त प्रभावात्मक हो सकता है। हम जिस अर्चाविग्रह की सेवा कर रहे हों उसका या श्रीकृष्ण के चित्र का ध्यान कर सकते हैं—श्रीकृष्ण हमारी मदद करेंगे। श्रील प्रभुपाद ने उन लोगों के लिए अर्चाविग्रह पूजा को करने की भी संस्तुति की है जो कामवासनाओं से अति क्षुब्ध हैं। हम स्वयं को अर्चाविग्रहों के पास तक जाने के लिए अत्यधिक अशुद्ध मान सकते हैं किन्तु यह विधि संस्तुत है क्योंकि अर्चाविग्रहों के सामने यदि कोई तनिक भी विचारवान व्यक्ति है, तो वह यौन के बारे में सोचना बन्द करने के लिए अपने मन को बाध्य करेगा। इस तरह की अन्तरंग सेवा करके शनै: शनै: एक सतर्क भक्त श्रीकृष्ण के प्रति इतना आकृष्ट हो जाएगा कि सारी तुच्छ इच्छाएँ नगण्य हो जाएंगी।

मन के साथ खिलवाड़ न करें। इन्द्रियतृप्ति के बारे में सोचने और साथ ही इसे त्यागने की आशा करना व्यर्थ है।[१८१] यौन के बारे में ध्यान करने के प्रत्युत इसके परिणामों पर ध्यान करना श्रेयस्कर होगा। किसी भी स्वस्थ चित्तवाले व्यक्ति को यौन-कार्य से मिलनेवाले कष्टों के बारे में विचार करना चाहिए और इसमें लिप्त न होने का संकल्प करना चाहिए।

स्त्रियों को देखना और उनके बारे में सोचने की आदत मनुष्य को काम वासनाओं के समुद्र में निमग्न करती है और उसे पागल बनाती है। ऐसे व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत जो व्यक्ति कामवासना की दृष्टि से स्त्रियों को देखने की बुरी आदत छोड़ देता है वह स्वत: ही मन में अधिक शान्ति का अनुभव करता है। स्त्रियों को देखने की तो बात छोड़िए, एक ब्रह्मचारी को यह स्मरण रखते हुए कि किस प्रकार सौभरी मुनि मछलियों को मैथुन करते देख कर पतित हो गये, मैथुन क्रिया में लिप्त जानवरों तक को नहीं देखना चाहिये।[१८२]

मन को येन केन प्रकारेण इन्द्रियतृप्ति से हटा कर श्रीकृष्ण पर स्थिर करना चाहिये। अपने आप से कहो, "यदि यौन सुख चाहते हो तो यह सम्भव है। कोई कठिन कार्य नहीं। हर व्यक्ति यौन में लिप्त है। किन्तु यदि आप श्रीकृष्ण को चाहते हैं तो यह अन्य बात हुई। इसलिए या तो आगे बढ़ो, विवाह करो, यौन सुख लो अथवा इसे पूरी तरह भूल जाओ।"

जैसा कि श्रीमद् भागवतम् में (७.१५.२२) कहा गया है असंकल्पाज्जयेत् कामम् - संकल्पपूर्वक योजनाएं बनाकर, इन्द्रियतृप्ति की कामवासनाओं का परित्याग करना चाहिए। असंकल्पात का अनुवाद इस तरह किया जा सकता है "यौन के लिए कोई योजना न बनाते हुए, इसके विषय में न सोचते हुए, उसकी मनोकल्पना न करते हुए, उसके विषय में दिवा स्वप्न न देखते हुए।" श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने भाष्य में असंकल्पात् के पर्याय के रूप में भोगार्हता बुद्धि वर्जनात् सुझाते हैं। इसका मूलभूत अर्थ है "भोगने की मानसिकता को त्याग करना।" श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है "असंकल्पात् का अर्थ है कि यदि किसी स्त्री के स्मरण या दर्शन से कामवासना उत्पन्न भी हो तो व्यक्ति यह सोचने के लिये प्रतिज्ञ है, 'यह स्त्री मेरे द्वारा भोग्य नहीं है।' इस तरह वह कामवासना पर विजय पाता है।"

मन को वश में करने की एक विधि यह भी है कि उस की उपेक्षा की जाए। जिस तरह समुद्र में सदैव नदियाँ आकर गिरती रहती हैं और वह निरन्तर पूरित होते रहने पर भी सदैव शांत रहता है, उसी प्रकार वह व्यक्ति जो इच्छाओं के निरन्तर प्रवाह से विचलित नहीं होता वही शान्ति प्राप्त कर सकता है न कि वह जो ऐसी इच्छाओं को तुष्ट करने का प्रयास करता हैं। केवल सहनशीलता द्वारा इच्छाओं तथा लोभ पर विजय पाई जा सकती है।"[१८४]

हमारे मन मस्तिष्क में न जाने कितने अर्थहीन विचार प्रविष्ट होते रहते हैं। यदि हम उन्हें ग्रहण करने के बजाय उनकी उपेक्षा करते रहें तो वे सहज ही तुरन्त मृत हो जाएंगे और उनके स्थान पर अन्य विचार आएंगे। इसलिए हमें अपने मन को कृष्ण का चिंतन करने के लिये प्रशिक्षित करना चाहिए। स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः - महाराज अम्बरीष अनेक प्रकार के भक्तिकार्यों में लगे रहे किन्तु सर्वप्रथम उन्होंने अपने मन को श्रीकृष्ण पर स्थिर किया।[१८५] भक्तों के बीच दार्शनिक विचार-विमर्श जिसमें भक्तगण कृष्णभावनामृत दर्शन को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास करते हैं (जैसा श्रील प्रभुपाद हमें करने को प्रेरित करते थे), मन को ध्यान करने के लिए सार्थक विषय वस्तु प्रदान करता है और उसे सशक्त बनाता है। "मनुष्य को भक्ति के दार्शनिक निष्कर्षों



को समझने में आलस्य नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे विचारविमर्श से मन पुष्ट होता है। इस तरह मनुष्य का मन श्रीकृष्ण में अनुरक्त हो जाता है।"[१८६]

भक्तिविनोद ठाकुर ने सुझाया है कि जो भक्त यौन सुख की रुग्ण इच्छाओं से सताये जा रहे हों वे श्रीकृष्ण द्वारा शंखचूड़ वध लीला का ध्यान करें। शंखचूड़ गोपियों के साथ रमण करना चाहता था। इसी तरह हमें यह समझना चाहिए कि यौन सुख भोगने की हमारी इच्छा आसुरी है, क्योंकि सारे जीव प्रकृति हैं और श्रीकृष्ण द्वारा भोगे जाने के लिए हैं। इसलिए हमें श्रीकृष्ण से गुहार करनी चाहिए कि जिस तरह उन्होंने शंखचूड़ का वध किया था उसी तरह हमारी आसुरी इच्छाओं का वध करें।

ऐसी अनेक प्रार्थनाएँ हैं जो यौन चंचलता का शमन करने में हमारी सहायता कर सकती हैं। श्रीमद्भागवत में एक स्तुति है "सनतकुमार कामवासनाओं से मेरी रक्षा करें।"[१८७] इसके तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं "हर एक में कामवासनाएं अति प्रबल हैं और वे भक्ति सम्पादन में सर्वाधिक बाधक हैं। इसलिए जो लोग कामवासना से अत्याधिक प्रभावित हैं उन्हें महान ब्रह्मचारी भक्त सनतकुमार की शरण ग्रहण करने का परामर्श दिया जाता है।" एक अन्य उत्तम प्रार्थना 'चैतन्य चरितामृत' (मध्य २२.१६) में है -

कामादीनां कति न कतिधा पालिता दुर्निदेशा
स्तेषां जाता मयि न करुणा न त्रपा नोपशान्तिः।
उत्सृज्यैतान् अथ यदुपते साम्प्रतं लब्ध बुद्धि
स्त्वाम् आयातः शरणं अभयं मां नियुङ्क्ष्वात्मदास्ये।।

"हे प्रभु! कामवासनाओं के अवांछित आदेशों की कोई सीमा नहीं है। यद्यपि मैंने उनकी इतनी अधिक सेवा की है किन्तु उन्होंने मुझ पर दया नहीं दिखाई। मैं उनकी सेवा करने में न तो कभी लज्जित हुआ, न ही उन्हें त्यागने की कभी इच्छा ही की। किन्तु हे प्रभु, हे यदुकुल नायक, हाल ही में मेरी बुद्धि जागृत हुई है और अब मैं उन्हें त्याग रहा हूँ। दिव्य बुद्धि के कारण मैं इन इच्छाओं के अवांछित आदेशों का पालन करने से इनकार करता हूँ और अब आपके निर्भीक चरणकमलों में अपने को समर्पित करने आया हूँ। कृपया मुझे अपनी निजी सेवा में लगा लें और मुझे बचा लें।" तत्पश्चात् श्रीचैतन्य महाप्रभु की उत्कृष्ट स्तुति है -

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ
कृपया तव पाद पङ्कज स्थितधूलीसदृशं विचिन्तया।

"हे नन्द महाराज के पुत्र (कृष्ण), मैं आपका नित्य दास हूँ, फिर भी न जाने कैसे मैं जन्म-मृत्यु के सागर में गिर गया हूं। कृपया मुझे इस मृत्यु के सागर से उठा लें और अपने चरणकमलों की धूलि के रूप में मुझे स्थान दें।"[१८८]

कृष्ण को छोड़कर हमारे पास अन्य कोई शरण है भी नहीं, जैसा कि श्रील प्रभुपाद ने व्याख्या की "हमारी सबसे कठिन स्थिति यौन है। श्रीकृष्ण, माया, ने ऐसी लालसा - यौन दी है कि वह उत्पात मचाती रहती है। भले ही आप दृढ़व्रती हों और अपना कार्य अच्छी तरह कर रहे हों, कभी-कभी, विशेषतया रात्रि के समय, आप विचलित हो उठते हैं। इसलिए सुरतौ - श्रीकृष्ण इस दाम्पत्य प्रेम में निपुण हैं, इसलिए हमें श्रीकृष्ण की शरण में जाना पड़ेगा, सुरतौ पङ्गोर। हम अत्यन्त निर्बल और सुस्त हैं और जहाँ तक हमारे यौन आवेग का प्रश्न है, यहाँ पर विशेष रूप से मदनमोहन का उल्लेख हुआ है। यौन आवेश मदन कहलाता है। यदि हम श्रीकृष्ण के दृढ़ भक्त बन जायें तो ये भौतिक यौन आवेग विलुप्त हो जाएंगे। क्योंकि कामदेव (मदन)भी श्रीकृष्ण द्वारा आकृष्ट होता है। हम कामदेव द्वारा आकर्षित होते हैं किन्तु कामदेव श्रीकृष्ण द्वारा आकृष्ट होता है, इसीलिए श्रीकृष्ण मदन-मोहन हैं। यही एकमात्र उपाय है। यदावधि मम चेतः कृष्ण-पदारविन्दे। यदि आप श्रीकृष्ण के चरण कमलों को पकड़े रहेंगे, 'हे श्रीकृष्ण मुझे बचा लें' तो यह भौतिक वस्तु - यौन चंचलता आपको नहीं सताएगी। यही एकमात्र उपाय है। इसीलिए 'मदन-मोहन' कहा गया है। हमारा आध्यात्मिक जीवन इस यौन आवेग द्वारा प्रबल रूप से बाधित होता है, किन्तु यह भौतिक है इसलिए हम इसे सहने का प्रयत्न करते हैं।

"थोड़ा सहन करो और हरे कृष्ण जपो, श्रीकृष्ण से प्रार्थना करो, 'मुझे इन उत्पातों से बचा लो।' और हमें भौतिक रूप से भी इसे वश में करना चाहिए। वश करने का अर्थ है अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः। अत्याहारः का अर्थ है बहुत अधिक भोजन करना, यह भी चंचल बनाता है। इसलिए श्रीकृष्ण की दया से हर वस्तु वश में की जा सकती है। वे मदनमोहन हैं इसलिए हमारा सर्वप्रथम कार्य है मदनमोहन की शरण लेना और उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित करना। 'हे भगवान् कृष्ण! मैंने दीर्घकाल से आपको भुला दिया है।' वह गीत श्रील भक्ति विनोद ठाकुर का है, मानस देहो गेहो जो किछु मोर, अर्पिलुँ तुया पदे नन्दकिशोर। यही पूर्ण समर्पण है। तब श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं 'अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।' वे हमारी रक्षा करेंगे अतः तांस् तितिक्षस्व भारत। अनेक उत्पात हैं। अतः श्रीकृष्ण कहते हैं, 'सहन करो और अपना कार्य श्रद्धापूर्वक करो।' हरे कृष्ण का जप करो, नियमों का पालन करो और



मदन-मोहन के चरणकमलों में पूर्णरूपेण समर्पित हो तो फिर उत्पात नहीं होगा।"[१८९] (श्रील प्रभुपाद ने यह भी कहा है कि जब तक हम मदन-मोहन के प्रति आकृष्ट नहीं होते तब तक हम मदन दहन होंगे अर्थात कामदेव के बाणों से सताये जायेंगे।[१९०] मदन-मोहन की ओर जाने के विषय में अधिक समझने के लिये देखें चैतन्य-चरितामृत आदि १.२९ का तात्पर्य।)

सिद्धि एक दिन में नहीं मिलती। पर्वत पर चढ़ते हुए हम लड़खड़ा सकते हैं किन्तु हमें पुनः शक्ति तथा संकल्प धारण कर चढ़ते रहना होगा जब तक हम इतने पटु न हो लें कि पुनः फिसलें नहीं। अंततः हमें कृष्णभावनामृत में अत्युत्तम आस्वादन उत्पन्न करना होगा। वस्तुतः हमें ऐसी अवस्था प्राप्त करनी है जहाँ हम महान आनन्द का सदैव अनुभव करते रहें।

पर्वत की चोटी और पठार पर पहुँचने में अत्यधिक प्रयास करना होता है। आवश्यकता है मन, शरीर एवं वचन के पूर्ण समर्पित होने की - चौबीसों घंटे, सदैव के लिये और इससे कुछ भी कम नहीं। यह निश्चितरूप से सम्भव है क्योंकि यह गुरु तथा श्रीकृष्ण का वचन है। किन्तु उनकी दया पाने के लिए हमें योग्य बनना होगा।

भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव को उपदेश दिया (भागवतम् ११.२०.२७-२९) कि भक्त को चाहिए कि इन्द्रिय इच्छा को तुरंत जीत पाने की अपनी अक्षमता से विक्षुब्ध हुए बिना, भक्ति सेवा करता रहे। ये श्लोक तथा तात्पर्य इतने प्रासंगिक हैं कि उन्हें पूर्णतः उद्धृत किया जा रहा है।

## अनुवाद

मेरे यश की कथाओं में श्रद्धा उत्पन्न करके, सारे भौतिक कार्यों से ऊब कर और यह जानते हुए कि सभी प्रकार की इन्द्रियतृप्ति दुःखदायी है, किन्तु समस्त इन्द्रिय-भोग त्याग पाने में असमर्थ, मेरे भक्त को चाहिए कि वह सुखी रहे और अत्यन्त श्रद्धा तथा पूर्ण विश्वास के साथ मेरी पूजा करे। कभी-कभी इन्द्रिय-भोग में लगे रहते हुए भी, मेरा भक्त जानता है कि समस्त प्रकार की इन्द्रियतृप्ति का परिणाम दुःख है और वह ऐसे कार्यों के लिए गम्भीरता से पश्चाताप करता है।

## तात्पर्य

भगवान् ने यहाँ पर शुद्ध भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था का वर्णन किया है। निष्ठावान् भक्त ने यह जान लिया होता है कि सारे भौतिक कर्म इन्द्रियतृप्ति तक पहुँचाते हैं और इन्द्रियतृप्ति से दुःख उत्पन्न होता है। इसलिए भक्त की हार्दिक इच्छा चौबीसों

घण्टे बिना किसी स्वार्थ के भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति में लगे रहने की होती है। भक्त हृदय से चाहता है कि वह भगवान् के नित्य सेवक के रूप में अपने स्वाभाविक पद पर पहुँच जाय और इस उच्च पद पर उठाये जाने के लिए वह भगवान् से प्रार्थना करता है। अनीश्वर शब्द बताता है कि अपने विगत पापपूर्ण कर्मों तथा बुरी आदतों के कारण, तुरन्त ही भोग की इच्छा को मनुष्य शमित नहीं कर पाता। भगवान् यहाँ पर ऐसे भक्त को अत्यधिक अवसन्न या हताश न होने के साथ-साथ उत्साही रहने तथा प्रेममयी भक्ति करते रहने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। निर्विण्ण शब्द सूचित करता है कि निष्ठावान् भक्त में यद्यपि थोड़ी-बहुत इन्द्रियतृप्ति बची रहती है, किन्तु वह भौतिक जीवन से पूरी तरह ऊबा रहता है और किसी भी परिस्थिति में जान-बूझकर कोई पापकर्म नहीं करता है। वस्तुत: वह हर प्रकार के भौतिकतावादी कर्म से बचता है। कामान् शब्द द्योतक है यौन-आकर्षण तथा सन्तान, घर आदि के रूप में गौण उत्पादों का। भौतिक जगत में यौन की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि कभी-कभी भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगा निष्ठावान भक्त भी यौन-आकर्षण से, या पत्नी तथा सन्तान के लिए बची हुई भावना से, विचलित हो उठता है। शुद्ध भक्त समस्त जीवों के प्रति, जिसमें तथाकथित पत्नी तथा सन्तानें सम्मिलित हैं, नि:संदेह आध्यात्मिक स्नेह रखता है, किन्तु वह जानता है कि शारीरिक आकर्षण निरर्थक है क्योंकि इससे वह तथा उसके तथाकथित पारिवारिकजन सकाम कर्मों की दु:खमय श्रृंखला में बँध जाते हैं। दृढ़-निश्चय शब्द सूचित करता है कि चाहे जैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, भक्त कृष्ण के हेतु अपने नियत कर्म करने के लिए दृढ़-संकल्प रहता है। इस तरह वह सोचता है, "मेरे पूर्व लज्जाजनक जीवन से मेरा हृदय अनेक भ्रामक आसक्तियों से दूषित है। उन्हें अपने आप रोकने की मुझमें कोई शक्ति नहीं है। मेरे हृदय के भीतर स्थित श्रीकृष्ण ही ऐसे अशुभ कल्मष को दूर कर सकते हैं। किन्तु भगवान् चाहे ऐसी आसक्ति को तुरन्त दूर कर दें या इसी तरह मुझे उनसे पीड़ित होते रहने दें, मैं उनकी भक्ति नहीं छोड़ूँगा। भगवान् मेरे रास्ते में लाखों अड़चनें क्यों न डालें और चाहे मैं अपने अपराधों के कारण नरक में भी क्यों न जाऊँ, मैं क्षण-भर के लिए भी भगवान् कृष्ण की सेवा करना बन्द नहीं करूँगा। मेरी रुचि मानसिक चिन्तन तथा सकाम कर्मों में नहीं है और यदि साक्षात् ब्रह्मा भी आकर मुझसे यह कहें कि इन कार्यों को करो, तो भी मैं कोई रुचि नहीं दिखलाऊँगा। यद्यपि मैं भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्त हूँ, किन्तु मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, कि इनसे कोई लाभ होने वाला नहीं है क्योंकि वे मुझे केवल कष्ट देती हैं और कृष्ण के प्रति मेरी भक्ति में विघ्न उत्पन्न करती हैं। इसलिए मैं इतनी सारी भौतिक वस्तुओं के प्रति अपनी मूर्खतापूर्ण आसक्ति के लिए सच्चे दिल से पश्चाताप करता हूँ



और मैं धैर्यपूर्वक भगवान् कृष्ण की कृपा की प्रतीक्षा में हूँ।"

प्रीत शब्द सूचित करता है कि भक्त अपने को भगवान् के पुत्र या प्रजा की तरह समझता है और भगवान् के साथ अपने संबंध में अत्यधिक आसक्त रहता है। इसलिये इन्द्रिय-भोग में यदा कदा लिप्त होने के लिए पश्चाताप करते हुए भी, वह भगवान् कृष्ण की सेवा करने के अपने उत्साह को कभी नहीं त्यागता। यदि कोई भक्त भक्ति में अत्यधिक खिन्न या हतोत्साहित हो जाता है, तो वह निर्विशेषवादी चेतना की ओर मुड़ सकता है या अपनी भगवद्भक्ति छोड़ सकता है। इसलिए यहाँ पर भगवान् परामर्श देते हैं कि कोई भले ही निष्ठापूर्वक पश्चाताप करे, किन्तु उसे स्थाई रूप से अवसन्न नहीं होना चाहिए। उसे यह समझ लेना चाहिए कि अपने विगत पापों के कारण वह मन तथा इन्द्रियों के उत्पातों से कभी-कभी प्रभावित हो सकता है, किन्तु इसलिये उसे विरक्ति का भक्त नहीं बन जाना चाहिए जैसा कि चिन्तनशील दार्शनिक करते हैं। यद्यपि अपनी भक्ति को शुद्ध करने के लिए मनुष्य विरक्ति चाह सकता है, किन्तु यदि वह भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता के लिए कर्म करने की अपेक्षा वैराग्य के प्रति अधिक चिन्ता करता है, तो वह प्रेमाभक्ति के पद को ठीक से समझ नहीं पा रहा है। भगवान् कृष्ण में श्रद्धा इतनी प्रबल होती है कि समय आने पर यह स्वयमेव विरक्ति तथा पूर्ण ज्ञान प्रदान करेगी। यदि भक्त कृष्ण को अपनी पूजा का केन्द्रबिन्दु बनाना त्याग कर ज्ञान तथा विरक्ति पर अधिक ध्यान देता है, तो वह भगवद्धाम वापस जाने के मार्ग पर की गई प्रगति से विपथ हो जायेगा। भगवान् के निष्ठावान् भक्त को पूरी तरह आश्वस्त होना चाहिए कि अपनी भक्ति के बल पर तथा भगवान् की कृपा के बल पर वह जीवन की हर शुभ वस्तु को प्राप्त कर सकेगा। उसे यह विश्वास करना चाहिए कि कृष्ण सर्व दयामय हैं और वे ही उसके जीवन के एकमात्र वास्तविक लक्ष्य हैं। ऐसी दृढ़ श्रद्धा के साथ इन्द्रिय-भोग त्यागने की सच्ची इच्छा से मनुष्य इस जगत के सारे अवरोधों को पार कर लेगा।

यहाँ पर जात श्रद्ध: मत्कथासु शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। भगवान् की कृपा तथा महिमा का श्रद्धापूर्वक श्रवण करने से मनुष्य क्रमश: समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जायेगा और हर क्षण इन्द्रियतृप्ति में घोर हताशा देखेगा। दृढ़ विश्वास तथा संकल्प के साथ भगवान् की महिमा का कीर्तन अत्यन्त शक्तिशाली आध्यात्मिक विधि है जिससे समस्त भौतिक संगति को त्यागा जा सकता है।

भगवद्भक्ति में वस्तुत: कुछ भी अशुभ नहीं होता। भक्त को यदा-कदा जिन कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है, वे उसके विगत कर्मों के कारण आती हैं।

दूसरी ओर, इन्द्रियतृप्ति का प्रयास सर्वथा अशुभ होता है। इस तरह इन्द्रियतृप्ति तथा भक्ति एक-दूसरे के विपरीत हैं। अतएव सभी परिस्थितियों में मनुष्य को भगवान् की कृपा पर सदैव विश्वास रखते हुए, निष्ठावान् सेवक बने रहना चाहिए। तभी वह निश्चित रूप से भगवद्धाम जा सकेगा।

## अनुवाद

जब बुद्धिमान व्यक्ति मेरे द्वारा बताई गई प्रेमाभक्ति के द्वारा निरन्तर मेरी पूजा करने में लग जाता है, तो उसका हृदय दृढ़तापूर्वक मुझ में स्थित हो जाता है। इस तरह उसके हृदय के भीतर की सारी भौतिक इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं।

## तात्पर्य

भौतिक इन्द्रियाँ मनोरथों को पूरा करने में लगी रहती हैं और एक के बाद एक अनेक प्रकार की इच्छाओं को प्रबल बनाती हैं। जो व्यक्ति पूरी श्रद्धा से भगवान की दिव्य महिमा के श्रवण और कीर्तन द्वारा भगवद्भक्ति में निरन्तर लगा रहता है, वह इन भौतिक इच्छाओं की परेशानी से छुटकारा पा जाता है। भगवान् की सेवा करने से उसको दृढ़ विश्वास हो जाता है कि श्रीकृष्ण ही असली भोक्ता हैं और अन्य सारे लोग भक्ति द्वारा भगवान् की प्रसन्नता को बाँट लेने के लिए हैं। भगवद्भक्त श्रीकृष्ण को अपने हृदय में एक सुन्दर सिंहासन पर बिठाकर निरन्तर सेवा करता रहता है। जिस तरह उदय होने वाला सूर्य धीरे-धीरे सारे अन्धकार को दूर कर देता है, उसी तरह हृदय के भीतर भगवान् की उपस्थिति से सारी भौतिक इच्छाएँ क्रमशः क्षीण होकर लुप्त हो जाती हैं। मयि हृदि स्थिते ("जब हृदय मुझमें स्थित हो जाता है") शब्दावली बताती है कि महान भक्त भगवान् कृष्ण को न केवल अपने हृदय के भीतर देखता है, अपितु सारे जीवों के हृदयों में देखता है। इस तरह श्रीकृष्ण की महिमा का श्रवण तथा कीर्तन करने वाले निष्ठावान् भक्त को हृदय में अवशिष्ट भौतिक इच्छाओं से निरुत्साहित नहीं होना चाहिए। उसे श्रद्धापूर्वक उस क्षण की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब भक्ति सहज ही हृदय में सारे कल्मष को धो देगी।

उपर्युक्त श्लोक उन भक्तों के सम्बन्ध में हैं जो अपने भक्तिमय संकल्प में दृढ़ तो हैं किन्तु फिर भी उत्पातों से प्रभावित होते रहते हैं। जो अधिक नौसिखिये और उत्तेजित हैं वे अपनी इच्छाओं को बलपूर्वक शमित करने का प्रयत्न कर सकते हैं। किन्तु यह विधि अन्ततः सफल होने वाली नहीं है, क्योंकि इच्छाओं पर तब तक विजय नहीं पाई जा सकती जब तक वे शुद्ध न की जाएँ। दमित इच्छा कहीं न कही उभर आती है, जिस तरह गलीचे में उमाड़ को दबाने से वह अन्य स्थान पर उभर आता



है। यौन इच्छा से पीड़ित ब्रह्मचारी अपनी दुःखद अवस्था को स्वयं भी शायद स्वीकार नहीं करना चाहे। किन्तु यदि उसे अतिभोजिता (अत्याहार), क्रोध या अन्य दूषणों से स्पष्टतः समस्या है तो उसे जान लेना चाहिये कि यह यौन इच्छा रूपी वही शत्रु है जो भिन्न रूप से प्रकट हो रहा है। ऐसे ब्रह्मचारी के लिए सबसे उत्तम यही होगा कि वह अपनी कठिनाई को स्वीकार करे और बुद्धिमानी से उसका सामना करे। दाँत पीसना एवं अपने को टिकाये रखने के लिये संघर्ष करना, अंततः पतन में समाप्त होता है।

ऐसे भक्त जो अत्यधिक उत्तेजित अनुभव करते हैं, जिनके मन सदैव कामवासनाओं से विचलित होते रहते हैं, अच्छा हो कि वे किसी वरिष्ठ भक्त से सहायता लें। श्रील रूप गोस्वामी ने 'उपदेशामृत' में संस्तुति की है कि भक्तगण श्रद्धापूर्वक अपने मन की बात अन्यों से प्रकट करते हैं। प्रबुद्ध भक्तों से आध्यत्मिक कठिनाइयों के बारे में विचार विमर्श करने से उनको दूर करने में सहायता मिलती है।

हमें जान लेना चाहिए कि इससे निकल पाने की कोई सरल विधि नहीं है। यौन इच्छा को रोकने के लिए आप कोई गोली नहीं खा सकते। न ही कोई तत्क्षणिक मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, कवच या ज्योतिषी का रत्न है जो भौतिक इच्छाओं को लुप्त कर दे। यद्यपि भोजन तथा स्त्री संग में संयम बरतने जैसे यांत्रिक उपायों से सहायता मिल सकेगी किन्तु वास्तविक जादुई सूत्र तो कृष्णभावनामृत अर्थात शुद्ध भक्ति है –

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः।
अघम धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारमिव भास्करः।।

"केवल वही दुर्लभ व्यक्ति जिसने श्रीकृष्ण की पूर्ण, शुद्ध भक्ति ग्रहण की है, पापों के घासफूस को उखाड़ फेंक सकता है जिससे वे पुनः पल्लवित न हों। वह ऐसा भक्ति सम्पन्न करके कर सकता है जिस तरह सूर्य अपनी किरणों से कोहरे को तुरन्त छिन्न-भिन्न कर देता है।"[१११]

श्रील प्रभुपादः "आप यौन जीवन के द्वारा प्रेरित क्यों होते हैं। इसे कृष्णभावनामृत से रोकें। यदि आप अपना सम्पूर्ण जीवन कृष्णभावनामृत में लगा दें तो आप किसी तरह के यौन जीवन से उत्तेजित नहीं होंगे। यदि कोई सचमुच ही कृष्णभावनामृत में प्रवृद्ध है तो वह उपहास करेगा, 'छिः! बकवास! यह क्या है?' यह है कृष्णभावनाभावित प्रगति। एकमात्र उपाय कृष्णभावनामृत है।"[११२]

इसके अतिरिक्त कोई दूसरा हल नहीं है। हमें अपने आपको गम्भीरतापूर्वक कृष्णभावनामृत में लगाना होगा और जब श्रीकृष्ण हमारी निष्ठा को देखेंगे तो वे हमें

आशीर्वाद देंगे और शनैः शनैः ये सारी गन्दी वस्तुएँ दूर हो जाएंगी। जब श्रील प्रभुपाद से पूछा गया कि कामवासना का क्या किया जाए तो उन्होंने उत्तर दिया, "आपको कृष्णभावनाभावित होना होगा अन्यथा इस समस्या का कोई हल नहीं है।"[११३] केवल भगवान् की कृपा से वासनामयी भौतिक इच्छाओं के आकर्षण से रक्षा हो सकती है। भगवान् उन भक्तों को सुरक्षा प्रदान करते हैं जो उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति में सदैव लगे रहते हैं।"[११४]

जैसा कि श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने कहा है 'काम कृष्णकर्मार्पणे' : कामवासनाओं को श्रीकृष्ण की सेवा में लगा देना चाहिए। यही व्यावहारिक है। जो भक्त श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने की इच्छा विकसित कर लेता है और लगातार उनकी सेवा में लीन रहता है वह स्वतः भौतिक कामवासना को जीत लेता है।

निरन्तर सेवा भाव बनाये रखने के लिए सतोगुण की स्थिरता आवश्यक है। जो लोग सतोगुणी हैं उनके लिए ही स्थिर ब्रह्मचर्य भी सम्भव है। "अति-ब्रह्मचर्य," कृत्रिम तपस्या या स्त्रीत्व-विरोध के रूप में प्रकट हो सकता है किन्तु ये रजोगुण के लक्षण हैं।

यह सामान्य भ्रान्त धारणा है कि कामवासना को स्त्रियों के प्रति घृणाभाव रखने से जीता जा सकता है, किन्तु परम्परागत ब्रह्मचारी प्रशिक्षण स्त्रियों का सम्मान करना सीखना है। जो व्यक्ति कामवासना में पला है, वह जब भी सुन्दर युवती को देखता है उसमें बुरी कामवासनाएँ उठती हैं। किन्तु जिस व्यक्ति को सही प्रकार से प्रशिक्षित किया गया हो उसमें उसी स्त्री को देख कर माता जैसा आदरभाव उत्पन्न होगा। जो व्यक्ति स्त्रियों को माताएँ मान कर उनके प्रति आदर अनुभव करता है वह न तो उनके पीछे कामुक होगा, न ही उनका शोषण करना चाहेगा।

मन की निम्नतम स्तर तक गिरने की प्रवृत्ति को, इसे उच्चतम स्तर पर लाकर जीता जा सकता है। यौन जीवन द्वारा अन्यों के शरीर का शोषण करने की बजाय ब्रह्मचारी को यह सोचना चाहिए कि किस प्रकार कृष्णभावनामृत का प्रचार करके सारे लोगों को सर्वाधिक लाभ पहुँचाया जा सके। ब्रह्मचारी स्त्री के शरीर को माया के आकर्षण के रूप में देखता है, किन्तु उसके भीतर कृष्ण के लिये चित्कार करती आत्मा का भी दर्शन करता है।

नरोत्तमदास वर्णन करते हैं कि यदि भगवान् नित्यानन्द की कृपा हो जाए तो सारी भौतिक इच्छाएँ महत्वहीन हो जाती हैं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भगवान् नित्यानन्द को सभी श्रेणी के लोगों को, यहाँ तक कि जो सर्वाधिक पतित हैं उन्हें



भी कृष्णभावनामृत का उपदेश देने का आदेश दिया था, जिसे उन्होंने अतीव विनयशीलता प्रदर्शित करते हुए अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में पूरा किया। इसलिये यदि हम प्रचार सेवा में कठिनाई उठाते हैं और नित्यानन्द की कृपा के लिए प्रार्थना करते हैं तो वे अवश्य ही हमारी सहायता करेंगे।

कुछ नये भक्तों को ऐसा लगता है कि कृष्णभावनामृत में आने के बाद उन्हें इसके पूर्व की तुलना में अधिक यौन चंचलता सताती है! दार्शनिक दृष्टि से हम यह समझ सकते हैं कि ऐसा नहीं है कि श्रीकृष्ण की शरण में आने के पूर्व भक्त अधिक शुद्ध था, किन्तु उसके हृदय के भीतर सुप्त भौतिक इच्छाओं का पुंज अब प्रकट हुआ है।[११५] जब बहुत समय के बाद कोई कमरा झाड़ा बुहारा जाता है तो अंधकारपूर्ण कोनों में छिपी सारी धूल बाहर आ जाती है। पहली सफाई में कमरा अधिक गन्दा हो गया लगता है। चूँकि इसके पूर्व कमरा धूल से भरा था और इसे साफ करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था इसलिए धूल अलक्षित थी। किन्तु अन्तिम रूप में कमरा इतना स्वच्छ हो जाता है जितना कि पहले कभी नहीं था - ऊपर से नहीं किन्तु पूरी तरह से। इसी तरह हरे कृष्ण कीर्तन से हृदय का दर्पण साफ होता है। जब भौतिक इच्छाएँ प्रकट हों तो कीर्तन करते रहें। यदि हृदय अधिक गन्दा है तो सफाई में कठिनाई हो सकती है और काफी समय लग सकता है। किन्तु अन्तिम परिणाम, हो सकता है बहुत प्रयत्न के बाद, यह होगा कि हृदय पूरी तरह स्वच्छ हो जाएगा।*

## पतन

यह अतीव निराशाजनक बात है कि उच्चादर्शों को अंगीकार करने के बाद भी भक्तगण कभी-कभी नियमों से विचलित हो जाते हैं - विशेषतया अवैध यौन के शिकार बनकर जब भक्तों का पतन होता है, विशेषतः वरिष्ठ भक्तों का, तो इससे अति विचलन होता है। निस्सन्देह यह प्रवृति बद्धजीवों में पाई जाती है। इन्द्रियतृप्ति में लिप्त होने से पूर्व कर्म का विचार आता है जो मन में पापपूर्ण इच्छा के बीज से उत्पन्न होता है। ये अवांछित इच्छाएँ अवचेतना से उत्पन्न होती हैं जिस तरह तालाब के तल से उठकर सतह पर बुलबुले आते हैं। दक्ष अध्यात्मवादी इन भद्दे विचारों की उपेक्षा करने तथा इन्हें समाप्त कर देने में निपुण होता है। यदि उनका संवर्धन किया जाता है तो वे बढ़कर अन्त में महत्वाकांक्षी योगी को निगल जाती हैं। भक्त बाह्य-रूप से इस प्रकार कर्म कर सकता है मानो सशक्त है किन्तु यदि भीतर ही भीतर इच्छाएँ घर

* इस सन्दर्भ में, चैतन्य चरितामृत मध्य-लीला का अध्याय १२, गुंडिचा मंदिर मार्जन अत्यंत शिक्षाप्रद है।

किये रहती हैं तो उन इच्छाओं को पूरा करने का अवसर आने पर अन्तः बाह्य बन जाता है।

शुद्ध जीवन बिताने हेतु गम्भीरता से प्रयत्न करने वाले भक्त के लिए भी आश्चर्य की बात नहीं होगी यदि उस पर स्थूल इच्छाओं का आक्रमण हो क्योंकि माया का काम ही है उसे विचलित करना। आधुनिक युग ब्रह्मचारियों के लिए विशेष कठिन है क्योंकि सड़क पर चलते हुए भी वे अनेक सुसज्जित स्त्रियों, सिनेमा के विज्ञापनों तथा पट्टों को देखेंगे जो कामवासनाओं को जगाने के लिए ही बनाये जाते हैं। आधुनिक शहर ऐसी हजारों स्त्रियों से भरे हैं जो एक दूसरे से अधिक उत्तेजक होने की दौड़ में हैं। परम्परानुसार, सार्वजनिक पथ पर चलते समय, ब्रह्मचारीगण, माया के प्रलोभनों को देखने से बचने के लिये, अपनी दृष्टि नीचे की ओर रखते थे। कदाचित् आज के शहरों में यह व्यवहारिक न हो, किन्तु फिर भी, ब्रह्मचारियों को माया के साम्राज्य में चलते समय अपनी आँखों को सावधानीपूर्वक वश में करना होगा। मन के चंचल हो उठने में आश्चर्य नहीं, किन्तु यदि ब्रह्मचारी सदैव ही अपने मन को वश में करने में असमर्थ पाता है तो अच्छा यही होगा कि इसके पूर्व कि वह अवैध यौन के चंगुल में फँसे, विवाह कर ले।

ऐसा भी हो सकता है कि, दुर्घटनावश यानि बिना किसी पूर्व विचार के सहसा पतन हो जाए। भक्त, आशा के विपरीत, अपने को ऐसी स्थिति में पा सकता है जिसमें माया स्वयं को उसके सामने उपस्थित करे और अपर्याप्त आध्यात्मिक बल के कारण वह च्युत हो जाये। अतः ब्रह्मचारी, जीवन के पग-पग में सतर्क रहता है जिससे खतरे से दूर रहे। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने भक्तों को चेतावनी दी है कि वे "दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के भँवर में न फँसें। यदि कोई ऐसी स्थिति में गिर जाता है तो समझिये कि उसका अन्त हो गया।"[११६] फिर भी हमें इस अत्यन्त दूषित जगत में प्रचार तो करना ही है। इसलिए हमें सदैव भक्तों की संगति में दृढ़ रहना चाहिए और ध्यानपूर्वक श्रवण तथा कीर्तन के द्वारा अपने को सबल बनाये रखना चाहिए। श्रील प्रभुपादः "यदि आप सदैव हरे कृष्ण का जप करें, मेरी पुस्तकें पढ़ें और इस दर्शन का निष्ठापूर्वक प्रचार करें, तो श्रीकृष्ण आपको सारी सुविधाएँ प्रदान करेंगे और आप भौतिक बन्धन में नहीं गिरेंगे।"[११७]

प्रचार के लिए हमें खतरे उठाने चाहिएँ, किन्तु इस हद तक नहीं कि हमारे मन अत्यधिक चंचल हो उठें। हमें कृष्णभावनामृत में अपनी शक्ति की सीमाओं को जानना चाहिए और इन्हीं सीमाओं में रहकर कार्य करना चाहिए। श्रील प्रभुपाद : "कृष्ण



के सन्देश को अन्यों में प्रचारित करके संसार का उद्धार करना ही हमारा वास्तविक मिशन है, किन्तु उच्चतर साक्षात्कार, उच्चतम साक्षात्कार अपनी रक्षा करना है।"[११८]

किन्तु, अन्जाने में हुआ क्षणिक पतन, भक्तिमय सेवा के लिये अयोग्यता नहीं है - श्रीकृष्ण क्षमा कर देते हैं। भक्त को चाहिए कि शीघ्र ही स्वयं को उठाकर आगे बढ़े। किन्तु हमें यह जानना चाहिए कि पतन, चाहे मानसिक ही क्यों न हो हमारी भक्ति के लिए हानिकारक है। यदि हम सुधार का कोई प्रयत्न नहीं करते, तो हम अपेक्षा कर सकते हैं कि श्रीकृष्ण अपनी कृपा वापस लेकर हमारी ऐसी अनिष्ठा का प्रतिदान करें। इस प्रकार भक्तिमय सेवा का अवसर चूक जायेगा।

## हस्तमैथुन

कृष्णभावनाभावित बनने के हमारे प्रयास में माया सदैव हमारे आड़े आती है। यहां तक कि निष्ठावान भक्त, जिसने पर्याप्त प्रगति की है, माया उसके ऊपर भी अपने निम्न से निम्न शस्त्र - यौन का प्रयोग करने में हिचक नहीं करती। कभी-कभी ऐसे उत्तरदायी भक्त भी जो अवैध यौन में लिप्त होने की मंशा नहीं रखते, दुर्बल हो जाते हैं। बिस्तर में लेट जाने पर वे, पागल मन के सामने हार मान लेते हैं और अपनी इच्छा के भी विरुद्ध[११९] मानसिक कल्पनाओं तथा हस्तमैथुन में संलग्न हो जाते हैं।

यह कठिन समस्या है, विशेषतया तब जब यह आदत बन जाए। यदि इस चिन्तन को प्रारम्भिक अवस्था में नहीं रोका जाता तो वह चिन्तन से अनुभूति और फिर यौन में लिप्त होने की इच्छा की ओर बढ़ेगा। ऐसा व्यक्ति अन्त में या तो विवाह कर लेता है अथवा निम्नतम, अवैध यौन में फँस कर स्त्रीगामी बन जाता है। ऐसी आदतवाला भक्त सदैव मन में दोषी होने का अनुभव करता रहता है और पागल हो सकता है।

कभी-कभी अपराधिक भावनाएँ भक्त को अपनी इस समस्या को उनसे छिपाने को बाध्य करती हैं जो उसकी भक्ति की उन्नति की देखभाल करने वाले हैं। किन्तु इस दोषपूर्ण प्रवृत्ति को सुधारने के लिए गुरु, स्थानीय अधिकारी या किसी अन्य विश्वस्त भक्त के गुह्य परामर्श की आवश्यकता पड़ती है।

इसे स्वीकार करने के लिए साहस चाहिए और यह निश्चितरूप से व्याकुल करने वाला है। किन्तु इस व्याधि से ग्रस्त भक्त यदि इस पर विजय पाना चाहता है तो उसे ऐसे वरिष्ठ भक्त का परामर्श लेना ही होगा जिस पर वह पूरी तरह विश्वास कर सके। विशेषकर गुरु शिष्य का सबसे बड़ा शुभ चिन्तक होता है। अतः किसी भी अनर्थ को

उनसे नहीं छिपाना चाहिये यदि शिष्य वास्तव में उन्हें हमेशा के लिये उखाड़ देना चाहता है।

किन्तु सर्वश्रेष्ठ सहायता पर भी इस दु:खदायी परिस्थिति के लिए सरल उत्तर नहीं है। सरल उत्तर है - श्रीकृष्ण की शरण में जाना। "तीन गुणों वाली मेरी इस दैवी शक्ति पर विजय पाना कठिन है। किन्तु जिसने मेरी शरण ग्रहण कर ली है वह आसानी से इसे पार कर सकता है।"[२००] हमें मदनमोहन की शरण ग्रहण करनी होगी। ("काम वासना पर विजय" में श्रील प्रभुपाद के व्याख्यान से लम्बे उद्धरण को देखें)

फिर भी धैर्य रखें "क्योंकि असम्भव शब्द मूर्खों के शब्दकोश में ही पाया जाता है।"[२०१] सद्प्रयास तथा अन्यों की सहायता से इस निम्नगामी व्यसन को दूर किया जा सकता है।

रात्रि के समय मन को कृष्णमय बनाने का एक व्यवहारिक संकेत है सोने के पूर्व भक्तों के साथ श्रीकृष्ण पुस्तक पढ़ना और श्रीकृष्ण की लीलाओं के विषय में सोचते हुए सोना। कुछ भक्त मन को शुद्ध करने वाली, श्रील प्रभुपाद की दिव्य वाणी के कैसेट सुन कर सोते हैं।

निम्नांकित पत्र में श्रील प्रभुपाद इसी समस्या पर विचार व्यक्त करते प्रतीत होते हैं - "तुम्हें कामेच्छा को लेकर कुछ कठिनाई हो रही है और तुमने मेरा मार्गदर्शन चाहा है कि भौतिक शरीर की इस समस्या से कैसे निपटा जाए। मेरे विचार से सबसे पहले तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि ऐसी समस्याएं अत्यधिक अस्वाभाविक नहीं हैं क्योंकि शरीर के भीतर बद्धात्मा के असफल होने की अनेक संभावनायें होती हैं। किन्तु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऐसी असफलता हमें अपने जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन को पूरा करने अर्थात पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होने से हतोत्साहित नहीं करेगी। अत: जो भी पतन हुआ है, तुम्हें उसके लिए पश्चाताप करना चाहिए, किन्तु यह न तो इतना गम्भीर है, न ही यह कोई स्थायी अयोग्यता है। किन्तु तुम्हें ऐसी कृत्रिम बातों से अपने को रोकने और श्रीकृष्ण के चरण कमलों में पूर्ण शरण लेने का प्रयत्न करना चाहिए। मेरा विचार है कि इसके नियन्त्रण के लिए एकमात्र निराकरण विवाह है। यह समझा जाता है कि हर एक में कुछ न कुछ बुरी आदतें होती हैं, किन्तु कृष्णभावनामृत में लिप्त रहने, उच्च स्वर में जप करने तथा अर्चाविग्रहों का अर्चन करने से निश्चित ही तुम्हारी रक्षा होगी। इसलिए श्रीकृष्ण की सेवा करने में सदैव गम्भीरतापूर्वक संलग्न रहो और श्रीकृष्ण से प्रार्थना करो कि तुम्हारी दुर्बलताओं से तुम्हारी रक्षा करें। किन्तु मेरे विचार से विवाह ही अविकल्पनीय हल है। यदि तुम



विवाहित हो तो तुम पूजा के सारे कार्यों को अधिक मन: शान्ति के साथ सम्पन्न कर सकते हो। इसलिए यह समाधान, साथ ही श्रीकृष्ण की दोहरे प्रयासों से सेवा करना तथा श्रीकृष्ण के प्रिय बनना, ये बातें तुम्हारी सहायक बनेंगी। ऐसा हर व्यक्ति, जो कामवासना से विचलित है उसके लिए मेरा स्पष्ट सुझाव है कि वह विवाहित जीवन का उत्तरदायित्व संभाले।"[२०२]

## समलैंगिकता

न तो विषम लैंगिकता न ही समलैंगिकता "स्वाभाविक" है। विषम लैंगिक इच्छा श्रीकृष्ण के प्रति हमारे आदि प्रेम का विकृत प्रतिबिम्ब है और समलैंगिकता एक और मोड़ है। श्रील प्रभुपाद: "पुरुष द्वारा अन्य पुरुष के प्रति समलैंगिक भूख आसुरी है और सामान्य जीवन में यह किसी भी विवेकशील व्यक्ति के लिए नहीं है।"[२०३]

कलियुग के प्रभाव के कारण समलैंगिकता अब एक सामान्य समस्या बन चुकी है। ज्यों-ज्यों कलियुग अग्रसर होगा, त्यों-त्यों हमें भूतपूर्व विकृत जीवनों वाले अधिकाधिक लोगों को स्थान देकर शुद्धिकरण के लिए अवसर प्रदान करना होगा। यदि समलैंगिक पुरुष निष्ठापूर्वक कृष्णभावनामृत अंगीकार करते हैं तो हमें उन्हें क्या परामर्श देना चाहिए?

वैदिक संस्कृति में विषम लैंगिक इच्छाओं को गृहस्थ आश्रम में स्थान दिया जा सकता है, किन्तु समलैंगिक इच्छाओं का कोई स्थान नहीं है। श्रील प्रभुपाद ने समलैंगिक इच्छाओं से युक्त एक शिष्य को विवाह, (स्त्री के साथ!) करने की संस्तुति की। यह परामर्श अधिक व्यवहारिक प्रतीत नहीं होता क्योंकि समलैंगिक का आकर्षण स्त्रियों के प्रति नहीं अपितु पुरुषों के प्रति होता है। किन्तु चाहे समलैंगिक हो या विषमलैंगिक, रोग है कामवासना। समलैंगिकता का अर्थ है कि कामवासना अब सामान्यरूप से अत्यधिक बढ़ गई है। विवाह का अर्थ है कामवासना को इस तरह नियन्त्रित करना कि वह वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत स्वीकार्य हो।

कुछ भी हो, कृष्णभावनामृत में आने वाले समलैंगिकों को वरिष्ठ भक्तों के विशेष मार्गदर्शन की आवश्यकता होगी। समलैगिंक को एक व्यक्ति समझ कर स्पष्ट विचार-विमर्श के बाद उचित सुविधा प्रदान करनी चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे अपने को विशेष रूप से पतित समझें, किन्तु उन्हें आश्वस्त रहना चाहिए कि कृष्णभावनामृत से उनकी

सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। अन्य भक्तों को ऐसे निष्ठावान जीवों के प्रति सहानुभूतिपूर्वक एवं समझ के साथ व्यवहार करना चाहिये।

किसी भी बद्धात्मा को भक्तिमय सेवा के लिये स्वीकार करने के समान, समलैंगिकों को आश्रम में आश्रय देना एक खतरा है। विषमलैंगिक के समान ही, आश्रम में रुकने की अनुमति देने के पूर्व हमें सबसे पहले यह देखना चाहिए कि समलैंगिक पर्याप्त आत्म-संयमित तो है, किन्तु हमें यह स्मरण रखना होगा कि ब्रह्मचारी आश्रम में जहाँ विषमलैंगिक ब्रह्मचारीगण उनके आकर्षण की वस्तुओं से सुरक्षित हैं, वहाँ समलैंगिक उनसे घिरे हुए हैं। हमें दयालु होना चाहिए किन्तु हम शुद्धता के अपने मानदंडों की बलि नहीं दे सकते।

## ब्रह्मचर्य का प्रचार

सामान्यतया अभक्तों को हम ब्रह्मचारी बनने का नहीं किन्तु उन्हें कृष्णभावनाभावित बनने का उपदेश देते हैं। यदि वे कृष्णभावनामृत अंगीकार कर लेते हैं तो अन्य बातें एक के बाद एक स्वयं आती जाएंगी। कृष्णभावनामृत के नवागन्तुक कभी-कभी अनेक प्रतिबन्धों, विशेषतया यौन पर प्रतिबन्धों, के कारण हतोत्साहित होते हैं। उन्हें कीर्तन करने, प्रसाद ग्रहण करने तथा भक्तों की संगति करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि वे यौन जीवन बिताना चाहते हैं तो गृहस्थाश्रम में वह वर्जित नहीं है। दूसरी ओर यदि कोई नवयुवक ब्रह्मचारी बना रहना चाहता है तो सभी प्रकार से उसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

प्रतिबद्ध भक्तों के बीच तो कम से कम ब्रह्मचर्य का प्रचार होते रहना चाहिए। श्रील प्रभुपाद : "सारा संसार इस यौन समस्या में संलग्न है। इन बातों पर नियमित विचार-विमर्श होना चाहिए। यह कीर्तन है। यदि हमारे आन्दोलन में इन बातों पर विचार-विमर्श नहीं किया जायेगा तो सब कुछ निर्बल हो जाएगा। एक के बाद एक कक्षाएँ लगनी चाहिएँ। सब कुछ पुस्तकों में लिखा हुआ है।"[२०४]

निस्सन्देह ऐसे विश्वव्यापी परिवेश में जहाँ प्रत्येक वस्तु यौन तथा स्त्रियों से सम्बन्धित हो, ब्रह्मचर्य को बढ़ावा देना दुष्कर है। आज सारा संसार स्थूल इन्द्रियतृप्ति में लीन है जिसकी अंतिम अभिव्यक्ति यौन में होती है। यही नहीं, तथाकथित वैज्ञानिक तथा डॉक्टर स्पष्ट कहते हैं कि वीर्य स्खलन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं है।

यदि लोग पूछें कि हम ब्रह्मचारी क्यों है तो हमें उन्हें बताना चाहिए कि आत्म-



साक्षात्कार के लिए यह पूर्व अपेक्षित है। मन को वश में रखना आवश्यक है किन्तु यदि यह यौन लिप्तता के कारण चंचल है तो यह सम्भव नहीं होगा। ब्रह्मचारी हुए बिना कोई अध्यात्मवादी नहीं बन सकता, चाहे वह योगी हो, ज्ञानी हो या भक्त।[२०५]

हिन्दू, बौद्ध तथा ईसाई परम्पराओं में अनन्त काल से पुरोहितों तथा साधुओं ने ब्रह्मचर्य स्वीकार किया है। जीसस, बुद्ध, शंकराचार्य तथा असंख्य अन्य लोगों ने ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया। ब्रह्मचर्य पुराना, जर्जर विचार नहीं अपितु गतिमान, प्राणवान सिद्धान्त है ऐसी उत्कृष्ट सफलता पाने का, जिसकी कल्पना भी सामान्य लोग नहीं कर सकते।

इतना ही नहीं, ब्रह्मचर्य का अभ्यास केवल धर्म के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा है। डॉ॰ आर. डब्लू. बर्नार्ड अपनी पुस्तक सांइस डिस्कवर्स द फिजियोलाजिकल वैल्यू आफ कान्टीनेन्स[२०६] में लिखते हैं:

"प्राचीन तथा वर्तमान दोनो ही कालों में महान बुद्धिजीवियों ने संयमी जीवन बिताया और आज तक ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जिसने मुक्तभाव से वीर्य बहाया और कुछ बन सका। अधिकांश विषयों में ऐसे लोग जिन्होंने कुछ प्राप्त किया, उन्हें आवश्यकतावश यौन लिप्तता से दूर रहने के लिए बाध्य होना पड़ा। उदाहरणार्थ सर्वेन्टीज जिसने कारागार में रहते हुए डान क्विकजोट लिखा या दांते जिसने निर्वासन में रहते हुए डिवाईन कामेडी लिखी। मिल्टन ने पैराडाईज लोस्ट तब लिखी जब वह अंधा था और यौन में लिप्त नहीं था। सर आईजेक न्यूटन अस्सी वर्ष की आयु तक प्रबुद्ध रहे, किन्तु उन्होंने जन्म से ही संयमी जीवन बिताया और इसी तरह लियोनार्डोदविंची तथा माइकेलनजेलो दोनों ही ने भी, जिन्होंने वृद्धावस्था तक सृजनात्मक बुद्धि बनाये रखी।"

अन्य प्रसिद्ध ब्रह्मचारियों में पाईथगोरस, प्लेटो, अरस्तू, स्पिनोज, कांट, बीथोवेन तथा हर्बर्ट स्पेंसर के नाम गिनाये जा सकते हैं। अन्य अनेक दार्शनिकों, कलाकारों तथा वैज्ञानिकों ने कामेच्छा को शमित रखा जिससे उनकी सृजनात्मकता बढ़े और वे अपनी ऊर्जा को बौद्धिक कार्यों में केन्द्रित कर सकें।

ये प्रमाण स्वरूप हैं फ्रॉइड के इस आक्षेप के विरुद्ध कि ब्रह्मचारी हताश हो जाते हैं अत: उन्हें यौन में लिप्त होने दिया जाए।* यह सच है कि मन को वश

* यह जानना रुचिकर है कि यद्यपि सिगमण्ड फ्रॉइड का वाद स्वैच्छिक यौन के बढ़ने का कारण बना, किन्तु अपने जीवन को अपने कार्य के लिये समर्पित करने के लिये उसने स्वयं एक समय पर यौन सम्बन्ध से दूर रहने की आवश्यकता को पाया।

में किये बिना शरीर पर प्रतिबन्ध लगाने से मनोविकार उत्पन्न हो सकता है। उच्चतर चेतना का विकास किये बिना, ब्रह्मचर्य यातना होगी। किन्तु अनेक अब्रह्मचारी भी हताशा, चिन्ता या शारीरिक व्याधि के शिकार होते हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यौन से उत्पन्न होती हैं। ब्रह्मचारी हो या अब्रह्मचारी, वास्तविक समस्या यौन है।

इतना ही नहीं, जो लोग कर्म के नियमों को जानते हैं, वे समझते हैं कि यौन लिप्तता से बद्धजीव का भौतिक बन्धन और भी कड़ा पड़ता जाता है। तो अन्तिम हल न तो यौन को स्वीकार करना है न ही उसका बहिष्कार, अपितु, इसके अतीत जाकर आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचना। पूर्णरूपेण कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पूर्णतया ब्रह्मचारी हो सकता है या उसके दर्जन भर बच्चे हो सकते हैं, किन्तु दोनों ही दशा में उसकी चेतना कभी कलुषित नहीं होती। किन्तु नौसिखिये आध्यात्मवादी के लिए यौन चंचलता परम सत्य के ध्यान में प्रमुख बाधा है।

इसलिए महत्वाकांक्षी भक्तगण यदि रह सकने में सक्षम हों, यदि वे अपने मनों को वश में कर सकें, तो उन्हें पूर्ण ब्रह्मचारी बने रहने का परामर्श दिया जाता है। अन्यथा भक्तगण विवाह कर सकते हैं और जीवन के कुछ भाग में प्रतिबंधित रूप से यौन में संलग्न हो सकते हैं।

किन्तु, यौन है खतरनाक। यहाँ तक कि विवाह के अंतर्गत भी, यदि गलत स्थान, गलत समय और गलत चेतना में या वांछित शुद्धिकरण की क्रियाओं को किये बिना, यौन में लिप्त हुआ जाता है, तो प्रकृति के नियम पुरुष तथा स्त्री दोनों को दण्ड देते हैं। फिर भी कामेच्छा इतनी प्रबल होती है, कि यह सब जानते हुए भी हम पापकर्म करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। "काम एष क्रोध एष" इसलिए सबसे अच्छा यही होगा कि स्त्री संसर्ग से दृढ़ता से बचते हुए ब्रह्मचारी रहा जाए जिससे शिकार न होना पड़े।

भक्तों को इन्द्रिय संयम की आवश्यकता के बारे में आश्वस्त होना चाहिए। हमें जानना चाहिए कि इन्द्रिय संयम हमारे वास्तविक हित में है। इन्द्रियतृप्ति से, विशेषतया यौन से, मुक्त हुए बिना कृष्णभावनामृत में पूर्णता प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं। ब्रह्मचर्य इन्द्रिय संयम तथा विरक्ति में वह आवश्यक प्रशिक्षण एवं अभ्यास है जिसके माध्यम से अन्ततः पूर्णता प्राप्त की जाती है। हमें ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने में दृढ़ संकल्प होना चाहिए अन्यथा हम किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकते।

प्रचारकार्य में एक दूसरी विधि है यौन, पशु हत्या, जुआ खेलने तथा नशा करने से समाज पर होने वाले हानिकारक प्रभावों को बताना है। अपराध, युद्ध, बाढ़ें, सूखे,



अकाल, कैंसर, एड्स तथा अन्य असंख्य समस्याएँ संसार को सता रही हैं। विद्वानगण पाण्डित्यपूर्ण भाष्य लिखकर इन समस्याओं पर विजय पाने के सुझाव देते हैं। किन्तु समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। लोग यह नहीं जानते कि वे अपने पापकर्मों की विषैली फसल काट रहे हैं। इन पापकर्मों में गौवध तथा अवैध यौन विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। किन्तु सौ वर्ष पूर्व भी इंद्रिय संयम को सद्गुण और अत्यधिक इन्द्रिय लिप्तता को दुर्गुण समझा जाता था।

डार्विन द्वारा प्रतिपादित "बन्दरों से मनुष्य का विकास" तथा फ्रॉइड द्वारा प्रतिपादित "स्खलन होने दें" के बाद ही पुराने प्राचीर ढहे हैं। मुक्त यौन का पल्लवन हुआ। तलाक, साथ-साथ रहना, अविवाहित माताएँ, जन्म नियंत्रण, गर्भपात तथा समलैंगिकता, जो पहले निषिद्ध थे और घृणित समझे जाते थे, वे एक-एक करके सामाजिक रूप से स्वीकार्य बन गये। आजकल आध्यात्मिक प्रगति के लिये तपस्या करना निकृष्ट माना जाता है। परिणामस्वरूप समाज विघटन के कगार पर है जो दिन प्रतिदिन निकृष्टतर होता जा रहा है। आजकल बाल-दुरुपयोग एवं सम्बन्धियों के बीच व्यभिचार भी प्रतिदिन की घटना बन गई है। भौतिकवादी लोग खेद व्यक्त करते हैं किन्तु सम्भव है कि कुछ काल बाद वे इसे वैध बना लेंगे और इस तरह के पापकर्मों को भी प्रोत्साहन देंगे।

यह बिलकुल सम्भव है क्योंकि पूरा समाज वर्ण संकरों, भाव कामवासना से उत्पन्न बच्चों से बना है। जॉन लेनन ने कहा है कि "अधिकांश बच्चे शनिवार की रात में एक बोतल व्हिस्की शराब पीने के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होते हैं।" ऐसी अवांछित सन्तानों की पतित चेतना अकल्पनीय है। तमोगुण में जन्म लेने के कारण वे इन्द्रिय संयम की आवश्यकता से नितान्त अनभिज्ञ होते हैं। वे सभी प्रकार के गर्हित कार्यों में, उन्हें सर्व सामान्य मानकर, लगातार लगे रहते हैं और क्षण भर के लिए भी यह कल्पना नहीं करते कि पापकर्मों के फल ही मानव समाज की सारी अव्यवस्था के कारण हैं।

## ब्रह्मचारी बने रहना

यदि कोई व्यक्ति कामेच्छा से अनुचित रूप से उत्तेजित हुए बिना ब्रह्मचारी बना रह सकता है, तो यह वापस भगवद्धाम जाने को लक्षित कर प्रयास करने की सर्वोत्तम स्थिति है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों के भारी बोझ, सामाजिक जीवन के विपथन तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए सदा उपलब्ध अवसर के बिना, एक ब्रह्मचारी सादगी से शान्तिपूर्वक

रह सकता है और अपना सारा जीवन तथा शक्ति श्रीकृष्ण को समझने में लगा सकता है। सम्बन्धियों, जो अधिकांशतः भौतिकवादी होते हैं, की अपेक्षाओं को पूरा करने की आवश्यकता के बिना, उसका एकमात्र उत्तरदायित्व गुरु, हरि और वैष्णवों को प्रसन्न करना होता है। नौकरी की आवश्यकता नहीं, घर बनाने की आवश्यकता नहीं, साड़ियों की खरीद के लिये जाने की आवश्यकता नहीं - सादा, सरल एवं अच्छा। इसलिए यदि कोई कठिनाई आती भी है या कभी-कभी मानसिक चंचलता होती है, तो भी यदि सम्भव हो, ब्रह्मचारी बने रहें। पारिवारिक जीवन से बचें। नारदमुनि तथा हर्यश्वस के उदाहरण को देखें।[२०७]

श्रील प्रभुपाद: "ब्रह्मचारी जीवन कृष्णभावनामृत का अभ्यास करने के लिये सरलतम आश्रम है। बहुत कम आवश्यकतायें हैं। कुछ प्रसाद। थोड़ी सेवा। रात्रि में सिर रखने के लिये और विश्राम के लिये ६ फुट की जगह जिससे तुम पुनः अगले दिन गुरु तथा कृष्ण की सेवा कर सको।"[२०८]

"गृहस्थ के अनेक उत्तरदायित्व होते हैं। ब्रह्मचारी के पास कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। उसका एकमात्र उत्तरदायित्व श्रीकृष्ण की सेवा करना है। मानव जीवन का वास्तविक कार्य आध्यात्मिक उन्नति का उत्तरदायित्व लेना है। इसलिए यदि कोई ब्रह्मचारी बना रहता है तो उसे इस उत्तरदायित्व के रास्ते में कोई अड़चन नहीं आती। किन्तु यदि वह गृहस्थ बन जाता है तो बाधा आती है। आप पूरे मनोयोग से आध्यात्मिक उत्तरदायित्व नहीं ले सकते।"[२०९]

अविवाहित बने रहने का चुनाव बहुत बड़ा निर्णय है। यह बृहद-व्रत (नित्य ब्रह्मचर्य का पालन करने की प्रतिज्ञा) कहलाता है क्योंकि इसका पालन कर पाना आसान नहीं है। महाराज भीष्मदेव को उनका नाम देवताओं द्वारा उनके इस प्रतिज्ञा को धारण करने के कारण दिया गया था,[२१०] क्योंकि निश्चय ही यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है। किन्तु जो लोग इसमें दृढ़ रहते हैं उनके लिए मोक्ष सुनिश्चित है।[२११]

ब्रह्मचर्य एक ऐसा मार्ग है जिसका अनुगमन कुछ ही करते हैं और विरले ही इसे समझते या इसकी प्रशंसा करते हैं। जो लोग आजीवन अविवाहित रहने का निश्चय करते हैं उन्हें उन लोगों के सन्देहों का सामना करना पड़ सकता है जो ऐसे निर्णय का पालन कर पाने को असम्भव मानते हैं। और यह विचार करते हुए कि बाह्य दृष्टि से दिग्गज प्रतीत होने वाले कई भक्त स्त्रियों के चंगुल में फँस चुके हैं, अन्य लोगों का ऐसे दृढ़ व्रत को पालन कर पाना अव्यवहारिक लग सकता है। किन्तु कुछ की विफलता सभी की विफलता का सूचक तो नहीं है। इतिहास बताता है कि यद्यपि



कुछ गृहत्यागी स्त्रियों के चंगुलों में फँस गये किन्तु अन्यों ने स्त्रियों के आकर्षणों का प्रतिकार किया है और सिद्धि प्राप्त की है। हमारे आचार्यों ने भक्तों को उच्चतम आदर्श के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने को कभी नहीं रोका, तथापि कुछ का रास्ते में फिसल जाना अवश्यम्भावी है। अधिकांश ब्रह्मचारी अन्ततोगत्वा विवाह कर लेते हैं - इसका अर्थ यह तो कदापि नहीं है कि जो लोग अविवाहित रहने का दृढ़ निश्चय कर लें वे सफल नहीं हो सकते।

गम्भीर समर्पित ब्रह्मचारीजन गृहस्थ जीवन के अनावश्यक बन्धन से बचने के लिए अपना जीवन गुरु तथा श्रीकृष्ण को समर्पित करते हैं। यदि गृहस्थ ऐसे ब्रह्मचारियों के बने रहने के बारे में सन्देह करते भी हों, तो भी उन्हें ब्रह्मचारियों को यह कहकर कि वे आशाहीन युद्ध लड़ रहे हैं, निन्दापूर्वक तथा व्यर्थ में उनके मनोबल एवं उत्साह को तोड़ने की आवश्यकता नहीं। इस तरह के हतोत्साहित करने वाले शब्द, ब्रह्मचारियों को खण्डित होकर गिरते देखने में विकृत आनन्द पाने वाले गृहस्थ द्वारा ईर्ष्यावश कहे जा सकते हैं।

कभी-कभी ब्रह्मचारियों पर दिखावा करने का आरोप लगाया जाता है कि वे भले ही स्त्रियों से व्यवहार करते कितने ही सावधान क्यों न रहें, वे कामेच्छा से मुक्त नहीं हैं, और इसलिए उन्हें विवाह कर लेना चाहिए। किन्तु यह तो समझा ही जाता है कि ब्रह्मचारी कामेच्छा से मुक्त नहीं होता। यदि वह मुक्त हुआ होता तो फिर वह इस भौतिक जगत में न होता। फिर भी, वह ऐसे मार्ग का अनुसरण कर रहा है जिससे कामेच्छा पर विजय पाई जा सकती है। यह कोई सरल मार्ग नहीं और पूर्ण बनने के लिए इसमें वर्षों का सावधानीपूर्वक अभ्यास भी लग सकता है। यह तथ्य कि ब्रह्मचारी में अब भी कामेच्छा है, न तो लांछन है, न ही इसका अर्थ यह होता है कि उसे विवाह कर लेना चाहिए। उसका माया के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रतिबद्ध होना प्रशंसनीय है, भले ही उसकी प्रगति मन्द हो। निस्सन्देह, जिनके मन निरन्तर यौन में लिप्त रहते हैं, वे ब्रह्मचारी हैं ही नहीं और उनके उस आश्रम में रहने का कोई अर्थ नहीं है।

श्रील प्रभुपाद : "मेरा स्पष्ट परामर्श है कि यदि कोई ब्रह्मचारी बना रह सकता है, तो यह बहुत अच्छी बात है, किन्तु कृत्रिम ब्रह्मचारियों की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवद्गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति ऊपर से आत्म-संयमित होने का दिखावा करता है, किन्तु भीतर से इन्द्रियतृप्ति के विषय में सोचता है, वह ढोंगी है। हमें बहुसंख्या में ऐसे ढोंगी नहीं, वरन् एक निष्ठावान आत्मा चाहिये।"[२१२]

इससे सम्बद्ध गीता का श्लोक (३.६) है "जो कर्मेन्द्रियों पर निग्रह करता है किन्तु उसका मन इन्द्रिय विषयों में रमता है वह स्वयं को छलता है और कपटी कहलाता है।"

जो लोग महिमामंडित ब्रह्मचारी आश्रम पर व्यर्थ ही कटाक्ष करते हैं वे इस श्लोक को उद्धृत करना पसन्द करते हैं। किन्तु, गीता में अगले श्लोक (३.७) में वास्तविक ब्रह्मचारियों का वर्णन हुआ है, "दूसरी ओर, यदि निष्ठावान व्यक्ति मन से सक्रिय इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास करता है और अनासक्त होकर कृष्णभावनामृत में कर्मयोग शुरु करता है, तो वह अत्यधिक श्रेष्ठ है।" यहाँ पर श्रीकृष्ण मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में करने की बात करते हैं। वे ब्रह्मचारी, जो कठिन तपस्या करके बलपूर्वक इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास करते हैं वे लगभग सदा विफल होते हैं और बुरी तरह से इन्द्रियतृप्ति में जा गिरते हैं। जो लोग इन्द्रिय लिप्तता से स्वाभाविक ही विरक्त हैं, जिनके लिये विलासहीन जीवन आनन्ददायक है, जिन्हें साधन तथा सेवा में लगाने के लिये बल का उपयोग नहीं करना पड़ता, वे ब्रह्मचारी बने रहने के लिये अधिक उपयुक्त हैं। जिसमें अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने की अपेक्षा गुरु तथा कृष्ण को संतुष्ट करने की इच्छा बलवती है वह ब्रह्मचारी बना रह सकता है।

ऐसे समबुद्धि ब्रह्मचारीगण शास्त्रों से सुनी बातों को जीवन में व्यवहृत करके मन द्वारा चंचल इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास करते हैं। जो लोग केवल सुन कर साक्षात्कार के पद तक पहुँच पाते हैं उनके आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने की सम्भावनायें अधिक हैं, किन्तु जो सुनकर साक्षात्कार नहीं करते उन्हें गृहस्थ आश्रम में स्वयं के अनुभव प्राप्त करने होंगे।

जो लोग आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने के इच्छुक हैं उन्हें विशेष रूप से शास्त्र के उन अंशों को पढ़ना और उन पर परस्पर विचार-विमर्श करना चाहिए जो यौन से मुक्त रहने के महत्व पर बल देते हैं। (इस पुस्तक का द्वितीय भाग विस्तृत संकलित पाठ्य सामग्री प्रस्तुत करने वाला है।) यौन में फँसने के शास्त्रीय विवरण स्पष्टतः वास्तविक तथा प्रबल हैं और जो विरक्त भौतिक आसक्तियों को तोड़ना चाहते हैं, वे इनका स्वागत करते हैं। जो ऐसे लगावों को बनाये रखना चाहते हैं वे ऐसे विवरणों को नापसन्द कर सकते हैं, किन्तु यह उनका कोरा दुर्भाग्य ही होगा। जो लोग ऐसे प्रबल कथनों से प्रोत्साहित होते हैं, वे ब्रह्मचारी बने रहने के उपयुक्त पात्र हैं। जो लोग यह सोचकर कि यौन आकर्षण पर विजय पाना अत्यन्त दुष्कर है, हतोत्साहित हो जाते हैं, वे ऐसा नहीं कर पायेंगे।



अन्यों के अभिमत होने पर भी आजीवन ब्रह्मचारी ऐसे विवरण सुनता तथा उन पर विचार-विमर्श करता चलता है जिससे आध्यात्मिक बुद्धि तीक्ष्ण बनी रहे। उसे पूरी तरह आश्वस्त होना चाहिए कि भौतिक जीवन एक ऐसी नाली से तनिक भी श्रेष्ठ नहीं जिसमें लोग मल त्याग करते हैं। वह ब्रह्मचर्य को यातना प्रदान करने वाला संघर्ष नहीं मानता, अपितु प्रतिदिन गृहस्थ जीवन से बचे रहने को कोटि-कोटि आशीर्वाद मानता है।

आजीवन ब्रह्मचारी को कृष्ण में श्रद्धा से उत्पन्न सकारात्मक, आशावादी दृष्टिकोण वाला होना चाहिए। आलोचनात्मक एवं निषेधात्मक मानसिकता वाला व्यक्ति ब्रह्मचारी नहीं बना रह सकता। आजीवन ब्रह्मचारी को आन्तरिक दृढ़ता तथा आत्मनिर्भरता भी उत्पन्न करनी होती है। वह परिस्थितियों के आदर्श न होने पर भी, यथा उन्नत वैष्णवों का सान्निध्य प्राप्त न होना, अपना संकल्प बनाये रखता है। उसका आन्तरिक संकल्प संन्यासी जैसा होता है यद्यपि औपचारिक रूप से वह संन्यासी नहीं हुआ है। वह संकल्प है इस भौतिक संसार में अपने इस जन्म को अंतिम जन्म सुनिश्चित करने के लिये जो भी आवश्यक हो वह करने का संकल्प।

जो ब्रह्मचारी बना रहना चाहता है उसे समझना होगा कि इस संसार में स्त्रियाँ सदैव रहेंगी, कि वह संसार से दूर नहीं भाग सकता, अतः उसे अपनी चेतना को श्रीकृष्ण में तत्पर रखने के लिए सन्तुलित करना होगा। ब्राह्मेचरति इति ब्रह्मचर्य। स्त्रियों से दूर रहने का अभ्यास कुछ सीमा तक किया जा सकता है, किन्तु मन को इन्द्रिय-भोग के विचारों में लिप्त न होने देना वास्तविक विलगाव होगा। जो व्यक्ति ब्रह्म सुख का भोग कर रहा हो उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न, "मैं विवाह करुं या नहीं" आएगा ही नहीं और यदि आता भी है तो वह इससे विचलित या इस पर चिंतन किये बिना तुरन्त ही इसे बहिष्कृत कर देता है।

ब्रह्मचारी बने रहने वाले को कामेच्छा को जीतने के महत प्रयास के साथ-साथ निष्कामभाव अनुशीलन करना चाहिए। अधिकांश गृहस्थों को पारिवारिक कार्यों को, कृष्णभावनामृत आन्दोलन की तुलना में अधिक महत्व देने के लिए बाध्य होना पड़ता है। ऐसी बाध्यताओं से स्वतन्त्रता मिलने का हेतु यह नहीं है कि ब्रह्मचारी आडम्बरपूर्ण तथा आलस्यपूर्ण जीवन बिताएं, वरन् इसका हेतु श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्ण के भक्तों की सेवा में निष्काम भाव का अनुशीलन करना है। ब्रह्मचारी बने रहने की यह महत्वपूर्ण कुंजी है। एक तथाकथित ब्रह्मचारी जो स्वार्थी हो तथा आसक्त हो उसे यथार्थवादी बन कर विवाह कर लेना चाहिए।

ब्रह्मचर्य का मात्र दिखावा न तो पर्याप्त है, न ही टिकाऊ। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्राह्मेचरति, न कि "व्यर्थ चरति"। केसरी कपड़ों में निरर्थक व्यक्ति ब्रह्मचारी नहीं होता। वास्तविक ब्रह्मचारी सेवा में रत रहता है, वह शरणागत एवं दृढ़ संकल्प होता है। "ब्रह्मचारी का अर्थ है दृढ़तापूर्वक पालन करने वाला।"[२१३] "कृष्णभावनामृत में पूरी तरह लीन रह कर ही ब्रह्मचारी जीवन को स्थिर रखा जा सकता है।"[२१४] "ब्रह्मचारी का अर्थ है आसक्त न हों। यदि आप कर सकें, तो ये सभी व्यर्थ बातों से बचें। यही ब्रह्मचारी है। अच्छा हो बचने का प्रयास करें। यदि नहीं, तो फिर (गृहस्थ जीवन में) प्रवेश करें।"[२१५] जो लोग पूरी तरह से इसमें लीन नहीं हैं वे गलत आश्रम में हैं। इससे अच्छा तो यही है कि वे घर जाऐं और संन्यास, जिसके लिये वे अयोग्य हैं, का दिखावा करने की अपेक्षा निष्कपट गृहस्थ बनें।

"संन्यास सस्ता नहीं है, अपितु आजीवन योजना के रूप में इसका पालन करना होता है। इस योजना के अन्तर्गत वीरता के बजाय विवेक उत्तम होगा। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने नवयुवक रघुनाथ दास गोस्वामी को आगाह किया था कि भवसागर अति विस्तृत है और आसानी से पार नहीं किया जा सकता। मात्र सागर में वेग वश कूद पड़ने और इधर-उधर हाथ मारने से कृष्णलोक नहीं पहुँचा जा सकता।" (सत्स्वरुप दास गोस्वामी)।

कुछ अविवाहित भक्त ब्रह्मचारी बने रहने के लिए स्पष्टत: अयोग्य होते हैं। जो लोग आध्यात्मिक जीवन के विषय में अधिक गम्भीर नहीं होते या इन्द्रियतृप्ति की ओर अत्यधिक उन्मुख होते हैं या जिनके मन इतने उत्तेजित होते हैं कि छोटी सी बात पर भी वे व्याकुल हो जाते हैं, वे निश्चय ही गलत आश्रम में हैं। वे निन्दनीय नहीं हैं क्योंकि हर व्यक्ति विकास की भिन्न अवस्था में होता है और हर एक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह तुरन्त पूर्णतया कृष्णभावना को अपनाएगा।

दूसरी ओर, वे जो ब्रह्मचारी बने रहने के बारे में गम्भीर हैं उन्हें ऐसा करने के लिए निश्चित ही प्रोत्साहित किया जाना चाहिए न कि सुगमता के निमित्त उनका विवाह करवा दिया जाये। हमारे आन्दोलन को ऐसे अनेक आदर्श भक्तों की आवश्यकता है जो अधिक इन्द्रियतृप्ति के लिए आवश्यकता का अनुभव किये बिना, कृष्णभावनामृत में दृढ़तापूर्वक टिके रहे हैं। आगे चल कर अत्यन्त आदर्श दीर्घकालीन ब्रह्मचारियों में से कुछ संन्यास ले सकते हैं।

संन्यास का अर्थ है यौन जीवन का सदा के लिए अन्त करना, गृहस्थ-जीवन से बच निकलना तथा अन्यों को गृहस्थ जीवन से बचाना। संन्यासी लोग सर्वत्र भ्रमण



करके तथा श्रीकृष्ण सन्देश का अप्रतिबन्धित प्रचार करके मानवता की सर्वाधिक सेवा करते हैं। संन्यास आश्रम अन्य तीनों आश्रमों, जो एक व्यक्ति को समस्त आश्रमों में शिरोमणी इस चतुर्थ आश्रम की ओर ले जाने के लिये होते हैं, के लिये आदर्श है। परम्परानुसार ब्रह्मचारीगण संन्यासियों के सहायकों के रूप में कार्य करते हैं, अत: संन्यासियों की सेवा करना एवं उनकी संगति करना, ब्रह्मचारी बने रहने में निश्चित ही अत्यंत सहायक होगा।

किन्तु ऐसा नहीं है कि कुछ वर्षों बाद ब्रह्मचारी को गृहस्थ-जीवन या संन्यास स्वीकार करना आवश्यक हो। ब्रह्मचारी आश्रम केवल बच्चों के लिए ही नहीं है। भारत में कई आध्यात्मिक संस्थाओं में वरिष्ठ ब्रह्मचारी होते हैं जो अपने आध्यात्मिक गुणों के कारण अतीव आदरणीय हैं। श्रील प्रभुपाद ने लिखा है कि ब्रह्मचारी तथा संन्यास जीवन सारत: एक हैं इसलिये हर ब्रह्मचारी को संन्यास ग्रहण करना आवश्यक नहीं है।[२१६]

वस्तुत: कई प्रकार से ब्रह्मचारी आश्रम आध्यात्मिक प्रगति तथा वैष्णव गुणों को विकसित करने के लिए सर्वोत्तम है। इससे विनयशीलता का अनिवार्य गुण विकसित होने में सुविधा होती है क्योंकि ब्रह्मचारी के पास न तो गृहस्थ जैसी सम्पत्ति होती है, न ही संन्यासी का सम्मान, जो दोनों ही मिथ्या अभिमान को बढ़ावा दे सकते हैं। आधुनिक समय में ब्रह्मचारी जीवन संन्यासियों के जीवन की अपेक्षा अधिक सादा एवं तपस्या जनक माना जाता है। ब्रह्मचारीगण संन्यासियों की अपेक्षा गृहस्थों के सामाजिक कार्यकलापों में कम उलझे रह सकते हैं। गृहस्थजन आशीर्वाद एवं परामर्श के लिये संन्यासियों के पास जाने को वरीयता देते हैं तथा संन्यासियों को घर बुलाकर उन्हें भोजन कराना पसंद करते हैं। ब्रह्मचारी आश्रम अपने में गुरु के प्रति शरणागति का पोषण करने के लिए भी सर्वोत्तम है।

इसलिए, संन्यास ग्रहण करने से भी अधिक महत्वपूर्ण है यौनजीवन में पुन: लिप्त न होने के संकल्प के साथ ब्रह्मचारी बने रहने का दृढ़ निर्णय। ऐसे संकल्प के साथ एक ब्रह्मचारी गहन श्रद्धा तथा समर्पण के साथ कृष्णभावनामृत का अभ्यास करता है। यदि कोई ब्रह्मचारी बने रहना चाहता है तो मन माना दृष्टिकोण कारगर नहीं होगा। इसके लिए दृढ़, स्थायी सेवा; नियमित, प्रबल साधना तथा श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों के गहन अध्ययन के द्वारा प्राप्त कृष्णभावनामृत की गहरी दृष्टि चाहिए।

## और यदि आप विवाह करने की सोच रहे हैं तो.....

यदि आप विवाह करने की सोच रहे हैं, तो रुक जाओ। ब्रह्मचारी बने रहना इससे कहीं श्रेष्ठ है। यदि विवाह करने के विषय में जो कुछ आपने सुना है, उससे आपको यह समझने में सहायता नहीं मिलती कि आपको यह नहीं करना चाहिये, तो इस अनुभाग को पढ़ें (यद्यपि इस पुस्तक में ऐसे अनुभाग का न होना अच्छा होता, किन्तु अनेक ब्रह्मचारी अन्ततः विवाह कर लेते हैं अतः उनके लिए कुछ मार्गदर्शन आवश्यक है।)

मनुष्य जन्म का वर पाकर तथा उससे भी कहीं दुर्लभ प्राप्त होने वाला भक्तों का सान्निध्य पाकर हम शाश्वतता की देहली पर खड़े हैं। क्या हम अपने जीवन को श्रीकृष्ण के प्रति पूर्णतया समर्पित करके उसे पूर्ण बना लेने में पर्याप्त बुद्धिमान होंगे अथवा भौतिक जीवन के कटु फलों का आस्वादन करने के लिए पुनः आएंगे?

हमें कृष्ण की चाह है। इसलिये हमने कृष्णभावनामृत अंगीकार किया है। किन्तु परम शुद्ध श्रीकृष्ण को पाने के लिए हमें शुद्ध बनना होगा। इसके लिये विधि है भक्तिमय सेवा की। किन्तु इसमें समय लगता है। कोई भी व्यक्ति रात भर में शुद्ध भक्त नहीं बनता। हमें श्रीकृष्ण की चाह है, किन्तु नाना प्रकार की भौतिक इच्छाएँ हमें पीछे धकेलती हैं। इन इच्छाओं में विशेष है प्रबल यौन इच्छा जो दुस्वप्न की तरह हमारा पीछा करती है।

इसलिये वैदिक सामाजिक प्रणाली का आयोजन क्रमिक शुद्धि के लिये किया गया है। चार आश्रमों में से तीन आश्रम विशेष रूप से त्याग के लिए हैं। और चूंकि हम बद्धजीवों में अनेकानेक भौतिक इच्छाएँ होती हैं, इसलिए गृहस्थ आश्रम में सीमित "भोग" की छूट, निरंतर शुभ कर्म करने के साथ दी जाती है।

युवावस्था में इन्द्रियाँ अत्यन्त प्रबल होती हैं। बद्धजीव आत्म-साक्षात्कार की खोज गम्भीरतापूर्वक कर सकता है किन्तु पूर्ण संन्यास (परित्याग) के लिए तैयार नहीं रहता। उसे, कृष्णभावनामृत के साथ सम्पर्क बनाये रखते हुये, जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में पारिवारिक जीवन को भोगने(?) की सुविधा प्रदान की जाती है। वृद्धावस्था निकट आने पर उसे पुनः तपस्या का जीवन ग्रहण करना चाहिए।

आजीवन ब्रह्मचर्य उन ब्रह्मचारियों के लिए है जो विवाह को विकल्प के रूप में नहीं मानते। यदि ब्रह्मचारी के मन में विवाह या यौन के विचार ठाठें मारने लगें, यदि वह दास के रूप में असंतुष्ट अनुभव करता है, या अपनी भावी सुरक्षा के विषय



में उत्सुक है, तो यह इसका सूचक है कि सम्भवतया वह गलत आश्रम में है और उसे विवाह करने के लिए स्वयं को तैयार करना चाहिए। उसे निष्कपटता के साथ इस प्रश्न का सामना करना चाहिए, "इस समय मैं विवाह को टाल सकता हूँ किन्तु क्या मैं आजीवन अकेला रह सकूंगा?"

कभी-कभी यह कहा जाता है कि गृहस्थ जीवन सुरक्षित मार्ग है[११७] तथा ब्रह्मचर्य सरल मार्ग है। ब्रह्मचारी जीवन स्वभावतः सरल है और इस अर्थ में आसान है। यद्यपि यह कुछ हद तक संयमपूर्ण है किन्तु यह अभ्यासकर्ताओं को व्यर्थ के भौतिक बंधनों तथा उनके साथ होने वाली समस्याओं से मुक्त करता है। इस प्रकार ब्रह्मचारी पर्याप्त सीमा तक समस्या मुक्त रहता है। वास्तविक ब्रह्मचारी को प्रायः कोई समस्या नहीं होती, विशेषतया गम्भीर मानसिक समस्याएँ नहीं होतीं। जिस ब्रह्मचारी को अनेक समस्याएं सताती हों, उसे समस्याएँ सुलझाने के निमित्त आश्रम, अर्थात गृहस्थ आश्रम में जाना चाहिये, जो स्वभावतः समस्याओं से ओत-प्रोत है। वस्तुतः, यद्यपि ब्रह्मचारी जीवन को तपस्यामय माना जाता है क्योंकि इसमें इन्द्रियतृप्ति के प्रति झुकाव शून्य के बराबर होता है, किन्तु गृहस्थ को थोड़ी बहुत इन्द्रियतृप्ति के लिए जो कठिनाइयाँ झेलनी होती हैं, वे ब्रह्मचारी द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार की जाने वाली कठिनाइयों से प्रायः अधिक होती हैं।

इस प्रकार गृहस्थ आश्रम को सुरक्षित किन्तु समस्यात्मक माना जाता है, जब कि ब्रह्मचारी आश्रम इसकी अपेक्षा समस्या मुक्त होता है किन्तु खतरनाक हो सकता है। किन्तु दूसरे प्रकार से ब्रह्मचारी अधिक सुरक्षित होता है क्योंकि उसे यौन में लिप्त होने का अवसर ही नहीं रहता जब कि गृहस्थ किसी भी समय ऐसा कर सकता है। गृहस्थ की सुरक्षा इस बात में है कि यदि वह यौन में लिप्त होने जा रहा है, तो ऐसा वह वैध रूप से अपनी पत्नी के साथ कर सकता है जब कि तथाकथित ब्रह्मचारी जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता वह केवल अवैध रूप से यौन में लिप्त हो सकता है। तो फिर ब्रह्मचारी जीवन तभी सुरक्षित है जब ब्रह्मचारी अपने को वास्तविक ब्रह्मचारी कहलाने के लिए पर्याप्त रूप से संयमित रखे। यदि वह कामेच्छाओं से अत्यधिक विचलित होता है तो वह ब्रह्मचारी आश्रम में असुरक्षित है, अतः उसे गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर सुरक्षित हो लेना चाहिए।

किन्तु यह सोचना मूर्खता होगी कि विवाह कर लेना यौन इच्छा का उपाय है। यह इतना आसान नहीं। प्रत्युत जो विवाह करके आत्मसंयमी नहीं होते हैं वे यौन

में लिप्त रह कर अपनी यौन आसक्ति को बढ़ाते हैं। इस प्रकार गृहस्थ जीवन की सुरक्षा खतरों से खाली नहीं है और मुश्किल से अर्जित की जाती है।

अत: ब्रह्मचर्य का सर्वोत्तम अभ्यास निरन्तर प्रयास करना एवं यौन से मुक्त रहना है। यह न तो आवश्यक है, न ही अनिवार्य कि हर कोई विवाह कर ले। किन्तु यदि कोई ब्रह्मचारी बने रहने के दृढ़ निश्चय पर अटल नहीं रह सकता और भौतिक इच्छाओं से इतना अधिक उत्तेजित हो उठता है कि वह सेवा में एकाग्र नहीं रह पाता, तब अच्छा होगा कि अनिश्चित समय तक मानसिक धरातल पर लड़खड़ाते रहने की अपेक्षा, विवाह कर ले और इस को समाप्त करे। एक अस्थिर ब्रह्मचारी संघर्ष करते हुए अधिक स्थिर बनने का प्रयास कर सकता है, किन्तु जब तक वह इसे शीघ्र अति शीघ्र नहीं करता उसके लिए विवाह को टाल पाना कठिन हो सकता है।

दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्मचारी के लिए विवाह कर लेना तर्कसंगत नहीं लगता। इस आन्दोलन का उद्देश्य भौतिक जगत के पाश से छूटना है अत: जानबूझ कर पुन: इसमे फँसना स्वयं को हराना जैसा प्रतित होता है।

निस्सन्देह, विवाह कर लेना कोई अपराध नहीं है। अधिकांश भक्तों के साथ यह सच्चाई है। किन्तु होने वाले भावी गृहस्थ को जानना चाहिए कि वह कहाँ जा रहा है। प्राय: विवाह बिना पर्याप्त गम्भीर विचार तथा तैयारी के मनमाने ढंग से कर लिया जाता है। अच्छा हो कि विवाहित जीवन के उत्तरदायित्व से अवगत हो लिया जाए और इसका स्पष्ट चित्रण सामने हो कि विवाह के पश्चात क्या होता है।

ब्रह्मचारियों को गृहस्थ होने के अर्थ की परिपक्व तथा उचित समझ होनी चाहिये। अन्यथा उन्हें गृहस्थ आश्रम के सम्बन्ध में औपन्यासिक भ्रान्ति हो सकती है। वास्तव में गृहस्थ आश्रम उतरदायी कृष्णभावनामृत परिवार को बनाये रखने के संकल्प पर आधारित है। जो ब्रह्मचारीगण विवाह करने की सोच रहे हों, उन्हें सावधानीपूर्वक, गृहस्थ के उत्तरदायित्वों पर श्रील प्रभुपाद के विस्तृत निर्देशों को पढ़ना चाहिये, जिससे इस संदर्भ में वे भ्रमित न हों।

जो ब्रह्मचारी इस भ्रम में हैं कि गृहस्थ जीवन उत्तम है उन्हें "भौतिक सुख का जंगल"[२१८] पढ़ने का परामर्श दिया जाता है। दुर्भाग्यवश माया की शक्ति ऐसी है कि गृहस्थ जीवन के ऐसे वीभत्स वर्णन पढ़ने के बाद भी विवाह के इच्छुक लोग या तो यह सोचते हैं कि ऐसे वर्णन अतिशयोक्ति हैं या उन पर लागू नहीं होंगे। सावधान हों लें – जब शास्त्र गृहस्थ जीवन के कष्टों का वर्णन करते हैं तो यह मात्र सैद्धान्तिक



नहीं होता, न ही केवल भौतिक विवाहों के सन्दर्भ में होता है। यौन का क्षणिक आनन्द, चाहे वैध हो या अवैध, सदैव दु:ख देने वाला होता है। जो ब्रह्मचारी इसके बारे में सन्देह करते हैं उन्हें किसी गम्भीर गृहस्थ से यह पूछना चाहिए कि वह गृहस्थ जीवन के बारे में क्या सोचता है। प्राय: सारे गृहस्थ यही परामर्श देंगे कि यदि सम्भव हो, तो ब्रह्मचारी रहा जाए।

गृहस्थ जीवन सदैव कष्टप्रद है, और आज के अस्थिर तथा जटिल संसार में विवाहित होना पहले की अपेक्षा और बड़ा खतरा है। संस्था के रूप में विवाह ने काफी कष्ट उठाये हैं और भक्तों के विवाह इसके अपवाद नहीं हैं।

गृहस्थ जीवन को विचलन रहित तथा आरामदेह बनाने के प्रयास में अधिकतर गृहस्थों का अधिकांश समय और ऊर्जा लग जाती है, तथापि शायद ही सफलता मिल पाती है। गृहस्थ जीवन का रंचमात्र आनन्द, जो अनेक कठिनाइयों के बाद मिलता है, अधिक बच्चे उत्पन्न होने पर बढता है। पत्नी तथा परिवार का भरण-पोषण आसान नहीं है। कलियुग में जो व्यक्ति केवल पत्नी तथा परिवार का भरण-पोषण कर सकता है, अत्यन्त सफल माना जाता है। यदि पत्नी माँग पसंद है या पति से मेल नहीं खाती तो कष्ट में अनवरत् अधिकाधिक वृद्धि होती जाती है।

इसलिए विवाह को, विचार किए बिना नहीं अपितु सावधानी, संयम और गंभीरता के साथ करना चाहिए। यदि पुरुष पूरा उत्तरदायित्व उठाने के लिए तैयार नहीं होता तो उसे विवाह नहीं करना चाहिए। मनमाने ढंग से लोगों का जीवन यह सोचकर बिगाड़ना, "अभी विवाह कर लेता हूँ और यदि पसन्द नहीं आया तो छोड़ दूंगा" – श्रीमद्भागवतम् में वर्णित कलियुग के लक्षणों में से एक है। निर्लिप्तता के बारे में शास्त्रों की संस्तुति अनुत्तरदायित्व की छूट नहीं है। निर्लिप्तता का अर्थ यह नहीं है कि पति या पत्नी एक दूसरे को मनमाने तरीके से छोड़ दें। यदि वे इतने निर्लिप्त थे तो फिर उन्होंने विवाह ही क्यों किया था?

इस्कॉन के भीतर अनेक भक्तों ने वैदिक मानदण्डों के अनुरूप निष्ठा की भावना के बिना विवाह किया है। परिणामस्वरुप सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) की दर कर्मियों से भी अधिक है, यद्यपि श्रील प्रभुपाद सम्बन्ध विच्छेद बिल्कुल नहीं चाहते थे। यह है कलियुगी विवाह। जैसे ही पति तथा पत्नी के बीच कुछ असहमती होती है (जैसा कि लगभग अवश्यंभावी है ही), या यदि दो में कोई एक संगी दूसरे को यौन दृष्टि से कम आकर्षक पाता है, तो विलगाव तथा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। यह हमारे

समाज की प्रमुख समस्या है और अनेक भक्तों के माया के शिकार होने का कारण बनी हुई है। जब तक इस्कॉन के भीतर यह सम्बन्ध विच्छेद प्रकरण बना रहेगा तब तक विश्व के समक्ष हम एक वैकल्पिक, श्रेष्ठतर जीवन के अपने दावों को प्रमाणित नहीं कर सकेंगे। भक्तों को उत्तरदायी बनना होगा।

पिता को अपने आश्रितों का भौतिक तथा आध्यात्मिक पालन-पोषण, कुछ समस्या आने पर मनमाने ढंग से उनका परित्याग किये बिना, करने के लिये उत्तरदायी होना चाहिये। किन्तु सामाजिक स्थिति इतनी अस्थिर है कि भौतिक दृष्टि से समृद्ध अनेक व्यक्ति रातों रात दरिद्र बन जाते हैं। न ही इसकी कोई प्रत्याभूति है कि किसी के बच्चे कृष्णभावनामृत के विषय में गम्भीर बनेंगे। इन्द्रियतृप्ति के आकर्षण ने पहले ही बहुत सारे इस्कॉन-बच्चों को हड़प लिया है।

पिता का उत्तरदायित्व है कि वह पत्नी, बच्चों तथा अन्य आश्रितों को ठीक से वस्त्र, घर, भोजन तथा शिक्षा दिलाए और उनके स्वास्थ्य की देखभाल करे, बच्चों के विवाह की, विशेषतया पुत्रियों के विवाह की, व्यवस्था करे और सबसे आवश्यक यह सुनिश्चित करे कि वे कृष्णभावनामृत में सही प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन प्राप्त करें।

ऐसे बहुत गृहस्थ भक्त हैं जिनके विवाह न्यूनाधिक सफल रहे हैं, अत: जो गृहस्थ बनना चाहते हैं उन्हें तथा नव-विवाहित दम्पतियों को परामर्श दिया जाता है कि उनसे परामर्श करें। किसी भी विवाह का निर्विघ्न चल पाना कठिन है, अत: यदि कोई सहानुभूतिजनक सहायता मिल सके तो अवश्य लें।

अब कब और किस तरह विवाह किया जाए? अच्छा हो कि बहुत देरी न की जाए। विवाह को, एक ब्रह्मचारी के नाश को रोकने का अंतिम प्रयास होना आवश्यक नहीं. - अच्छा हो विवाह सुनियोजित तथा गम्भीरतापूर्वक किया जाये। परम्परागत वैदिक प्रणाली में बीस वर्ष की आयु में, जब गुरुकुल में लगभग पंद्रह वर्ष बिता लिए गये हों, ब्रह्मचारी गुरु के पास बैठकर यह निश्चित करता है कि वह विवाह करे या नहीं। यदि गुरु उसे गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने का निर्देश दे भी दे तो वह विवाह करने के पूर्व, अनिश्चितता से उत्पन्न मानसिक उत्तेजना के बिना, कुछ और वर्ष गुरुकुल में बिता सकता है।

श्रील प्रभुपाद ने संस्तुति की है कि पुरुषों को २५ वर्ष की आयु तक, जब वे जीवन की तरुणावस्था में होते हैं और आसानी से स्वस्थ सन्तान पैदा करने में सक्षम



होते हैं, विवाह कर लेना चाहिए। स्मरण रखें कि जब आप पचास के होने वाले हों तो आपको संन्यास के बारे में पुन: सोचना होगा। तब तक आपकी पहली सन्तान को बड़ा हो जाना चाहिए। "मैं समझता हूँ कि तुम अभी विवाह नहीं करना चाहते किन्तु यदि विवाह करना है तो तुम्हें अभी विवाह कर लेना चाहिए। क्योंकि ३० वर्ष की आयु के बाद विवाह उतना आनन्दप्रद नहीं रह जाता।"[२१९]

जो ब्रह्मचारी तीस के दशक के मध्य में हो उसे परामर्श दिया जाता है कि वह आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उसके आध्यात्मिक जीवन के लिए अधेड़ दूल्हा बनने की अपेक्षा यह अच्छा होगा कि भले ही कष्ट से सही, वह तुच्छ सेवा करते हुए तथा अच्छा संग बनाये रखते हुए जीवन में इतने विलम्ब से बंधने से बच सके।

किन्तु विवाह में बंधने के पूर्व ब्रह्मचारी आश्रम में कम से कम पाँच वर्ष अच्छी तरह बिताना श्रेयस्कर है। गृहस्थ जीवन के लिए संन्यास तथा इन्द्रियसंयम का ठोस प्रशिक्षण दृढ़ आधारभूमि का कार्य करता है। जब ब्रह्मचारी को विश्वास हो जाए कि वह स्त्री के साथ रहते हुए भी ब्रह्मचारी बना रह सकता है, तब वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के योग्य होता है। "ब्रह्मचारी बने रहने" का अर्थ है कि वह संयमी बना रहेगा। वह कभी भी सोलह माला जप करना, चार नियमों का पालन करना, प्रात: जल्दी उठना और एकमात्र प्रसाद ग्रहण करना, इत्यादि का परित्याग नहीं करेगा। स्त्री, धन, इन्द्रियतृप्ति तथा सामाजिक जीवन से अविकल्पनीय अत्यधिक सम्पर्क उसके पतन के कारण नहीं बन सकेंगे।

अन्यथा, (हमने प्राय: देखा है) अपरिपक्व विवाहित व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं रख पाता और अंधकूप में गिर जाता है। उसकी श्रीकृष्ण चेतना आच्छादित हो जाती है, वह यह नहीं समझ पाता कि उसके लिए क्या लाभदायक है और क्या नहीं और उसका पारिवारिक जीवन लगभग कर्मियों जैसा बन जाता है।

इसलिए ब्रह्मचारी के रूप में कुछ समय बिताइये। पुस्तक वितरण के कष्टों तथा आह्लादों का अनुभव कीजिए, ध्यानपूर्वक श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें पढ़िये, यात्रा कीजिये, प्रचार कीजिए, कुछ दिव्य कौतुहल पाइये।

तत्पश्चात्, किस तरह योग्य साथी प्राप्त किया जाये यह विवेक से किया जाना चाहिये। समय लगाइए - शीघ्रता न करें। वैदिक प्रणाली के अंतर्गत कोई तृतीय पक्ष विवाह कराता है - लड़का और लड़की तो विवाह के दिन तक एक दूसरे को नहीं देखते। आधुनिकतावादी विरोध करेंगे, किन्तु आज भी भारत में सम्पन्न समायोजित

विवाहों की स्थिरता पश्चिम के प्रेम विवाहों की स्थिरता से कहीं अधिक है। जिन ब्रह्मचारियों के माता-पिता कृष्णभावनाभावित नहीं है, वे योग्य वधु ढूंढने में मदद के लिये वरिष्ठ गृहस्थ भक्तों से परामर्श कर सकते हैं। (संन्यासियों तथा गुरु को विवाह का परामर्शदाता न बनाइये, यह उनका काम नहीं हैं।) एक ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारीणियों का परीक्षण करने हेतु उनके इर्द-गिर्द नहीं मंडराना चाहिये और इस प्रकार शिथिलता को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिये। और विवाह के पूर्व, भावी पति को आमदनी तथा आवास का समुचित प्रबन्ध कर लेना चाहिये (विवाह एवं गृहस्थाश्रम में किस प्रकार प्रवेश करें, इस विषय पर श्रील प्रभुपाद ने श्रीमद्भागवतम् के तृतीय स्कंध के अध्याय २१-२४ में प्रचुर परामर्श दिया है।)

ब्रह्मचारियों को गृहस्थों या विवाह करने जा रहे ब्रह्मचारियों के प्रति किसी प्रकार की हीन भावना नहीं रखनी चाहिए। यह सदा सच नहीं होता कि चूंकि कोई ब्रह्मचारी गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाह रहा है इसलिए वह कम गम्भीर है। आजीवन ब्रह्मचारी, विवाह करने वाले ब्रह्मचारी का आदर करता है क्योंकि वह जानता है कि उनका उद्देश्य दिव्य पद तक पहुँचना है।

अन्तिम प्रसंग - मन को दृढ़ कर लें। मन को इधर उधर न भटकाएं, गिरगिट की तरह बार-बार केसरी तथा सफेद कपड़े न बदलें।

श्रील प्रभुपाद ने ऐसे भक्तों को अनेक पत्र लिखे जो यह विचार कर रहे थे कि विवाह करें या नहीं। तत्सम्बन्धी कुछ उद्धरण परिशिष्टों में दिये गये हैं जिससे उन जैसी स्थिति वाले भक्तगण उनके परामर्श का लाभ उठा सकें।

❀❀❀❀❀❀

# ब्रह्मचारी पाठ्यपुस्तक

## ब्रह्मचर्य, विवाह, यौन आकर्षण के दोष तथा ब्रह्मचारियों से सम्बन्धित अन्य विषयों पर श्रील प्रभुपाद तथा अन्यों के कथन

निम्नांकित उद्धरणमाला को श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों, पत्रों, रिकार्ड किये गये व्याख्यानों तथा वार्तालापों एवं अन्य विश्वस्त कथाओं से लिया गया है जो इस पुस्तक की विषय-वस्तु की पूरक हैं।

इन्द्रियों तथा मन को वश में करने से सम्बन्धित भगवद्गीता में अनेक श्लोक हैं तथा श्रीमद्भागवतम् में अनेक दीर्घ अनुभाग हैं जो ब्रह्मचारियों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। पुस्तक में स्थान-संकोच के कारण इन्हें मुद्रित नहीं किया गया। उनके सन्दर्भ नीचे दिये जा रहे हैं।

**गीता के श्लोक**

२.५८-७१
३.३४, ३६-४३
४.२६, ३४
५.२१-२३
६.४-७, १३,१४,१६-१९,२६, ३४-३६
८.२८
१८.३६-३८

**श्रीमद्भागवतम् के महत्वपूर्ण गद्यांश**

स्कंध-३, अध्याय ३०, ३१, विशेषतया अध्याय ३१ के श्लोक ३२-४२
स्कंध-४, अध्याय २५-२९ "पुरंजन की कथा"
स्कंध ५, अध्याय ५, श्लोक १-१३
स्कंध ५, अध्याय १३ तथा १४
स्कंध ७, अध्याय १२, श्लोक १-१६
स्कंध-९, अध्याय १९, श्लोक १-१७
स्कंध-११, अध्याय २६, श्लोक १-२४

श्रीचैतन्य चरितामृत अन्त्य लीला, अध्याय ३: "छोटा हरिदास को दण्ड" भी अत्यन्त उपदेशात्मक है।

ब्रह्मचर्य की महत्ता पर अनुशंसित अधिक अध्ययन ब्रेन गेन पूज्यपाद दानवीर गोस्वामी द्वारा विरचित, २००५: रूपानुग वैदिक महाविद्यालय, कैनसस नगर, संयुक्त राज्य अमरीका।

## श्रीमद्भागवतम् से उद्धरण

सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि यौन जीवन के सिद्धान्त के अनुसार गतिमान है। आधुनिक सभ्यता में यौन जीवन समस्त कार्यकलापों का केन्द्र बिन्दु है। (१.१.१)

कोई जीव तब तक भगवान् के धाम में प्रविष्ट नहीं हो सकता जब तक कि वह समस्त प्रकार के पापों से रहित न हो। भौतिक पाप हमारे द्वारा प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त करने की इच्छाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हैं। ऐसी इच्छाओं से पिंड छुड़ा पाना कठिन है। भगवद्धाम जाने के मार्ग में प्रगतिशील भक्तों के लिये कामिनी तथा कंचन मुख्य बाधाएँ हैं। भक्ति पथ के अनेक दिग्गज इन प्रलोभनों के शिकार होने से मुक्ति पथ से लौट आये, किन्तु जब भगवान् स्वयं किसी के सहायक बनते हैं तो भगवत्कृपा से सारी प्रक्रिया सुगम बन जाती है।

कामिनी तथा कंचन के संसर्ग में आकर अशान्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि प्रत्येक जीव अनादिकाल से ऐसी वस्तुओं से जुड़ा हुआ है और इस बाह्य प्रकृति से छुटकारा पाने में समय लगता है। किन्तु यदि कोई भगवान् के यश का श्रवण करता रहता है तो शनैः शनैः उसे अपनी स्थिति का साक्षात्कार हो जाता है। भगवत्कृपा से ऐसे भक्त को प्रचुर शक्ति प्राप्ति होती है जिससे वह विघ्नों से अपनी रक्षा कर सकता है और धीरे धीरे सारे उपद्रवकारी तत्व उसके मन से दूर हो जाते हैं। (१.२.१७)

वर्णाश्रम धर्म प्रणाली, जो वास्तविक मानव जीवन का प्रारम्भ है, के अंतर्गत बालकों को पांच वर्ष की आयु के बाद गुरु आश्रम में ब्रह्मचारी बनने के लिए भेज दिया जाता है जहाँ उन्हें ये सारी चीजें नियमित ढंग से पढ़ाई जाती हैं, चाहे वे सामान्य नागरिकों के पुत्र हों, या राजकुमार हों। यह प्रशिक्षण न केवल राज्य में अच्छे नागरिक उत्पन्न करने के लिए अनिवार्य था, अपितु बालक को भावी जीवन में आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए तैयार करने के लिये भी। वर्णाश्रम प्रणाली का पालन करने वालों के बालकों को इन्द्रियभोग का अनुत्तरदायित्वपूर्ण जीवन अज्ञात था। इन्द्रियों को जीते बिना, अनुशासित हुए बिना तथा पूर्णतया आज्ञाकारी हुए बिना कोई भी व्यक्ति गुरु के उपदेशों का पालन करने में सफल नहीं हो सकता और ऐसा किये बिना कोई भी व्यक्ति भगवद्धाम को प्राप्त नहीं कर सकता। (१.५.२४)

वर्णाश्रम धर्म का मुख्य उद्देश्य ज्ञान तथा अनासक्ति जागृत करना है। ब्रह्मचारी आश्रम भावी प्रार्थियों के लिए प्रशिक्षण स्थल है। इस आश्रम में यह शिक्षा दी जाती है कि यह संसार जीवों का वास्तविक घर (आवास) नहीं है। बद्ध-जीव, भवबंधन

के अन्तर्गत, पदार्थ के बन्दी हैं, अतएव आत्म-साक्षात्कार ही जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। वर्णाश्रम धर्म की सारी प्रणाली अनासक्ति की साधना है। जो व्यक्ति अनासक्ति की इस मूल भावना को आत्मसात् नहीं कर पाता, उसे उसी अनासक्ति की भावना से गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान की जाती है। अतएव जो व्यक्ति वैराग्य प्राप्त कर लेता है, वह तुरन्त ही चतुर्थ आश्रम अर्थात संन्यास ग्रहण कर सकता है। उसे केवल भिक्षा पर ही रहना होता है, धन संग्रह करने के लिये नहीं, अपितु चरम साक्षात्कार करने हेतु शरीर तथा आत्मा को बनाये रखने के लिये। गृहस्थ जीवन आसक्तों के लिए है। वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम उनके लिए हैं, जो भौतिक जीवन से विरक्त हो चुके हैं। ब्रह्मचारी आश्रम विशेषकर आसक्त तथा विरक्त दोनों ही के प्रशिक्षण के लिए होता है। (१.९.२६)

अतएव यह अनिवार्य है कि मनुष्य यौन लिप्तता से रहित होकर ब्रह्मचर्य द्वारा आत्मसंयम का अभ्यास करे। जो व्यक्ति जीवन सुधारना चाहता है, उसके लिए यौन-लिप्तता आत्मघात या उससे भी बढ़कर है। अतएव पारिवारिक जीवन से पृथक रहने का अर्थ है समस्त इन्द्रिय इच्छाओं पर, और विशेष रूप से यौन इच्छा पर, संयम रखना। (२.१.१६)

अनर्थ का सबसे स्थूल प्रकार, जो बद्ध जीव को जगत से बांधता है, कामवासना है और यह कामवासना क्रमशः विकसित होकर नर तथा नारी का मेल कराती है। नर -नारी का मिलाप हो जाने पर घर, बच्चे, मित्र, सम्बन्धी तथा सम्पत्ति के जुट जाने से कामवासना और अधिक बढ़ जाती है। जब इन सबकी प्राप्ति हो जाती है तो बद्ध जीव इन सारे बन्धनों से अभिभूत हो उठता है और मिथ्या अहंकार भाव या "मैं" और "मेरा" का भाव प्रधान बन जाता है। और कामवासना विविध राजनीतिक, सामाजिक, परोपकारी तथा अन्य अवांछित कार्यकलापों में विस्तीर्ण हो जाती है मानो समुद्री लहरों पर तैरता फेन जो कभी तो स्पष्ट दिखता है, किन्तु दूसरे ही क्षण उसी तरह लुप्त हो जाता है जिस प्रकार आकाश से बादल लुप्त हो जाते हैं। बद्धजीव ऐसी वस्तुओं से तथा कामवासना से उत्पन्न वस्तुओं से घिरा रहता है, जिसका सारांश लाभ, पूजन तथा ख्याति इन तीन शीर्षकों में दिया गया है। सारे बद्धजीव कामवासना के इन विविध रूपों के पीछे पागल बने रहते हैं और मनुष्य यह स्वयं देखे कि वह प्राथमिक रूप से कामवासना पर आधारित ऐसी भौतिक लालसाओं से किस सीमा तक मुक्त हुआ है। जिस प्रकार भोजन के हर कौर को खाने से मनुष्य की भूख बुझती जाती है, उसी तरह उसे पता चल सकेगा कि वह कामवासना से किस सीमा तक मुक्त हुआ है। भक्तियोग से यह कामवासना अपने विविध रूपों सहित घटती जाती है क्योंकि



भक्तियोग, भगवत्कृपा से स्वतः ज्ञान तथा वैराग्य में फलीभूत होता है, भले ही भक्त भौतिक दृष्टि से ठीक से शिक्षित न हो। ज्ञान का अर्थ है वस्तुओं को यथार्थ रूप में जानना और यदि चिंतन से यह ज्ञात हो जाए कि कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो सर्वथा अनावश्यक हैं, तो यह स्वाभाविक है कि जिसने ज्ञान अर्जित किया है, वह ऐसी अवांछित वस्तुओं को छोड़ देगा। जब बद्धजीव ज्ञान के अनुशीलन द्वारा यह देखता है कि भौतिक आवश्यकताएँ अवांछित हैं, तो वह उनसे अपना सम्बन्ध तोड़ लेता है। ज्ञान की यही अवस्था वैराग्य अर्थात् अवांछित वस्तुओं से विरक्ति कहलाती है। हम इससे पूर्व बता चुके हैं कि अध्यात्मवादी को स्वावलम्बी होना चाहिए और उसे अपने जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धनी अन्धे पुरुषों से भीख नहीं माँगनी चाहिए। शुकदेव गोस्वामी ने जीवन की ऐसी न्यूनत्तम आवश्यकताओं यथा खाने, सोने तथा रहने की समस्याओं के लिए विकल्प सुझाये हैं लेकिन उन्होंने कामवासना की तुष्टि के लिए कोई विकल्प नहीं सुझाया । जिसके अन्तःकरण में कामवासना अब भी आन्दोलित हो रही हो, उसे संन्यास आश्रम ग्रहण करने का प्रयास बिल्कुल नहीं करना चाहिए। जिसने यह अवस्था प्राप्त नहीं कर ली, उसके लिए संन्यास आश्रम ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार सही गुरु के मार्गदर्शन में क्रमिक भक्तियोग द्वारा तथा भागवतम् के सिद्धान्तों के अनुसरण द्वारा मनुष्य को संन्यास आश्रम ग्रहण करने से पूर्व कम से कम स्थूल कामवासना को तो वश में करना ही चाहिये।

इस तरह शुद्धि का अर्थ है क्रमशः कामवासना से मुक्त होना। (२.२.१२)

भगवान् के जननांग से जल, वीर्य, जननकर्ता, वर्षा तथा प्रजातियों का जन्म होता है। उनके जननांग उस आनन्द के कारण स्वरूप हैं, जिससे जनन के कष्ट का प्रतीकार होता है।

जननांग तथा जनन का सुख पारिवारिक भार के कष्टों को संतुलित करता रहता है। यदि भगवत्कृपा से जननांगो की सतह पर एक आनन्द प्रदायक वस्तु का आवरण न हो तो मनुष्य जनन क्रिया ही बंद कर दे। यह वस्तु इतना प्रखर आनन्द प्रदान करती है कि इससे पारिवारिक भार के कष्ट का पूर्वरूपेण प्रतिकार हो जाता है। पुरुष इस आनन्ददायक वस्तु से इतना मोहित हो जाता है कि वह एक ही सन्तान को जन्म देकर सन्तुष्ट नहीं होता, अपितु सन्तानों की संख्या बढ़ाता जाता है और इस आनन्ददायक वस्तु के कारण ही उनके पालन-पोषण में कठिनाई उठाने की झंझट अपने सिर पर लेता है। किन्तु यह आनन्ददायक वस्तु मिथ्या नहीं होती, क्योंकि यह भगवान् के दिव्य शरीर से निकलती है। दूसरे शब्दों में, आनन्ददायक वस्तु वास्तविकता है, लेकिन भौतिक संसर्ग के कारण इसने विद्रूपता ग्रहण कर ली है। भौतिक जगत में भौतिक संसर्ग के

कारण यौन जीवन अनेक दु:खों का कारण बनता है। अतएव भौतिक जगत् में यौन जीवन को आवश्यकता से अधिक प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए (२.६.८ मूल तथा तात्पर्य)

आध्यात्मिक जगत्, जो भगवान् की तीन चौथाई शक्ति से बना है, इस भौतिक जगत् से परे स्थित है और यह उन लोगों के निमित्त है, जिनका पुनर्जन्म नहीं होता। अन्य लोगों को जो गृहस्थ जीवन के प्रति आसक्त हैं और ब्रह्मचर्य व्रत का कठोरता से पालन नहीं करते उन्हें तीन भौतिक लोकों में ही रहना होगा। श्रीमद्भागवतम् के इस श्लोक में वर्णाश्रम धर्म या सनातन धर्म प्रणाली के उत्कर्ष का स्पष्ट उल्लेख है। मनुष्य को जो सबसे बड़ा लाभ प्रदान किया जा सकता है वह उसे यौन जीवन से विरक्त होने का प्रशिक्षण है क्योंकि यौन में लिप्त रहने के कारण ही बद्ध जीवन जन्म-जन्मान्तर चलता रहता है। जिस मानव सभ्यता में यौन जीवन पर कोई नियन्त्रण नहीं होता, वह चतुर्थ कोटि की सभ्यता है, क्योंकि ऐसे वातावरण में भौतिक शरीर में बन्दी आत्मा की मुक्ति सम्भव नहीं है। जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग भौतिक शरीर से जुड़े हुए हैं, उन्हें आत्मा से कुछ भी लेना-देना नहीं होता। किन्तु जब तक इन्द्रियभोग के लिए शारीरिक आसक्ति को प्रोत्साहन मिलता रहता है, तब तक भौतिक शरीर, जिसकी तुलना जीर्णता के नियमों के वशीभूत वस्त्रों से की गई है, के कारण आत्मा को जन्म और मृत्यु के चक्कर में फंसे रहने के लिये बाध्य होना पड़ता है।

मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लाभ प्रदान करने के लिए वर्णाश्रम प्रणाली अपने अनुयायी को ब्रह्मचारी-आश्रम से ही ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने का प्रशिक्षण देती है। ब्रह्मचारी-जीवन उन विद्यार्थियों के लिए है, जिन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का कठोरता से पालन करने की शिक्षा दी जाती है। जिन नवयुवकों ने यौन जीवन का आस्वादन नहीं किया, वे सरलतापूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकते हैं और एक बार ऐसे जीवन के सिद्धांत में स्थिर हो जाने पर वे सरलता से सर्वोच्च सिद्धावस्था, यानि भगवान् की तीन चौथाई शक्तिवाले लोक तक पहुँचना, को प्राप्त कर सकते हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि भगवान् की तीन चौथाई शक्ति वाले लोक में न तो मृत्यु है, न भय और वहां मनुष्य-जीवन आनन्द और ज्ञान से ओत-प्रोत रहता है। यदि पारिवारिक जीवन में आसक्त गृहस्थ, ब्रह्मचारी जीवन के नियमों में प्रशिक्षित होता है, तो वह सरलता से यौन जीवन का परित्याग कर सकता है। गृहस्थ को पचास वर्ष की आयु में गृहत्याग करने (पञ्चशोर्ध्वंवनंव्रजेत्) और जंगल में जीवन व्यतीत करने की संस्तुति की जाती है। इससे वह पारिवारिक स्नेह से विरक्त होकर, संन्यासी बन कर, पूरी तरह भगवान् की सेवा में रत हो सकता है। धार्मिक सिद्धांतों का कोई भी रूप जिसमें उसके अनुयायियों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना सिखाया जाता है, मानव मात्र के लिए



कल्याणकर है, क्योंकि जिन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण मिला है, केवल वे ही संसार के दु:खमय जीवन का अन्त कर सकते हैं । भगवान् बुद्ध द्वारा बताये गये निर्वाण के नियम भी दु:खमय जीवन का अन्त करने के लिए ही हैं। और यही विधि यहाँ पर अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में, आदर्श सिद्धि के स्पष्ट ज्ञान के साथ श्रीमद्भागवतम् में संस्तुत की जा रही है, यद्यपि मौलिक रूप से बौद्ध, शंकरवादी तथा वैष्णव विधियों में कोई अन्तर नहीं है। जीवन की सर्वोच्च सिद्धावस्था अर्थात् जन्म, मृत्यु, चिन्ता तथा भय से मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से, इनमें से कोई भी विधि अनुयायी को ब्रह्मचर्य व्रत को खण्डित करने की अनुमति नहीं देती।

वे गृहस्थ तथा व्यक्ति जिन्होंने जानबूझकर ब्रह्मचर्य व्रत भंग किया है, अभय लोक में प्रविष्ट नहीं हो सकते। पुण्यशाली गृहस्थ या भ्रष्ट योगियों या अध्यात्मवादियों को इसी भौतिक जगत् के भीतर उच्चतर लोकों में भेजा जा सकता है (जो भगवान् की चतुर्थांश शक्ति है) किन्तु वे अमर लोक में प्रविष्ट नहीं हो पायेंगे। अबृहद्व्रत वे हैं जो ब्रह्मचर्य व्रत का खण्डन करते हैं। वानप्रस्थ तथा संन्यासी इस ब्रह्मचर्य व्रत को खण्डित नहीं कर सकते, यदि वे इस विधि में सफलता चाहते हैं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी न तो पुर्नजन्म चाहते हैं (अप्रज), न ही वे लुक-छिप कर यौन जीवन में लिप्त होते हैं। अध्यात्मवादी के ऐसे पतन की भरपाई, उत्थान के दूसरे अवसर के लिये, विद्वान ब्राह्मणों या धनी व्यापारियों के परिवार में पुन: मनुष्य जन्म प्राप्त करके हो सकती है, किन्तु सबसे अच्छी बात यह होगी कि ज्यों ही मनुष्य योनि प्राप्त हो त्यों ही अमरता की चरम सिद्धि प्राप्त कर ली जाए, अन्यथा मनुष्य जीवन की सारी नीति (कौशल) असफल हो जाएगी। भगवान् चैतन्य अपने अनुयायियों को ब्रह्मचर्य पालन करने की शिक्षा देने में अत्यन्त कट्टर थे। अतएव जो योगी भौतिक दु:खों से परे के लोक में जाने का इच्छुक हो उसके लिये जानबूझ कर यौन जीवन में लिप्त होना आत्मघात से भी बुरा है और संन्यासी के लिए तो विशेष रूप से। संन्यास आश्रम में यौन जीवन धार्मिक जीवन का सर्वाधिक विकृत रूप है और ऐसे पथभ्रष्ट व्यक्ति की रक्षा तभी हो सकती है, जब भाग्यवश उसकी भेंट किसी शुद्ध भक्त से हो सके। (२.६.२० श्लोक अनुवाद तथा तात्पर्य)

उन्होंने (भगवान् ने) तपस्या की अपनी विधि प्रदर्शित करने के लिए धर्म की पत्नी तथा दक्ष की पुत्री मूर्ति के गर्भ से नर तथा नारायण युगल के रूप में जन्म लिया। कामदेव की सखियाँ, स्वर्ग की सुन्दरियाँ, उनका व्रत भंग करने आईं, किन्तु वे असफल रहीं, क्योंकि उन्हें भगवान् के शरीर से अपने समान अनेक सुन्दरियाँ उद्भूत होती दिखाई पड़ीं।

भगवान् सभी वस्तुओं के स्त्रोत होने के कारण समस्त प्रकार की तपस्याओं के भी मूल हैं। आत्म साक्षात्कार में सफलता प्राप्त करने के लिए मुनि तपस्या का महान व्रत लेते हैं। मानव जीवन ब्रह्मचर्य के व्रत के साथ ऐसी तपस्या के लिये ही मिला है। तपस्या के कठोर जीवन में स्त्रियों की संगति के लिए कोई स्थान नहीं है। और चूंकि मनुष्य जीवन तपस्या के निमित्त है, इसलिये सनातन धर्म अथवा वर्णाश्रम धर्म पद्धति पर आधारित वास्तविक मानव सभ्यता में जीवन के तीनों स्तरों पर स्त्री से दूर रहने का कठोर परामर्श दिया गया है। सांस्कृतिक विकास क्रम के अनुसार, जीवन के चार विभाग किये जा सकते हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। जीवन की प्रथम अवस्था में, जो प्रथम पच्चीस वर्षों तक रहती है, मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में ब्रह्मचारी के रूप में शिक्षा दी जानी चाहिए मात्र यह समझने के लिये कि स्त्री इस संसार की वास्तविक बन्धक शक्ति है। यदि कोई बद्धजीवन के बन्धन से मुक्ति चाहता है तो उसे स्त्री के आकर्षण से मुक्त होना होगा। जीवात्माओं के लिए स्त्री ही सम्मोहक तत्व है, और नर रूप, विशेषतया मनुष्य जीवन में आत्म-साक्षात्कार के लिए मिला है। सारा संसार स्त्री-आकर्षण के जादू से गतिशील है और मनुष्य स्त्री से जुड़ा नहीं कि वह भवबन्धन की कठोर ग्रन्थि से जकड़ा जाता है। विशेषकर स्त्री के साथ संयोग होने पर ही स्वामित्व की झूठी प्रतिष्ठा के नशे के अंतर्गत भौतिक जगत् पर अपना प्रभुत्व जताने की इच्छायें उत्पन्न होती हैं। घर, भूमि और सन्तान प्राप्त करने, समाज में महत्वपूर्ण बनने, जाति तथा जन्म भूमि के लिए प्रेम, धन के लिये लोलुपता - ये सब जो कि मायाजाल अथवा स्वप्न के तुल्य हैं, मनुष्य को घेर लेते हैं और मनुष्य की आत्म-साक्षात्कार की दिशा में प्रगति, जो जीवन का असली उद्देश्य है, अवरुद्ध हो जाती है। ब्रह्मचारी या पाँच वर्ष का बालक, जो विशेषकर उच्च जाति का अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य जाति का होता है, प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में पच्चीस वर्ष की अवस्था तक प्रशिक्षण प्राप्त करता है और कठोर अनुशासन में, जीविका के लिये विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त करने के साथ-साथ, जीवन के मूल्यों को समझता है। तत्पश्चात ब्रह्मचारी को घर जाने दिया जाता है। जहाँ वह गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके अनुकूल स्त्री के साथ विवाह करता है। किन्तु ऐसे अनेक ब्रह्मचारी हैं जो घर जाकर गृहस्थ नहीं बनते, वे स्त्रियों से किसी प्रकार का सम्पर्क न करके नैष्ठिक ब्रह्मचारी का जीवन बिताते हैं। वे, यह भलीभाँति जानते हुए कि स्त्री की संगति एक झंझट है जिससे आत्म-साक्षात्कार में बाधा पड़ती है, संयास आश्रम स्वीकार करते हैं। चूँकि एक आयु विशेष में कामेच्छा अत्यन्त प्रबल होती है इसलिए गुरु ब्रह्मचारी को विवाह करने की अनुमति दे सकता है; यह छूट केवल उसी ब्रह्मचारी को दी जाती है जो नैष्ठिक ब्रह्मचर्य



का पालन करने में असमर्थ है। ऐसा भेद करना प्रामाणिक गुरु के लिये सम्भव है। इस प्रकार का तथाकथित परिवार नियोजन आवश्यक है। जो गृहस्थ ब्रह्मचर्य की सम्यक शिक्षा के बाद शास्त्रानुमोदित रीति से स्त्री की संगति करता है, वह कुत्ते-बिल्लियों जैसा गृहस्थ नहीं होता। ऐसा गृहस्थ पचास वर्ष की आयु में स्त्री की संगति त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करके स्त्री के बिना रहने का अभ्यास करता है। जब अभ्यास पूरा हो जाता है तो वह वानप्रस्थी संन्यासी बनता है तथा किसी स्त्री से यहां तक कि अपनी पत्नी से भी संग नहीं करता। स्त्री से विमुक्त होने की पूरी योजना के अध्ययन से प्रतीत होता है कि स्त्री आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में बाधक है। (२.७.६ श्लोक अनुवाद तथा तात्पर्य)

जो लोग भौतिक बंधन से मुक्ति प्राप्त करने के विषय में गम्भीर हैं उन्हें पारिवारिक बन्धनों के मिथ्या सम्बन्धों में नहीं फँसना चाहिए। (३.१२.५.)

मानव एक सामाजिक पशु है और स्त्री वर्ग के साथ उसका अमर्यादित मिलन उसके पतन का कारण होता है। स्त्री और पुरुष की ऐसी सामाजिक स्वतन्त्रता, विशेषतया युवा वर्ग में, निश्चय ही आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग की महान बाधा है। भौतिक बन्धन का एक मात्र कारण यौन बंधन है और इसलिये स्त्री और पुरुष का अमर्यादित मिलन निश्चय ही बहुत बड़ी बाधा है। (३.१२.२८)

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचारियों को मनुष्य जीवन के महत्व के बारे में पूरी शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार आधारभूत शिक्षा की परिकल्पना विद्यार्थी को पारिवारिक भार से मुक्त होने में प्रोत्साहित करने के लिए की गई थी। केवल उन्हीं विद्यार्थियों को, जो जीवन में ऐसा व्रत ग्रहण करने के अयोग्य होते थे, उन्हें ही घर जाकर उपयुक्त पत्नी से विवाह करने की अनुमति दी जाती थी। अन्यथा, अपने सम्पूर्ण जीवन में यौन सम्बन्ध की पूर्ण निवृत्ति का आचरण करते हुए विद्यार्थी स्थायी रूप से पूर्ण ब्रह्मचारी रहता था। यह सब कुछ विद्यार्थी के प्रशिक्षण के गुण पर अवलम्बित था। (३.१२.४२)

जब कोई पुरुष या स्त्री कामेच्छा की लालसा से पीड़ित होता है तो इसे पापपूर्ण संदूषण समझना चाहिए। (३.१४.१६)

मोक्ष की तीन सिद्धियाँ हैं धर्म, अर्थ तथा काम। बद्धजीव के लिए पत्नी मोक्ष का साधन मानी जाती है क्योंकि वह पति के चरम मोक्ष के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करती है। बद्ध भौतिक सत्ता इन्द्रियतृप्ति पर आधारित है और यदि किसी को सुशील पत्नी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो तो वह सभी दृष्टियों से पत्नी के द्वारा सहायता प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति अपने बद्धजीवन में बाधाग्रस्त है तो वह भौतिक संदूषण

में अधिकाधिक उलझता जाता है। आज्ञाकारिणी पत्नी से यह आशा की जाती है कि वह भौतिक इच्छाओं की पूर्ति में अपने पति के साथ सहयोग करेगी जिससे वह सुखी हो सके और जीवन की पूर्णता के लिए आध्यात्मिक क्रिया-कलाप सम्पन्न कर सके। तथापि यदि पति आध्यात्मिक उत्कर्ष की दृष्टि से प्रगतिशील है तो पत्नी निश्चय ही उसके कार्यकलाप में भाग लेती है और इस प्रकार पति तथा पत्नी दोनों आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने में लाभान्वित होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि लड़कियाँ तथा लड़के दोनों आध्यात्मिक कर्तव्यों के निर्वाह के लिए प्रशिक्षित किये जाएं जिससे सहयोग के समय दोनों लाभान्वित हो सकें। बालक का प्रशिक्षण ब्रह्मचर्य है और लड़की का प्रशिक्षण कौमार्य या सतीत्व है। आज्ञाकारी पत्नी और आध्यात्मिक रूप से प्रशिक्षित ब्रह्मचारी का संयोग मानव लक्ष्य के उत्कर्ष साधन की दृष्टि से बहुत शुभ है। (३.१४.१७)

मानव समाज के चार आश्रमों – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास में से गृहस्थ सुरक्षित स्थिति में होता है। शारीरिक इन्द्रियाँ शरीर रूपी दुर्ग पर आक्रमण करने वाले लुटेरे मानी जाती हैं। पत्नी दुर्ग की अध्यक्षा मानी जाती है इसलिए जब इन्द्रियों द्वारा शरीर पर आक्रमण होता है तो पत्नी ही शरीर को ध्वस्त होने से बचाती है। कामेच्छा प्रत्येक के लिए अपरिहार्य है। किन्तु जिसने एक स्थायी पत्नी का वरण किया है वह इन्द्रिय रूपी शत्रुओं से सुरक्षित रहता है। वह मनुष्य जिसकी पत्नी सदाचारिणी होती है वह कुँवारी कन्याओं को दूषित करके समाज में उत्पात नहीं मचाता।

स्थायी पत्नी के बिना मनुष्य निपट व्यभिचारी बन जाता है और समाज के लिए अभिशाप होता है यदि वह प्रशिक्षित ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या संन्यासी न हो। ब्रह्मचारी जब तक विशेषज्ञ आध्यात्मिक गुरु द्वारा ब्रह्मचारी का कठोर और व्यवस्थित प्रशिक्षण नहीं हो लेता और जब तक विद्यार्थी आज्ञाकारी नहीं होता तब तक तथाकथित ब्रह्मचारी के लिए कामदेव के आक्रमण का शिकार बन जाना अनिवार्य है। विश्वामित्र जैसे महान योगियों के जीवन में भी पतन के अनेकानेक उदाहरण हैं। तथापि, गृहस्थ अपनी सती साध्वी पत्नी के कारण सुरक्षित रहता है। यौन जीवन भौतिक बन्धन का कारण है, और इसलिए तीन आश्रमों में यह निषिद्ध है। केवल गृहस्थ आश्रम में ही यौन निहित है। गृहस्थ पर प्रथम श्रेणी के ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी निर्माण करने का उत्तर-दायित्व है। (३.१४.२० )

यौन भौतिक जीवन की पृष्ठभूमि है। यहां पर भी यह दुहराया गया है कि दानव यौन जीवन से अत्यन्त मुग्ध होते हैं। जो व्यक्ति कामेच्छा से जितना ही मुक्त होता



है वह उतना ही देवताओं के स्तर तक ऊपर उठाया जाता है। और जो यौन का आनन्द लेने के लिए जितना उन्मुख होता है उतना ही वह आसुरी जीवन के स्तर तक नीचे जा गिरता है। (३.२०.२३)

आत्म-साक्षात्कार तथा योग शक्ति की सिद्धि के लिए ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन) की आवश्यकता होती है। (३.२१.४)

यहां पर ब्रह्मचारी योगी के कुछ वृत्तान्त दिये जा रहे हैं। आध्यात्मिक उन्नति चाहने वाले ब्रह्मचारी का प्रात: काल में पहला कर्तव्य है हुत-हुताशन, भगवान् को यज्ञ आहुति अर्पित करे। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले प्रात:काल सात या नौ बजे तक सोते नहीं रह सकते। उन्हें प्रात: जल्दी, सूर्योदय से कम से कम डेढ घंटे पूर्व, जाग जाना चाहिए और आहुति देनी चाहिए या इस युग में हरे कृष्ण का जप करना चाहिए। जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने प्रसंगवश कहा है कलो नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा: इस युग में भगवान् के पवित्र नाम का जप करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, नहीं है, नहीं है। ब्रह्मचारी को प्रात:काल जल्दी उठना चाहिए और फिर भगवान् के नाम का जप करना चाहिए। साधु के स्वरूप से ऐसा प्रतीत होता था कि उसने महान तपस्या की होगी; ब्रह्मचर्य पालन करने वाले का यही चिन्ह है। यदि कोई अन्य प्रकार से रहता है तो उसके मुख तथा शरीर से कामवासना प्रकट होगी। विद्योतमानम् शब्द सूचित करता है कि ब्रह्मचारी का रूप उसके शरीर से टपकता था। योग में महान तपस्या करने का यही प्रमाणपत्र है।

जो व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम की दिव्य ध्वनि अर्थात हरे कृष्ण सुनता है उसका स्वास्थ्य भी सुधर जाता है। हमने देखा है कि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ से सम्बन्धित अनेक ब्रह्मचारियों तथा गृहस्थों का स्वास्थ्य सुधरा है और उनके मुख मण्डल में कान्ति आ गई है। आध्यात्मिक प्रगति में लगे ब्रह्मचारी के लिए अत्यावश्यक है कि वह स्वस्थ तथा तेजवान लगे। (३.२१.४७)

ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त है कौमार्य। ब्रह्मचारी दो तरह के होते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी – जिसने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा है तथा उपकुर्वाण ब्रह्मचारी – जो एक अवस्था तक ब्रह्मचर्य का व्रत लेता है और तब अपने गुरु की अनुमति लेकर विवाहित जीवन में प्रवेश करता है। ब्रह्मचर्य विद्यार्थी जीवन है, आध्यात्मिक आश्रमों में जीवन का प्रारम्भ, एवं ब्रह्मचर्य का सिद्धांत है कौमार्य। केवल गृहस्थ ही इन्द्रियतृप्ति या यौन जीवन में प्रवृत्त हो सकता है, ब्रह्मचारी नहीं। (३.२२.१४)

ब्रह्मचारी अपने यौन जीवन को वश में करते हुए ब्रह्मचर्य का अभ्यास करता है। ऐसा नहीं हो सकता कि कोई अनियन्त्रित यौन जीवन बिताए और योग का अभ्यास भी करे। यह तो धूर्तता है। तथाकथित योगी यह विज्ञापित करते हैं कि मनुष्य इच्छानुसार संभोग करता हुआ योगी बन सकता है। किन्तु यह पूर्णतया अप्रामाणिक है। यह स्पष्टत: बताया गया है कि मनुष्य को ब्रह्मचारी रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य का इतना ही अर्थ है कि मनुष्य केवल ब्रह्म के साहचर्य में जीवन बिताये - अर्थात पूर्ण कृष्णभावनामृत में रहे। जो लोग यौन जीवन के प्रति अत्यधिक अनुरक्त हैं वे उन नियमों का पालन नहीं कर सकते जिनसे वे कृष्णभावनामृत को प्राप्त हों। यौन जीवन केवल विवाहितों तक ही सीमित होना चाहिए। जिस व्यक्ति के विवाहित जीवन में यौन सीमित होता है वह भी ब्रह्मचारी कहलाता है। (३.२८.४)

इस श्लोक में कहा गया है कि भगवान् की सुन्दर भौहें इतनी मनमोहक हैं कि वे व्यक्ति को इन्द्रिय आकर्षण भुलवा देती हैं। बद्धात्माएँ भौतिक जगत् में इसलिए कस कर बँधी हुई हैं क्योंकि वे इन्द्रियतृप्ति के आकर्षण से, विशेषतया यौन जीवन से मोहित हुए रहती हैं। कामदेव मकरध्वज कहलाता है। भगवान् की सुन्दर भौहें मुनियों तथा भक्तों को भौतिक कामवासना तथा यौन आकर्षण से मोहित होने से बचाती हैं। महान आचार्य, यामुनाचार्य ने कहा है कि जबसे उन्होंने भगवान् की मोहक लीलाओं को देखा है तब से यौन जीवन के सारे आकर्षण उनके लिए गर्हित हो गये हैं और यौन भोग के विचार मात्र से वे थू थू करने लगते हैं तथा अपना मुँह फेर लेते हैं। इस तरह यदि कोई व्यक्ति यौन आकर्षण से दूर रहना चाहता है तो उसे भगवान् की मृदु मुस्कान तथा मोहक भौहों का दर्शन करना चाहिए। (३.२८.३२)

जिन पुरुषों तथा स्त्रियों के जीवन अवैध यौन में लिप्त रहने पर आधारित थे वे तामिस्र, अन्ध तामिस्र तथा रौरव नामक नरकों में नाना प्रकार के कष्ट पाते हैं।

भौतिकवादी जीवन यौन जीवन पर आधारित है। उन सारे भौतिकवादी लोगों का जीवन, जो जीवन संघर्ष में कठिन यातना सह रहे हैं, यौन पर आधारित है। इसलिये वैदिक सभ्यता में, यौन जीवन की केवल सीमित छूट है, विवाहित दम्पतियों के लिए, वह भी केवल सन्तान उत्पन्न करने के लिए। किन्तु जब इन्द्रियतृप्ति हेतु अवैध रूप से यौन जीवन में लिप्त हुआ जाता है तो पुरुष तथा स्त्री दोनों ही इस जगत् में या मृत्यु के बाद कठोर दण्ड भुगतते हैं। इस जगत् में भी उन्हें आतशक (उपदंश) तथा प्रमेह (सूजाक) जैसे भीषण रोगों के द्वारा दण्डित किया जाता है और अगले जीवन में भी उन्हें विभिन्न प्रकार के नरकों में डाल कर कष्ट दिया जाता है, जैसा कि



श्रीमद्भागवतम् के इस श्लोक में देखा जा सकता है। भगवद्गीता के प्रथम अध्याय में अवैध यौन जीवन की अत्यधिक निन्दा की गई है और यह कहा गया है कि जो व्यक्ति अवैध यौन जीवन से सन्तानें उत्पन्न करता है उसे नरक भेजा जाता है। भागवतम् में यहां पर पुष्टि हुई है कि ऐसे अपराधी तामिस्र, अन्ध तामिस्र तथा रौरव नरकों में डाल दिये जाते हैं। (३.३०.२८ मूल तथा तात्पर्य)

इसलिए यदि जीव ऐसे विषयी लोगों द्वारा प्रभावित होकर जो यौन भोग तथा जिह्वा की तृप्ति में लगे रहते हैं, पुन: गलत रास्ता अपना लेता है, तो उसे पुन: पहले की तरह नरक जाना पड़ता है। (३.३१.३२ मूल)

वह सच्चाई, स्वच्छता, दया, गम्भीरता, आध्यात्मिक बुद्धि, लज्जा, तपस्या, यश, क्षमा, मन के संयम, इन्द्रियों के संयम, भाग्य तथा ऐसे सारे अवसरों से विहीन हो जाता है। (३.३१.३३ मूल)

मनुष्य को चाहिए कि ऐसे मूर्ख की संगति न करे जो आत्म-साक्षात्कार के ज्ञान से विहीन हो और जो स्त्रियों के हाथ की कठपुतली हो। (३.३१.३४ मूल)

अन्य किसी भी वस्तु से आसक्ति से उत्पन्न प्रेमान्धता तथा बंधन इतने पूर्ण नहीं होते जितने स्त्री से आसक्ति तथा स्त्रीगामी की मित्रता से उत्पन्न बंधन। (३.३१.३५ मूल)

ब्रह्माजी अपनी पुत्री को देखकर उसके सौन्दर्य से मोहित होकर उसके पीछे, उसके द्वारा मृगी का रुप धारण कर लेने पर, मृग का रूप धारण कर दौड़े। (३.३१.३६ मूल)

ब्रह्माजी ने जितने जीव-पुरुष, देवता तथा पशु उत्पन्न किये हैं उनमें से केवल नारायण मुनि स्त्री रूपी माया के आकर्षण के प्रति निश्चेष्ट हैं। (३.३१.३७ मूल)

जरा मेरी स्त्री के रूप में माया की महान शक्ति को समझने का प्रयास करो, जो मात्र अपने भौंहों की गतिशीलता से संसार के महानतम विजेताओं को अपने वश में रख सकती है। (३.३१.३८ मूल)

जो योग की पराकाष्ठा प्राप्त करना चाहता है और जिसने मेरी सेवा करके अपने को जान लिया है उसे कभी किसी आकर्षक स्त्री की संगति नहीं करनी चाहिए क्योंकि शास्त्र में ऐसी स्त्री को प्रगतिशील भक्त के लिये नरक का द्वार कहा गया है। (३.३१.३९ मूल)

भगवान् द्वारा सृजित स्त्री माया की प्रतिनिधि है और जो व्यक्ति ऐसी माया की सेवा स्वीकार करके उसकी संगति करता है उसे यह जान लेना चाहिए कि यह मृत्यु का मार्ग है जिस तरह घास से ढका अंधकूप होता है। (३.३१.४० श्लोक)

वह जीव जिसे अपने विगत जीवन में स्त्री के प्रति आसक्ति के फलस्वरूप स्त्री का रूप प्रदान किया जाता है वह माया को पुरुष रूप में यानि पति को, धन, सन्तान, घर तथा अन्य भौतिक सम्पति प्रदान करने वाला मानता है। (३.३१.४१ मूल)

इसलिए स्त्री को चाहिए कि अपने पति, अपने घर, अपनी सन्तान को, अपनी मृत्यु के लिए भगवान् की बहिरंगा शक्ति की व्यवस्था माने जिस तरह कि शिकारी का मधुर गीत हिरन की मृत्यु होता है (३.३१.४२ मूल)।

(श्रीमद्भागवतम् के इन श्लोकों (३.३१.३२-४२) के तात्पर्य भी अत्यन्त शिक्षाप्रद हैं और ब्रह्मचारियों के लिए पठनीय हैं। स्थानाभाव के कारण उन्हें यहाँ नहीं दिया गया।)

गृहस्थ वह व्यक्ति है जो परिवार, पत्नी, बच्चों, सम्बन्धियों के साथ रहता है किन्तु उनसे किसी प्रकार का लगाव नहीं रखता। वह साधु या संन्यासी की तरह न रह कर परिवार में रहना पसन्द करता है, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना या कृष्णभावनामृत के स्तर तक पहुँचना होता है। (३.३२.१.)

ब्रह्मचारी, संन्यासी या वानप्रस्थ के रूप में बने रहना और आजीवन कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करना सर्वोत्कृष्ट है। जो अकेले रहने में अक्षम हैं उन्हें गृहस्थी जीवन में पत्नी तथा सन्तानों के साथ रहने की छूट इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं अपितु कृष्णभावनामृत अनुशीलन के लिए दी जाती है। (३.३३.१२)

स्त्री का स्वभाव है अपने आपको गहनों तथा अच्छे वस्त्रों से सजाना और अपने पति के साथ सामाजिक उत्सवों में जाना, मित्रों तथा सम्बन्धियों से मिलना तथा इस प्रकार जीवन का आनन्द लेना। यह लालसा असामान्य नहीं है क्योंकि स्त्री भौतिक सुख का मूलाधार है। इसलिये संस्कृत शब्द स्त्री का अर्थ है "वह जो भौतिक सुख के क्षेत्र को विस्तीर्ण करती है।" (४.३.९)

इस श्लोक का महत्वपूर्ण शब्द उर्ध्व-रेतस: है जिसका अर्थ है ऐसे ब्रह्मचारीगण जिन्होंने वीर्य कभी भी स्खलित नहीं किया। ब्रह्मचर्य इतना महत्वपूर्ण है कि भले ही कोई व्यक्ति तपस्या या वेदों में संस्तुत अनुष्ठान करे या न करे किन्तु यदि वह शुद्ध ब्रह्मचारी रहता है, वीर्य स्खलित नहीं करता तो उसके कारण वह मृत्यु के पश्चात सत्यलोक को जाता है। सामान्यत: यौन जीवन समस्त सांसारिक कष्टों की जड़ है।



वैदिक सभ्यता में अनेक प्रकार से यौन जीवन पर अंकुश लगाया जाता है सम्पूर्ण जनसंख्या में से केवल गृहस्थों को संयमित यौन जीवन की अनुमति प्राप्त है। अन्य सभी यौन से दूर रहते हैं। विशेषकर इस युग के लोग वीर्य धारण करने के लाभ से परिचित नहीं हैं। फलस्वरूप वे नाना प्रकार के भौतिक गुणों में फँस कर केवल जीवन संघर्ष में लगे रहते हैं। ऊर्ध्व रेतस: शब्द विशेष रूप से मायावादी संन्यासियों को इंगित करता है जो तपस्या के कठिन नियमों का पालन करते हैं। (४.११.५)

कभी-कभी ब्रह्मा तथा शिव भी किसी भी समय कामवासना के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। (४.११.२७)

गृहस्थ जीवन अशुभ है क्योंकि गृहस्थ का अर्थ ही है इन्द्रियतृप्ति की चेतना और ज्यों ही इन्द्रियतृप्ति होती है, वैसे ही मनुष्य की स्थिति संकटपूर्ण हो जाती है। (४.२२.१३)

सकाम कर्म की इच्छाओं की जड़ें गहरी होती हैं, किन्तु इच्छा रूपी वृक्षों को भक्तिमय सेवा से पूर्णतया उन्मूलित किया जा सकता है क्योंकि भक्तिमय सेवा श्रेष्ठ इच्छा का प्रयोग करती है। इच्छा को रोक पाना असम्भव है। निकृष्ट इच्छाओं में प्रवृत्त न हों इसके लिए परम इच्छा करनी होगी।

इच्छा रोकने का कोई कृत्रिम प्रयास नहीं है। भगवान् के चरणकमलों के अँगूठों के संरक्षण में इच्छाएं आध्यात्मिक सुख की साधन बन जाती हैं। यहाँ कुमारों द्वारा बताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल समस्त सुखों के आगार हैं। अत: भौतिक सुख के लिए इच्छाओं को रोकने का विफल प्रयास करने के बजाय मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के चरण कमलों की शरण ग्रहण करे। जब तक वह भौतिक सुख के लिए इच्छाओं को रोकने में असमर्थ रहता है तब तक इस संसार के बन्धन से मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं रहती। यह तर्क किया जा सकता है कि नदी की तरंगें सतत् प्रवाहमान रहती हैं और उन्हें रोका नहीं जा सकता, किन्तु नदी की तरंगें समुद्र की ओर बहती हैं। जब ज्वार आता है तो इससे नदी की धारा अवरुद्ध हो जाती है और स्वयं नदी में बाढ़ आ जाती है। उस समय समुद्र की लहरें नदी की लहरों से अधिक मुखर हो उठती हैं। इसी प्रकार बुद्धिमान भक्त कृष्णभावनामृत में भगवान् की सेवा के लिए कई तरह की योजनाएं बनाता है जिससे अचल भौतिक इच्छाएँ भगवान् की सेवा की इच्छाओं से आप्लावित हो जाती हैं। जैसा कि यामुनाचार्य ने पुष्टि की है कि जब से वे भगवान् के चरण कमलों की सेवा की ओर उन्मुख हुए तब से नित्य ही भगवान् की सेवा करने की नवीन से नवीन इच्छाएं उठती रहती हैं जिसके फलस्वरूप

यौन जीवन की अचल इच्छा तुच्छ पड़ गई है। वे तो यहां तक कहते हैं कि वे ऐसी इच्छाओं पर थूकते हैं। भगवद्गीता भी (२.५९) पुष्टि करती है : "परं दृष्ट्वा निवर्तते।" निष्कर्षत: भगवान् के चरणकमलों की सेवा के लिए प्रेमपूर्ण इच्छा विकसित करने से हम इन्द्रियतृप्ति की सारी इच्छाओं को दमित करते हैं। (४.२२.३९ )

जो व्यक्ति भक्तिमय सेवा में उन्नत है वह कभी भी यौन जीवन के प्रति आकृष्ट नहीं होता और ज्यों ही वह यौन जीवन से विरक्त होकर उसी अनुपात में भगवान् की भक्ति में आसक्त होता है, वह वास्तव में अपने को वैकुण्ठ लोक में वास करता अनुभव करता है। (४.२३.२९)

कभी-कभी ऐसा समझा जाता है कि पुरुष स्त्रियों की चूड़ियों की खनक, नूपुरों की झनकार अथवा साड़ी को देखने मात्र से काम मोहित हो उठता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि स्त्री माया का पूर्ण रूप है। यद्यपि विश्वामित्र मुनि आँखे बन्द किये योगाभ्यास में लीन थे, किन्तु जब उन्होंने मेनका की चूड़ियों की खनक सुनी, तो उनका दिव्य ध्यान टूट गया। इस प्रकार विश्वामित्र मेनका के चंगुल में आ गये और उससे एक सन्तान उत्पन्न हुई जो शकुन्तला नाम से जगत् प्रसिद्ध हुई। निष्कर्ष यह निकला कि कोई भी अपने को नारी आकर्षण से नहीं बचा सकता, भले ही वह महान देवता या उच्चलोक का वासी ही क्यों न हो। केवल श्रीकृष्ण से आसक्त भगवद्भक्त ही स्त्री के आकर्षण से बच पाता है। एक बार श्रीकृष्ण द्वारा आकृष्ट होने पर संसार की माया उसे आकृष्ट नहीं कर सकती। (४.२४.१२)

जब कोई विपरीत लिंग को देखता है तो सहज ही कामोत्तेजना उत्पन्न होती है। कहा जाता है कि यदि मनुष्य एकान्त स्थान में स्त्री को देखे और उसका मन चलायमान न हो तो वह ब्रह्मचारी कहलाता है। किन्तु ऐसा कर पाना दुष्कर है। कामवासना इतनी प्रबल होती है कि स्त्री के दर्शन, स्पर्श या बोलने, सम्पर्क में आने या मात्र विपरीत लिंग का ध्यान करने से - भले ही विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म रूपों में ही सही - व्यक्ति कामवासना के वश में आ जाता है। फलत: ब्रह्मचारी या संन्यासी को स्त्री के संग रहने, विशेषतया एकान्त में रहने के लिए मना किया जाता है। शास्त्रों का मत है कि स्त्री से एकान्त में बात भी नहीं करनी चाहिए। (४.२५.१७)

प्रत्येक जीव दो तरह से वीर होता है। जब वह माया का शिकार होता है तो वह भौतिक जगत् में महान वीर, महान नेता, राजनीतिज्ञ, व्यापारी, उद्योगपति आदि की तरह कार्य करता है और उसके वीरतापूर्ण कार्य सभ्यता की भौतिक प्रगति में अंशदान देते हैं। व्यक्ति इन्द्रियों के स्वामी अर्थात गोस्वामी के रूप में भी वीर बन सकता हैं।



भौतिक कार्यकलाप तो झूठे वीरतापूर्ण कार्य हैं जब कि भौतिक क्रियाकलापों से इन्द्रियों को रोकना परम वीरता है। कोई व्यक्ति इस भौतिक जगत् में कितना ही बड़ा वीर क्यों न हो वह तुरन्त माँस तथा खून के पिण्ड, जिन्हें स्त्रियों के स्तन कहा जाता है, से पराजित हो सकता है। इस संसार के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, यथा रोम का वीर एंटोनी जो क्लियोपत्रा की सुन्दरता पर मोहित हो गया। इसी प्रकार महाराष्ट्र की राजनीति में भारतीय वीर बाजीराव को एक स्त्री का शिकार होकर पराजित होना पड़ा। इतिहास से पता चलता है कि पहले राजनीतिज्ञ सुन्दरियों का उपयोग विषकन्या के रूप मे किया करते थे। इन सुन्दरियों के शरीर में जीवन के प्रारम्भ से विष प्रविष्ट किया जाता था जिससे वे समय चलते विष के प्रभाव से इतनी परिमुक्त एवं स्वयं इतनी विषैली हो जाती थीं कि किसी व्यक्ति को चुम्बन मात्र से मार सकती थीं। इन विष कन्याओं का प्रयोग दुश्मन को देखने एवं चुम्बन से उन्हें मार देने में किया जाता था। इस प्रकार मानव इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें वीरों को मात्र स्त्रियों के द्वारा ध्वस्त कर दिया गया। श्रीकृष्ण का अंश होने से, जीव निश्चय ही परम वीर होता है, किन्तु अपनी इसी एक दुर्बलता के कारण वह भौतिक शरीर के प्रति आकृष्ट होता है। (४.२५.२५)

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर काम इच्छाएँ होती हैं और ज्यों ही मनुष्य किसी सुन्दरी की भौहों की गति से उत्तेजित होता है, त्यों ही भीतर से कामदेव तुरन्त अपना बाण हृदय पर चलाता है। इस प्रकार मनुष्य सुन्दरी की भौहों की गति (चितवन) से तुरन्त परास्त हो जाता है। जब मनुष्य कामेच्छा से विचलित होता है तो उसकी इन्द्रियाँ सभी प्रकार के विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, गंध, स्वाद आदि भोग्य वस्तुओं) से आकर्षित होती हैं। ये आकर्षक इन्द्रिय वस्तुएँ (विषय) उसे स्त्री के वश में होने के लिए बाध्य कर देती हैं। इस प्रकार जीव का बद्धजीवन प्रारम्भ होता है। बद्ध जीवन का अर्थ है स्त्री या पुरुष के वश में होना। इस प्रकार जीव एक दूसरे के बन्धन में जीता है और इस प्रकार माया द्वारा भ्रमित उसका बद्ध भौतिक जीवन चलता रहता है। (४.२५.३०)

हे सुन्दरी! सुन्दर भौहों तथा आँखों वाला तुम्हारा यह मुख अत्यन्त सुन्दर है जिस पर श्याम वर्ण केश बिखरे हैं। साथ ही तुम्हारे मुख से मधुर ध्वनि निकल रही है। फिर भी तुम इतनी लज्जायुक्त हो कि मेरी ओर देख नहीं सकती। अत: हे सुन्दरी! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम हँसो और सिर उठाकर मुझे देखो तो।

जब कोई व्यक्ति किसी स्त्री से आकृष्ट होता है तो ऐसा ही कहता है। यह भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध होने से उत्पन्न भ्रम कहलाता है। जब कोई माया की सुन्दरता

से इस प्रकार मोहित होता है तो वह उसे भोगने के लिए आतुर हो उठता है। इसका विस्तृत वर्णन पुरञ्जन के इस उदाहरण से प्राप्त होता है जो एक सुन्दरी पर मोहित है। बद्धजीवन में जीव मुख, भौहों, आँखों, वाणी या अन्य किसी वस्तु से आकर्षित होता है। कहना चाहें तो हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु आकर्षक बन जाती है। जब स्त्री या पुरुष एक दूसरे द्वारा आकृष्ट होते हैं तो सुन्दर या कुरूप का महत्व नहीं रह जाता। प्रेमी को प्रेमिका के मुख में हर चीज़ अत्यन्त सुंदर लगती है और वह इस प्रकार मोहित हो जाता है। इसी आकर्षण के कारण जीव का इस जगत में पतन होता है। (४.२५.३१ मूल तथा तात्पर्य)

वैदिक आदेशों के अनुसार मानवीय कर्मों के दो मार्ग हैं - पहला प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा निवृत्ति मार्ग। इन दोनों मार्गों का मूल सिद्धान्त धार्मिक जीवन है। पशु जीवन में केवल प्रवृत्ति मार्ग होता है। प्रवृत्ति मार्ग का अर्थ है इन्द्रिय-सुख भोगना और निवृत्ति मार्ग का अर्थ है आध्यात्मिक प्रगति। पशुओं तथा असुरों के जीवन में न तो निवृत्ति मार्ग की कोई विचारधारा पाई जाती है और न प्रवृत्ति मार्ग की कोई वास्तविक विचारधारा ही होती है। प्रवृत्ति मार्ग के अनुसार यद्यपि किसी व्यक्ति में इंद्रियतृप्ति की प्रवृत्ति हो, तो भी वह वैदिक आदेशों के अनुसार अपनी इंद्रियों को तृप्त कर सकता है। उदाहरणार्थ प्रत्येक व्यक्ति में यौन जीवन की प्रवृत्ति होती है, किन्तु आसुरी सभ्यता में यौन को अनियन्त्रित ढंग से भोगा जाता है। वैदिक संस्कृति में यौन सुख वैदिक आदेशों के अनुसार भोगा जाता है। इस प्रकार वेद सभ्य मनुष्यों को निर्देश देते हैं कि किस तरह इन्द्रियतृप्ति की जाए।

किन्तु निवृत्ति मार्ग अर्थात दिव्य साक्षात्कार के मार्ग में यौन सर्वथा वर्जित है। सामाजिक वर्ग चार भागों में बँटे है - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास और इनमें से केवल गृहस्थाश्रम में प्रवृत्ति मार्ग को वैदिक आदेशानुसार प्रोत्साहित या अंगीकार किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में यौन की कोई सुविधा नहीं है। (४.२५.३९)

इस भौतिक जगत् में तथाकथित प्रेम मात्र यौन तुष्टि है। (४.२५.४२ तात्पर्य)

जीव कभी भी एक स्त्री से तुष्ट नहीं हो सकता जब तक उसे ब्रह्मचर्य की शिक्षा प्राप्त न हो। सामान्यत: पुरुष अनेक स्त्रियों के साथ भोग करना चाहता है, यहाँ तक कि बुढ़ापे में भी उसकी कामेच्छा इतनी प्रबल रहती है कि बूढ़ा होने पर भी वह तरुणियों के संग को भोगना चाहता है। इस प्रकार प्रबल कामेच्छा के कारण जीव इस संसार से अधिकाधिक बँधता जाता है। (४.२५.४४)



इस प्रकार राजा पुरञ्जन अपनी सुन्दर पत्नी पर मोहित था और अत: ठगा गया। वस्तुत: वह इस भौतिक संसार में अपनी पूरी सत्ता के प्रति ही ठगा गया। बेचारा वह मूर्ख राजा उसी प्रकार अपनी इच्छा के विरुद्ध अपनी पत्नी के वश में रहा, जिस तरह एक पालतू जानवर अपने स्वामी के आदेशानुसार नाचता रहता है।

इस श्लोक में विप्रलब्ध शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वि अर्थात् "विशेष रूप से" और प्रलब्ध अर्थात् "प्राप्त"। राजा ने अपनी इच्छापूर्ति हेतु रानी को प्राप्त किया था और इस प्रकार वह भौतिक स्थिति द्वारा ठगा गया। यद्यपि वह ऐसा करना नहीं चाहता था किन्तु भौतिक बुद्धि के वशीभूत हो कर वह पालतू पशु के समान रहा। जिस प्रकार एक पालतू बन्दर अपने स्वामी की इच्छानुसार नाचता है उसी प्रकार राजा पुरञ्जन अपनी रानी के इशारों पर नाच रहा था। श्रीमद्भागवतम् (५.५.२) में कहा गया है - "महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते:" - यदि कोई किसी सन्त पुरुष या भक्त की संगति करता है तो उसका मोक्ष-मार्ग खुल जाता है। किन्तु यदि वह स्त्री अथवा किसी ऐसे व्यक्ति की संगति करता है जो स्त्री पर अत्यधिक आसक्त हो तो उसके बन्धन का मार्ग प्रशस्त होता है।

कुल मिलाकर मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति के लिए स्त्री का साथ छोड़ देना चाहिए। संन्यास आश्रम का यही तात्पर्य है। संन्यास या भौतिक संसार को पूर्वरूपेण त्यागने के पूर्व मनुष्य को अवैध स्त्री संबंध से बचने का अभ्यास करना होता है। यौन जीवन, वैध या अवैध, व्यवहारिक रूप से समान ही है, किन्तु अवैध यौन द्वारा व्यक्ति अधिकाधिक बंधता जाता है। यौन जीवन को नियमित कर लिया जाए तो सम्भावना है कि व्यक्ति अन्तत: कामवासना या स्त्री संग को त्याग पायेगा। यदि ऐसा किया जा सके तो आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ना बहुत आसान हो जाता है।

नारद मुनि ने इस अध्याय में बतलाया है कि किस तरह मनुष्य अपनी प्रियतमा पत्नी की संगति से मोहित हो जाता है। अपनी पत्नी के प्रति आकर्षण का अर्थ है भौतिक गुणों के प्रति आकर्षण।

जब तक हम भौतिक जगत् के समाज, परिवार और प्रेम के प्रति लगाव रखते हैं तब तक ज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता। न ही भक्ति का प्रश्न उठता है। (४.२५.६२ मूल तथा तात्पर्य)

चावल, दाल, रोटी, सब्जी, दूध तथा चीनी जैसा सादा आहार सन्तुलित आहार है, किन्तु कभी-कभी यह देखा जाता है कि एक दीक्षित व्यक्ति प्रसाद के नाम पर अत्यन्त गरिष्ठ भोजन करता है। अपने पूर्वकालीन पापमय जीवन के कारण वह कामदेव

द्वारा आकृष्ट होता है और डटकर गरिष्ठ भोजन खाता है। यह स्पष्टतः देखा गया है कि जब कृष्णभावनामृत में एक नवदीक्षित भक्त अधिक भोजन करता है तो उसका पतन हो जाता है। शुद्ध कृष्णभावनामृत के स्तर तक उठने के बजाय वह कामदेव द्वारा आकृष्ट होता है। तथाकथित ब्रह्मचारी स्त्री के द्वारा उत्तेजित हो जाता है और वानप्रस्थ पुनः अपनी पत्नी से संभोग करने के लिए आकृष्ट हो सकता है। (४.२६.१३)

स्त्रियोचित् पुरुष अपनी पत्नी की बाह्य सुन्दरता से आकृष्ट होकर उसका परम आज्ञाकारी दास बनने का प्रयास करता है। इसलिये श्रीपाद शंकराचार्य ने उपदेश दिया है कि हमें स्त्री के हाड़ मांस से आकृष्ट नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक कहानी कही जाती है कि एक बार एक पुरुष ने, एक सुन्दर स्त्री से अत्याधिक आकृष्ट होकर, उस स्त्री को पाने का इस प्रकार प्रयास किया कि उस स्त्री ने उसे सुन्दरता के सारे घटकों को दिखाने की योजना बनाई। उसने उस पुरुष से मिलने के लिए एक तिथि निश्चित की और उससे मिलने से पूर्व उसने जुलाब ले लिया जिससे रात-दिन वह केवल दस्त करती रही और सारा मल एक हाँडी में एकत्र करती रही। दूसरी रात को जब वह व्यक्ति उस स्त्री से मिलने आया तो वह उसे अत्यन्त कुरूप तथा क्षीण दिखी। जब उस व्यक्ति ने उस स्त्री के विषय में पूछा जिससे वह मिलने आया था, तो उस स्त्री ने कहा, "मैं ही वह स्त्री हूँ।" उस व्यक्ति ने उस पर विश्वास करने से इंकार कर दिया क्योंकि वह यह नहीं जानता था कि प्रबल जुलाब के फलस्वरूप वह दिन-रात दस्त करती रही और जिसके कारण उसने अपना सारा सौंदर्य खो दिया था। जब वह व्यक्ति उससे तर्क करने लगा, तो उस स्त्री ने कहा कि वह इसलिये सुंदर नहीं लग रही क्योंकि उसने अपने सौंदर्य के घटकों को अलग कर दिया है। जब उस व्यक्ति ने पूछा कि वे घटक किस तरह विलग हो सकते हैं तो उस स्त्री ने कहा, "चलिए आपको दिखाती हूँ।" तब उसने उसे मल और वमन से भरी हाँडी दिखाई। इस प्रकार उस व्यक्ति को पता चला कि सुन्दर स्त्री केवल रक्त, मल, मूत्र और इसी प्रकार के घृणित घटकों से बनी हुई है। यह वास्तविकता है, किन्तु भ्रम की अवस्था में मनुष्य मोहक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर माया का शिकार बन जाता है। (४.२६.२३)

कर्मीगण यौन सुख के लिए ही इतना श्रम करते हैं। आधुनिक मानव समाज ने अनेक प्रकार से अनियन्त्रित यौन जीवन को बढ़ावा देकर ही जीवन की भौतिकतावादी जीवन शैली में उन्नति की है। इसे पश्चिमी जगत् में स्पष्ट देखा जा सकता है। (४.२६.२६)



वेदों में आदिष्ट नियमित गृहस्थ जीवन, पापमय अनुत्तरदायित्वपूर्ण जीवन से अच्छा है। यदि स्त्री तथा पुरुष कृष्णभावनामृत में मिलें और शान्तिपूर्वक रहें तो अत्युत्तम हो। किन्तु यदि पति अपनी पत्नी के प्रति अधिक आसक्त होकर अपने जीवन कर्तव्यों को भूल जाता है तो वह पुनः भौतिक जीवन में फँस जाता है। इसलिये श्रील रूप गोस्वामी ने संस्तुति की है – अनासक्तस्य विषयान् (भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.२५५) पति तथा पत्नी विषयवासना से रहित होकर आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के लिये एक साथ रह सकते हैं। पति को भक्तिमय सेवा करनी चाहिए और पत्नी को वैदिक आदेशानुसार धार्मिक तथा श्रद्धावान होना चाहिए। ऐसा संयोग उत्तम होता है। किन्तु, यदि पति यौन के कारण पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्त हो जाता है तो स्थिति गम्भीर हो जाती है। स्त्रियाँ सामान्यतः अधिक कामुक होती हैं। वस्तुतः यह कहा जाता है कि स्त्री की कामवासना पुरुष की अपेक्षा नौगुनी प्रबल होती है। अतः पुरुष का कर्तव्य है कि वह स्त्री को आभूषण, स्वादिष्ट भोजन तथा वस्त्र प्रदान करके तथा उसे धार्मिक कृत्यों की ओर उन्मुख कर संतुष्ट करके अपने वश में रखे। निस्सन्देह स्त्री की संतानें भी होनी चाहिए जिससे वह पुरुष के लिये बाधा न बने। दुर्भाग्यवश यदि पुरुष स्त्री के प्रति केवल कामवासना से आकृष्ट होता है तो गृहस्थ जीवन घृणित बन जाता है।

परम राजनीतिज्ञ चाणक्य पंडित ने कहा है – "भार्या रूपवती शत्रुः" – सुन्दर पत्नी शत्रु होती है। निस्सन्देह, प्रत्येक स्त्री अपने पति की दृष्टि में रूपवती है। भले ही अन्यों की दृष्टि में वह अत्यन्त सुन्दरी न प्रतीत हो किन्तु पति के लिए तो उससे अत्यधिक आकृष्ट होने के कारण वह परम सुन्दरी होती है। यदि पति की दृष्टि में पत्नी अत्यन्त सुन्दरी है तो इसका अर्थ यह हुआ कि पति उस पर अत्यधिक मोहित है। यह आकर्षण काम का आकर्षण है। सारा संसार दो प्रकार के गुणों से मोहित है: रजोगुण तथा तमोगुण। सामान्यतया स्त्रियाँ अत्यधिक रजोगुणी तथा मन्द बुद्धिवाली होती हैं, अतः पुरुष को किसी तरह उनके रजो तथा तमोगुणों के वश में नहीं आना चाहिए। भक्तियोग करने से मनुष्य सतोगुण को प्राप्त हो सकता है। यदि सतोगुण में स्थित पति रजो तथा तमोगुणी पत्नी को अपने वश में रखता है तो स्त्री को लाभ पहुँचता है। अपने स्वाभाविक रजो तथा तमोगुण को भूल कर वह स्त्री अपने पति, जो सतोगुणी है, की आज्ञाकारिणी तथा श्रद्धावति बन जाती है। ऐसा जीवन अभिनन्दनीय है। तब स्त्री तथा पुरुष दोनों की बुद्धियाँ मिलकर अच्छे से कार्य कर सकती हैं और वे आत्म-साक्षात्कार की दिशा में प्रगति कर सकते हैं। अन्यथा पति, अपनी पत्नी के वश में आकर, अपने सतोगुण को खो देता है और रजो तथा तमोगुण के अधीन हो जाता है। इस तरह सारी स्थिति दूषित हो जाती है। निष्कर्ष यह निकला कि गृहस्थ जीवन

अनुत्तरदायित्वपूर्ण पापमय जीवन से श्रेयस्कर होता है, किन्तु यदि पति अपनी पत्नी के अधीन हो जाता है तो पुनः भौतिक जीवन का बन्धन प्रधान हो जाता है। इस तरह मनुष्य का भौतिक बन्धन बढ़ता जाता है। इसलिये वैदिक प्रणाली के अनुसार, एक निर्धारित आयु के उपरांत, मनुष्य को गृहस्थ जीवन छोड़कर वानप्रस्थ तथा संन्यास लेने की संस्तुति की जाती है। (४.२७.१)

हृदय में स्त्री का निरन्तर चिन्तन करना बहुमूल्य शय्या में स्त्री के साथ शयन करने के तुल्य है। (४.२७.४)

इस श्लोक में श्रील गोविन्द दास वास्तव में बताते हैं कि युवावस्था के भोगविलास में कोई आनन्द नहीं है। युवावस्था में मनुष्य सभी प्रकार के विषयों को भोगने के लिए आतुर हो उठता है। रूप, स्वाद, गंध, स्पर्श तथा शब्द ये इन्द्रिय-विषय हैं। आधुनिक वैज्ञानिक विधि, या वैज्ञानिक सभ्यता की प्रगति, इन पाँचों इन्द्रियों के भोग को बढ़ावा देती है। युवा पीढ़ी को सुन्दर रूप देखने, रेडियो पर भौतिक समाचार सुनने तथा इन्द्रियों को सुख देने वाले गीत सुनने, सुगन्धि तथा सुगन्धित पुष्प सूंघने, तरुणी के शरीर या स्तन को छूने तथा शनैः शनैः जननेन्द्रियों को सहलाने में परम प्रसन्नता होती है। यह सब पशुओं को भी सुखकर लगता है, इसलिये मानव समाज में पाँच विषयों के भोग पर प्रतिबन्ध है। यदि वह इनका पालन नहीं करता तो वह पशुतुल्य बन जाता है।

अतः इस श्लोक में स्पष्ट कथन है - काम-कश्मल-चेतसः - राजा पुरञ्जन की चेतना कामेच्छाओं तथा पापकर्मों के कारण दूषित हो चुकी थी। पिछले श्लोक में कहा गया है कि यद्यपि पुरञ्जन की चेतना उन्नत थी, किन्तु वह अपनी पत्नी के साथ कोमल शैय्या पर लेटा रहता था। इससे सूचित होता है कि वह यौन में अत्यधिक लिप्त था। इस श्लोक के नवं वयः शब्द भी महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द सोलह से तीस वर्ष की युवावस्था को इंगित करते हैं। ये तेरह या पन्द्रह वर्ष ऐसे हैं जिनमें कोई अपनी इन्द्रियों का अत्यधिक भोग कर सकता है। जब मनुष्य इस आयु को प्राप्त करता है तो वह सोचता है कि जीवन इसी प्रकार चलता रहेगा और वह इसी प्रकार इन्द्रियों का भोग करता रहेगा किन्तु, "समय तथा ज्वार कभी किसी की प्रतीक्षा नहीं करते।" युवावस्था तुरन्त ढल जाती है। जो व्यक्ति अपने जीवन को युवाकाल में मात्र पापमय कृत्यों को करके व्यय कर देता है वह युवावस्था के छोटे से समय के बीत जाने पर तुरन्त ही निराश हो जाता है और उसकी आंखें खुल जाती हैं। युवावस्था के भौतिक सुख विशेषकर उस व्यक्ति को भाते हैं, जिसे किसी प्रकार की आध्यात्मिक शिक्षा नहीं



मिली रहती। यदि उसे केवल देहात्मबुद्धि की शिक्षा मिली रहती है तो वह मात्र निराशाजनक जीवन व्यतीत करता है। क्योंकि चालीस वर्ष के आसपास शारीरिक इन्द्रिय सुख समाप्त हो जाता है। चालीस वर्ष के बाद उसे मोह रहित जीवन बिताना पड़ता है क्योंकि उसे आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता। ऐसे व्यक्ति के लिए युवावस्था का अन्त आधे ही क्षण में हो जाता है। इस प्रकार राजा पुरञ्जन का आनन्द जिसे वह अपनी पत्नी के साथ लेटकर लूट रहा था, तुरन्त ही बीत गया। (४.२७.५)

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं -

कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, केवल विषेर भाण्ड,
अमृत बलिया येबा खाय
नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे,
तार जन्म अधःपाते याय

"सकाम कर्म तथा मानसिक कल्पना मात्र विष के प्याले के तुल्य हैं। जो भी उन्हें अमृत समझकर पीता है, उसे जन्म जन्मान्तर नाना शरीरों में अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है। ऐसा मनुष्य सभी तरह के भक्ष्याभक्ष्य खाता है और अपनी इन्द्रियभोग की तथाकथित क्रियाओं के कारण पतित बनता है।"

इस प्रकार कर्मफलों का वह क्षेत्र, जिससे वंश वृद्धि होती है, यौन जीवन से प्रारम्भ होता है। पुरञ्जन ने अपने संपूर्ण वंश की वृद्धि पुत्र तथा पौत्र उत्पन्न करके की। इस प्रकार जीवात्मा, यौन तुष्टि की इच्छाओं के कारण, हजारों कर्मफलों में फँस जाता है। इस प्रकार वह मात्र इन्द्रियतृप्ति के लिए इस संसार में रहता है और एक शरीर से दूसरे में देहान्तरग करता रहता है। अनेक पुत्र और पौत्र उत्पन्न करने की उसकी विधि से समाज, राष्ट्र, समुदाय आदि का जन्म होता है। ये सब समुदाय, समाज, वंश, राष्ट्र मात्र यौन जीवन के प्रतिफल हैं। जैसा कि प्रह्लाद महाराज ने कहा है (भागवतम् ७.९.४५) - "यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखं हि तुच्छम्।" गृहमेधी वह है जो इस संसार में बना रहना चाहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह इस शरीर या समाज के भीतर रहकर मित्रता, प्रेम तथा समुदाय का सुख भोगना चाहता है। उसका एकमात्र सुख है कि इन्द्रिय सुखार्थियों की संख्या बढ़ाना। वह स्त्री-संभोग करता है और सन्तान उत्पन्न करता है, जो अपनी बारी में विवाह करते हैं एवं पौत्रों को उत्पन्न करते हैं। पौत्र भी अपनी बारी में विवाह करते हैं और प्रपौत्र उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार सारा संसार बुरी तरह आबाद हो जाता है और तब अचानक युद्ध, भुखमरी, रोग, भूकम्प आदि के रूप में प्रकृति द्वारा प्रेरित कर्म फल प्रकट होते हैं। इस तरह सारी जनसंख्या, मात्र

पुनः सृजित होने के लिये विनष्ट होती है। भगवद्गीता में (८.१९) बारम्बार सृष्टि तथा प्रलय के रूप में यह विधि वर्णित है: "भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।" कृष्णभावनामृत के अभाव में यह समस्त सृष्टि तथा विनाश मानव सभ्यता के नाम पर चलता रहता है। व्यक्ति के आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के अभाव में यह चक्र निरन्तर चलता जाता है। (४.२७.९)

महान साधु नारद मुनि नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, अर्थात् उन्होंने कभी यौन जीवन अनुभव नहीं किया। फलतः वे सदैव तरुण थे।

स्त्री के आकर्षण का प्रतिरोध करने के लिए महान शक्ति चाहिए। जहाँ बूढ़े लोगों के लिए ऐसा कर पाना कठिन है तो नवयुवकों के लिए क्या कहा जाए। जो लोग ब्रह्मचारी के रूप में रहते है उन्हें नारद मुनि के चरण-चिन्हों पर चलना चाहिए जिन्होंने जरा के प्रस्ताव को कभी स्वीकार नहीं किया। जो लोग कामवासना के प्रति अत्यन्त लिप्त रहते हैं वे जरा के शिकार बनते हैं और शीघ्र ही उनकी आयु क्षीण हो जाती है। मनुष्य जीवन का उपयोग कृष्णभक्ति के लिए किये बिना, जरा के शिकार हुए लोग, जल्दी ही इस संसार में मर जाते हैं। (४.२७.२१)

जब मनुष्य जवान होता है तो वह बुढ़ापे की परवाह नहीं करता, अपितु जी भर कर स्त्री-संभोग करता है। वह यह नहीं जानता कि यौन में उसकी लिप्तता, जीवन के अंत में उसे विभिन्न प्रकार की बीमारियों का शिकार बनायेगी जो शरीर को इतना कष्ट देती हैं कि व्यक्ति तुरन्त मृत्यु के लिये प्रार्थना करता है। जो मनुष्य युवावस्था में जितना ही यौन सुख भोगता है वह बुढ़ापे में उतना ही कष्ट पाता है। (४.२८.१)

जीवन के अन्त समय जब मनुष्य पर बुढ़ापे का आक्रमण होता है तो उसका शरीर किसी काम के योग्य नहीं रह जाता। इसलिये वैदिक शिक्षा है कि मनुष्य बचपन में ब्रह्मचर्य का अभ्यास करे अर्थात् वह पूर्णतया भगवान् की सेवा में लगा रहे और स्त्रियों से किसी प्रकार का सम्पर्क न रखे। (४.२८.३)

स्त्रियों की दूषित संगति के कारण, राजा पुरञ्जन के समान एक जीव, संसार के समस्त कष्टों को निरन्तर सहता है और अनेकानेक वर्षों तक समस्त प्रकार की स्मृति से शून्य होकर भौतिक जीवन के अन्धकार क्षेत्र में पड़ा रहता है।

यह भौतिक संसार का वर्णन है। इस संसार का अनुभव तब होता है जब मनुष्य श्रीकृष्ण के दास रूप में अपनी वास्तविक सत्ता को भूलकर (नष्ट स्मृतिः) स्त्री के प्रति आसक्त हो जाता है। इस प्रकार एक के बाद एक शरीर में, अनेक जन्मों तक जीवात्मा, इस संसार के तीनों तापों को सहता रहता है। मानव सभ्यता को अविद्या के अन्धकार



से बचाने के लिए ही श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रारम्भ किया गया है। कृष्णभावनामृत आंदोलन का मूल उद्देश्य विस्मृत जीवात्मा को बोध कराना और उसे मूल श्रीकृष्ण चेतना की याद दिलाना है। इस प्रकार जीवात्मा अविद्या तथा देहान्तरण के संकट से बच सकता है। जैसा कि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने गाया है -

अनादि करमफले, पड़ि भवार्णव जले,
तरिबारे ना देखि उपाय।
ए विषय-हलाहले, दिवा-निशि हिया ज्वले
मन कभु सुख नाहि पाय॥

"मैं अपने पूर्व कर्मों के कारण अविद्या के सागर में गिर गया हूँ। मैं इस विषतुल्य अपार सागर से निकलने का कोई साधन नहीं ढूंढ़ पा रहा हूँ। हम इन्द्रिय सुख द्वारा सुखी रहने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वह तथाकथित सुख वास्तव में उस भोजन के तुल्य है जो अत्यन्त गर्म होने के कारण हृदय में पीड़ा पहुँचा रहा है। मुझे अहर्निश जलन का अनुभव होता रहता है और मेरे मन को सन्तोष नहीं मिल पाता।"

यह संसार सदैव चिन्ताओं से पूर्ण है। लोग सदैव चिन्ता को कम करने के अनेक उपाय ढूँढ़ते रहते हैं, किन्तु वे सही पथ प्रदर्शन न पाकर मद्यपान तथा संभोग द्वारा चिन्ता को भूलने का प्रयत्न करते हैं। मूर्ख लोग यह नहीं जानते कि मद्यपान तथा संभोग द्वारा चिन्ताओं से बचने का प्रयास करने के कारण, वे मात्र अपने भौतिक जीवन की अवधि बढ़ाते हैं। इस प्रकार से भौतिक चिन्ता से बच पाना सम्भव नहीं।

प्रमदा-संग-दूषितः शब्द बताते हैं कि अन्य कल्मष को यदि छोड़ दें, तो केवल स्त्री के प्रति आसक्त होने का एकमात्र प्रदूषण ही मनुष्य के दयनीय भौतिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिये पर्याप्त है। इसलिये, वैदिक सभ्यता में व्यक्ति को प्रारम्भ से ही स्त्रियों के प्रति आसक्ति को छोड़ने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जीवन की पहली अवस्था ब्रह्मचार्य है, दूसरी अवस्था गृहस्थ तीसरी वानप्रस्थ और चौथी संन्यास। ये सारी अवस्थाएँ इसलिये बनाई गई हैं जिससे मनुष्य अपने को स्त्री संगति से विरक्त कर सके। (४.२८.२७)

हम निश्चित रूप से यह देख सकते हैं कि कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने के लिए मनुष्य को अपने शरीर भार पर नियन्त्रण रखना चाहिए। यदि कोई अत्यधिक मोटा हो जाए तो समझना चाहिए कि वह आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर रहा है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने मोटे शिष्यों की कटु आलोचना किया करते थे। भाव यह है कि जिसे कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ने की इच्छा हो उसे अत्यधिक भोजन

नहीं करना चाहिए। भक्त लोग तीर्थाटन के लिये जंगलों या पहाड़ों में जाया करते थे, किन्तु आजकल ऐसी कठिन तपस्या सम्भव नहीं है। मनुष्य को केवल प्रसाद ग्रहण करना चाहिए जो आवश्यकता से अधिक न हो। वैष्णव पंचांग के अनुसार, उपवास के अनेक दिन हैं - यथा एकादशी तथा भगवान् एवं उनके भक्तों के आविर्भाव एवं तिरोभाव के दिन। ये सारे उपवास शरीर की चर्बी को कम करने के उद्देश्य से हैं जिससे भक्त न तो आवश्यकता से अधिक सोये और न निष्क्रिय तथा आलसी बने। अधिक खाने से आवश्यकता से अधिक नींद आएगी। यह मनुष्य जीवन तपस्या के लिए मिला है और तप का अर्थ है यौन, आहार, आदि पर नियन्त्रण। इस प्रकार आध्यात्मिक कार्यों के लिए समय बचाया जा सकता है और मनुष्य अपने को बाहर-भीतर दोनों तरह से शुद्ध कर सकता है। इस प्रकार शरीर तथा मन दोनों शुद्ध हो सकते हैं। (४.२८.३६)

स्त्रियों के प्रति अत्यधिक आसक्ति से मनुष्य अगले जन्म में स्त्री बनता है, किन्तु जो मनुष्य भगवान् या उनके प्रतिनिधि की संगति करता है वह समस्त भौतिक आसक्तियों से रहित होकर मुक्त हो जाता है। (४.२९.१)

यौन तुष्टि की इच्छाएं अर्वाकों अर्थात् निम्नतम व्यक्तियों के लिए हैं। (४.२९.१४)

हे राजा ! उस हिरन की खोज करो जो एक सुन्दर पुष्प उद्यान में अपनी पत्नी सहित घास चरने में मस्त है। वह हिरन अपने चरने के कार्य में अत्यधिक अनुरक्त है और उस उद्यान के भौरों के मधुर गुंजार का आनन्द ले रहा है। मात्र उसकी स्थिति को समझने का प्रयास करो। उसे इसका पता नहीं है कि उसके सामने चीता है, जो अन्यों का माँस खाकर उदर पोषण करता है। हिरन के पीछे शिकारी है जो उसे तीक्ष्ण बाणों से बेधने के लिए तत्पर है। इस प्रकार हिरन की मृत्यु सन्निकट है।

यहाँ एक उपमा दी गई है जिसमें राजा से सदैव भयानक स्थिति में रह रहे हिरन को ढूँढ निकालने के लिए कहा जा रहा है। यद्यपि वह हिरन चारों ओर से संकट से घिरा है, किन्तु वह सुन्दर पुष्प उद्यान में घास चरता है, और अपने चारों ओर के संकट से अनभिज्ञ है। सभी जीव, विशेषतया मनुष्य अपने परिवार के बीच अपने को अत्यन्त सुखी मानते हैं। हर कोई, पारिवारिक जीवन का सौंदर्य पत्नी को केन्द्रित कर मानो एक पुष्प उद्यान में रह रहा हो और भँवरों की मधुर गुँजार सुन रहा हो। भौरों की गुंजार की तुलना बच्चों की बोली से की जा सकती है। मनुष्य हिरन के ही समान यह जाने बिना, कि उसके समक्ष काल रूपी चीता खड़ा है, अपने परिवार का भोग करता रहता है। जीव के सकाम कर्म केवल उसके लिए एक अन्य घातक स्थिति उत्पन्न करते हैं और उसे विभिन्न देह धारण करने के लिए बाध्य करते



हैं। हिरन के लिए मरुस्थल में मृगतृष्णा के पीछे दौड़ना कोई असामान्य घटना नहीं है। हिरन अत्यन्त कामी भी होता है। निष्कर्ष यह है कि जो हिरन की तरह जीता है वह कालान्तर में मृत्यु का शिकार होगा। इसलिए वैदिक साहित्य का परामर्श है कि हम अपनी स्वाभाविक स्थिति को समझें और मृत्यु आने से पहले ही भक्ति सेवा को अपनायें। भागवतम् के अनुसार (११.९.२९):

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्।।

अनेक जन्मों के पश्चात् हमें यह मनुष्य देह मिली है अतः मृत्यु आने के पूर्व हमें अपने को भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में संलग्न करना चाहिए। मानव जीवन की यही पूर्णता है। (४.२९.५३ मूल तथा तात्पर्य)

हे राजा! स्त्री, जो प्रारम्भ में अत्याकर्षक किन्तु अन्त में अत्यंत उपद्रवकारी होती है, ठीक उसी पुष्प के समान है, जो प्रारम्भ में आकर्षक और अन्त में घृणित हो जाता है। जीव कामेच्छाओं के कारण स्त्री में फँसता है और वह उसी प्रकार संभोग सुख प्राप्त करता है जिस प्रकार कोई फूलों की सुगंधि का भोग करता है। अतः वह जिह्वा से लेकर शिश्न तक की इन्द्रियतृप्ति का जीवन भोगता है और इस प्रकार जीव अपने को गृहस्थ जीवन में अत्यन्त सुखी मानता है। वह अपनी पत्नी के साथ ऐसे विचारों में मग्न रहता है। वह अपनी पत्नी तथा बच्चों की बातें सुनने में महान आनन्द का अनुभव करता है जो फूल-फूल से मधु एकत्र करने वाले भौरों की मधुर गुंजार के तुल्य होती हैं। वह भूल जाता है कि उसके समक्ष काल खड़ा है जो दिन-रात बीतने के साथ ही उसकी आयु का हरण करता जा रहा है। उसे न तो अपनी आयु घटती दिखती है और न उसे यमराज की ही चिन्ता रहती है जो पीछे से उसे मारने का प्रयत्न करता रहता है। तुम जरा इसे समझने का प्रयास करो। तुम अत्यन्त शोचनीय स्थिति में हो और चारों ओर से संकट से घिरे हो।

भौतिकतावादी जीवन का अर्थ है भगवान् श्रीकृष्ण के दास रूप में अपनी स्वाभाविक स्थिति को भूलना और यह विस्मृति, गृहस्थ आश्रम में विशेष रूप से बढ़ जाती है। युवक गृहस्थाश्रम में परम सुन्दरी स्त्री को पत्नी रूप में स्वीकार करता है किन्तु जो कालान्तर में अनेक सन्तानों को जन्म देने तथा वृद्ध होने पर परिवार के भरण-पोषण के लिए अनेक वस्तुओं की माँग करती है। उस समय वही पत्नी उसी व्यक्ति

को, जिसने उसकी युवावस्था में उसे स्वीकार किया था, घृणित लगने लगती है। कोई भी व्यक्ति दो कारणों से गृहस्थ आश्रम के प्रति आसक्त होता है - पत्नी पति की रुचि के अनुकूल स्वादिष्ट व्यंजन तैयार करती है और रात्रि में वह काम-सुख प्रदान करती है। गृहस्थ आश्रम में आसक्त व्यक्ति सदैव इन्हीं दो बातों को सोचता रहता है - स्वादिष्ट भोजन तथा काम सुख। पत्नी की बातें जो परिवार विनोद के रूप में भोगी जाती हैं, तथा बच्चों की बातें, दोनों ही जीवों को आकर्षित करती हैं। इस प्रकार वह यह भूल जाता है कि उसे एक दिन मरना है और उपयुक्त शरीर में प्रवेश पाने के लिए अगले जीवन की तैयारी करनी है।

उद्यान में स्थित हिरन अन्योक्ति के रूप में आया है जिसके माध्यम से नारद मुनि, राजा को बताना चाहते हैं कि राजा स्वयं इसी प्रकार की परिस्थितियों से घिरा है। वास्तव में प्रत्येक प्राणी ऐसे पारिवारिक जीवन से घिरा है जो उसे पथ भ्रमित करता हैं। इस प्रकार जीव यह भूल जाता है कि उसे भगवान् के धाम वापस जाना है। वह केवल पारिवारिक जीवन में उलझ जाता है। इसलिये प्रह्लाद महाराज ने इंगित किया है - हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत्। गृहस्थ जीवन अंध कूप के समान है जिसमें मनुष्य गिर कर असहाय होकर मर जाता है। प्रह्लाद महाराज संस्तुति करते हैं कि इन्द्रियों के ठीक एवं बलवान रहते हुए, मनुष्य को गृहस्थाश्रम त्याग देना चाहिए और वृन्दावन जाकर भगवान् के चरण कमलों की शरण ग्रहण कर लेनी चाहिए। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को एक आयु विशेष में (पचास वर्ष पर) वानप्रस्थ ग्रहण करके अन्त में संन्यासी रूप में अकेले रहना चाहिए। यही वैदिक सभ्यता की संस्तुत विधि है जिसे वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। जब गृहस्थ जीवन को भोग कर कोई संन्यास ग्रहण करता है तो भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।

मनुष्य को अपने परिवार में या सांसारिक जीवन में अपनी स्थिति को समझना चाहिए। यह बुद्धि कहलाती है। व्यक्ति को पत्नी के संग में अपनी जीभ तथा जननेन्द्रियों को संतुष्ट करने के लिये पारिवारिक जीवन में फँसे नहीं रहना चाहिए। ऐसा करने पर जीवन व्यर्थ जाता है। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को एक आयु विशेष में परिवार का परित्याग करना होता है और यदि आवश्यक हुआ तो बलपूर्वक। दुर्भाग्यवश वैदिक जीवन के तथाकथित अनुयायी जीवन के अन्तकाल तक अपना परिवार नहीं त्यागते जब तक मृत्यु उसे विवश नहीं कर देती। सामाजिक प्रणाली के आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है और समाज को चार वर्णों तथा चार आश्रमों वाले वैदिक सिद्धान्तों को पुनः ग्रहण करना चाहिए। (४.२९.५४ मूल तथा तात्पर्य)



हे राजा! तुम हिरन की अन्योक्ति को समझने का प्रयास करो। तुम अपने प्रति सचेष्ट रहो और कर्म के द्वारा स्वर्गलोक जाने के श्रवण-सुख को त्याग दो। गृहस्थ जीवन का त्याग करो जो यौन तथा इससे सम्बन्धित कथाओं से पूर्ण है और तुम मुक्त जीवों की कृपा से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करो। इस प्रकार कृपया इस संसार के प्रति अपनी आसक्ति को त्याग दो।

गृहस्थ आश्रम में रहने का अर्थ है अपनी पत्नी के वश में होना। मनुष्य को यह सब छोड़कर परमहंस आश्रम में जाना चाहिए अर्थात् अपने को गुरु के नियन्त्रण में रखना चाहिए।

सारा संसार स्त्री द्वारा नियन्त्रित होने के कारण माया के चंगुल में है। मनुष्य न केवल अपनी स्त्री के वश में है अपितु वह तरह तरह के यौन साहित्यों से नियन्त्रित है। भौतिक जगत् में व्यक्ति के फँसने का यही कारण है। कोई भी अपने प्रयास से इस घृणित संगति को छोड़ नहीं सकता किन्तु यदि वह परमहंस रूप प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण कर लेता है तो वह क्रमशः आध्यात्मिक जीवन के पद को पा लेता है। (४.२९.५५ मूल तथा तात्पर्य)

आधुनिक सभ्यता का मूल दोष यह है कि लड़कों तथा लड़कियों को उनके स्कूलों तथा कॉलेजों में यौन जीवन का आनन्द लेने की छूट दी जाती है। (४.३१.१)

यहाँ पर इसका सुन्दर वर्णन हुआ है कि किस तरह सुन्दर स्त्री के हाव-भाव, उसके केश, उसके कूचों की बनावट, उसके नितम्ब तथा अन्य शरीर के अंग न केवल पुरुषों के मनों को अपितु देवताओं के मनों को भी आकृष्ट करने वाले हैं। दिविज तथा मनुज शब्द विशेष रूप से इस बात पर बल देनेवाले हैं कि स्त्रियों के हाव-भाव का आकर्षण इस लोक तथा उच्चलोकों में सर्वत्र ही अत्यन्त प्रबल है। कहा जाता है कि उच्च लोकों का जीवन स्तर इस लोक के जीवन स्तर से हजारों गुना उच्च है। इसलिए स्त्रियों के सुन्दर शारीरिक अंग भी पृथ्वी की स्त्रियों के अंगों की अपेक्षा हजारों गुना अधिक आकर्षक हैं। सृष्टिकर्ता ने स्त्रियों को इस तरह बनाया है कि उनकी सुरीली वाणी तथा हाव-भाव एवं उनके नितम्बों, स्तनों तथा अन्य अंगों की सुन्दरता इस पृथ्वी के तथा अन्य लोकों के पुरुषों को आकृष्ट करती हैं और उनकी कामवासना को जागृत करती हैं। जब कोई व्यक्ति कामदेव या स्त्री सौन्दर्य के वशीभूत होता है तो वह पत्थर की तरह जड़ हो जाता है। स्त्रियों के भौतिक हाव-भाव से मोहित होकर वह इसी भौतिक जगत् में रहना चाहता है। इस तरह स्त्रियों के शारीरिक गठन एवं हावभाव को देखने मात्र से व्यक्ति को आध्यात्मिक लोक नहीं मिल पाता है। इसलिये श्रीचैतन्य

महाप्रभु ने समस्त भक्तों को सावधान किया है कि वे स्त्रियों तथा भौतिकतावादी सभ्यता के आकर्षण से दूर रहें। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने यहाँ तक कि महाराज प्रतापरुद्र से मिलने को भी इंकार कर दिया क्योंकि वह भौतिक जगत् में बहुत ऐश्वर्यवान व्यक्ति था। इस सन्दर्भ में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है - निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य अर्थात जो लोग भगवद्धाम जाने के इच्छुक हैं और इसलिये भक्ति में लगे हैं, उन्हें स्त्रियों के हाव-भाव नहीं देखने चाहिए और जो बहुत धनी पुरुष हैं उन्हें भी नहीं देखना चाहिए।

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य पारं परं जिगमिषोर्भव सागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिनाम अथ योषितां च हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽपि असाधु।।

"हाय! जो व्यक्ति भौतिक सागर पार करने का इच्छुक है और बिना किसी भौतिक लाभ के भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगना चाहता है, उसके लिए इन्द्रियतृप्ति में संलग्न भौतिकवादी व्यक्ति का या स्त्री का दर्शन करना जानबूझ कर विषपान करने के तुल्य है।" (चैतन्यचरितामृत, मध्य ११.८) जो व्यक्ति भगवद्धाम जाने का इच्छुक हो उसे स्त्रियों के आकर्षक स्वरूप तथा धनवानों के ऐश्वर्य का चिन्तन नहीं करना चाहिए। ऐसे चिन्तन से उसकी आध्यात्मिक उन्नति अवरुद्ध होगी। किन्तु एक बार कृष्णभावनामृत में स्थिर हो जाने पर ये सारे आकर्षण भक्त के मन को चलायमान नहीं करेंगे। (५.२.६.)

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयम् असन्नपि क्लेशद आस देहः।।

जब कोई व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति को जीवन का लक्ष्य मान लेता है तो वह भौतिकतावादी जीवन शैली के पीछे पागल रहता है और सभी प्रकार के पापकर्म करता है। वह यह नहीं जानता कि अपने विगत दुष्कर्मों के फलस्वरूप उसे पहले ही यह शरीर मिला है जो क्षणिक होते हुए भी उसके दुःखों का कारण है। वस्तुतः जीव को भौतिक शरीर ग्रहण नहीं करना चाहिये था, किन्तु उसे यह शरीर इन्द्रियतृप्ति के लिए प्रदान किया गया है। इसलिए मेरे विचार से बुद्धिमान व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं हैं कि वह पुनः इन्द्रियतृप्ति के कार्यों में अपने को लगाए जिसके कारण उसे एक के बाद एक भौतिक शरीर प्राप्त होते हैं। (५.५.४ मूल)

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति।

स्त्री तथा पुरुष के बीच आकर्षण भौतिक जीवन का मूलभूत सिद्धान्त है। इस भ्रान्त धारणा के आधार पर, जिससे स्त्री-पुरुष के मन बँधते हैं, मनुष्य अपने शरीर, घर, सम्पत्ति, संतान, सम्बन्धी तथा धन के प्रति आकृष्ट होता है। इस तरह वह जीवन के भ्रमों को बढ़ाता है और 'मैं' तथा 'मेरा' के रूप में सोचता रहता है। (५.५.८)



स्त्रियों की संगति करते समय गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी को अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। यहाँ तक कि अपनी माता, बहन या पुत्री के पास भी एकान्त में बैठना वर्जित है। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में विशेषतया पाश्चात्य देशों में स्त्रियों से अपने को विलग रख पाना अति कठिन है। इसलिये कभी-कभी हमारी आलोचना की जाती है फिर भी हम हर एक को हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने तथा इस तरह आध्यात्मिक प्रगति करने का अवसर प्रदान करने की कोशिश कर रहे हैं। यदि हम निरापराध भाव से हरे कृष्ण महामन्त्र के जप के सिद्धान्त पर टिके रहें तो श्री हरिदास ठाकुर की कृपा से हम स्त्रियों के आकर्षण से बच सकते हैं। किन्तु यदि हम हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने में दृढ़ नहीं हैं तो हम किसी भी समय स्त्रियों के शिकार हो सकते हैं। (५.६.३)

इस भौतिक जगत् में पारिवारिक जीवन संभोग की संस्था है। यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखम (भागवतम् ७.९.४५)। संभोग के द्वारा ही माता-पिता सन्तानें उत्पन्न करते हैं, सन्तानों का विवाह होता है और वे भी उसी यौन जीवन के मार्ग का अनुसरण करते हैं। माता-पिता की मृत्यु के बाद सन्तानें विवाहित होकर अपनी सन्तानें उत्पन्न करती हैं। इस तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह क्रम चलता रहता है और किसी को भी भौतिक जीवन के झंझटों से मुक्ति नहीं मिल पाती। कोई भी ज्ञान तथा वैराग्य की आध्यात्मिक विधि को, जिससे भक्तियोग प्राप्त होता है, स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः मनुष्य जीवन ज्ञान तथा वैराग्य के लिए है। इनसे मनुष्य भक्ति पद को प्राप्त हो सकता है। दुर्भाग्यवश इस युग में लोग मुक्त पुरुषों के संग (साधुसंग) से बचना चाहते हैं और अपने घिसे-पिटे गृहस्थ जीवन में चलते ही रहते हैं। इस तरह वे धन तथा यौन के विनिमय के द्वारा चिन्तित रहते हैं। (५.१३.१४)

जीव इस भौतिक जगत् रूपी जंगल में तथाकथित योगियों, स्वामियों तथा अवतारों के द्वारा ठगे जाने पर उनकी संगति त्यागने का प्रयास करता है और वास्तविक भक्तों की संगति करने लगता है, किन्तु दुर्भाग्य के कारण वह गुरु या उन्नत भक्तों के उपदेशों का पालन नहीं कर पाता, इसलिए वह इनका साथ छोड़ कर पुनः बन्दरों की संगति में लौट आता है जो केवल इन्द्रियतृप्ति तथा स्त्रियों में रुचि रखते हैं। वह कामियों की संगति करने तथा यौन सुख भोगने और नशा करने में सन्तुष्ट रहता है। वह अन्य कामियों के मुखमण्डलों को निहारकर भुलक्कड़ बन जाता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।

कभी-कभी मूर्ख व्यक्ति कुसंगति से ऊब जाता है और भक्तों तथा ब्राह्मणों की संगति में आकर गुरु से दीक्षा लेता है। वह गुरु के आदेशानुसार नियमों का पालन करने का प्रयास करता है, किन्तु दुर्भाग्यवश वह गुरु के आदेशों का पालन नहीं कर पाता। इसलिए वह भक्तों का साथ छोड़ कर पापी व्यक्तियों की संगति करता है जो केवल यौन तथा नशे में रुचि रखते हैं। तथाकथित अध्यात्मवादियों की तुलना बन्दरों से की गई है। ऊपर से बन्दर साधुओं जैसे लगते है, क्योंकि वे जंगलो में नंगे रहते हैं और फल तोड़ते हैं, किन्तु उनकी एकमात्र इच्छा रहती है अनेक बन्दरियाँ रखकर यौन जीवन का आनन्द लेना। कभी-कभी आध्यात्मिक जीवन की खोज कर रहे तथाकथित अध्यात्मवादी कृष्णभावनाभावित भक्तों की संगति पा लेते हैं, किन्तु वे न तो नियमों का पालन कर पाते हैं, न आध्यात्मिक जीवन के मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं। फलस्वरूप वे भक्तों की संगति छोड़कर कामियों की संगति करते हैं जिनकी तुलना बन्दरों से की गई है। वे यौन तथा नशा की प्रवृत्ति को पुनर्जीवित करके तथा एक दूसरे के मुख को देखकर तृप्त होते रहते हैं। इस तरह से वे मृत्यु आने तक अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। (५.१३.१७ मूल तथा तात्पर्य)

जब जीव एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदने वाले बन्दर की तरह बन जाता है तो वह गृहस्थ जीवन रूपी वृक्ष में यौन के अतिरिक्त अन्य किसी लाभ के बिना रहता है। इस तरह वह गधे की भाँति अपनी पत्नी द्वारा लतियाया जाता है। वह छुटकारा न पा सकने से असहाय होकर उसी स्थिति में पड़ा रहता है। कभी वह असाध्य रोग का शिकार बन जाता है जो पर्वत कन्दरा में गिर जाने के तुल्य है। वह मृत्यु से भयभीत रहता है जो उस गुफा के पीछे हाथी के तुल्य है। वह टहनियों और लताओं को पकड़कर फँसा रहता है।

यहां पर गृहस्थ के जीवन की शोचनीय दशा का वर्णन हुआ है। गृहस्थ का जीवन दु:ख से पूर्ण है और उसका एक मात्र आकर्षण पत्नी के साथ संभोग है जो संभोग के समय उसे गधी की भाँति दुलत्ती झाड़ती है। लगातार यौन जीवन के कारण वह अनेक असाध्य रोगों का शिकार बन जाता है। उस समय वह हाथी सदृश मृत्यु से डर कर बन्दर की तरह वृक्ष की शाखाओं से लटका रहता है। (५.१३.१८ मूल तथा तात्पर्य)

हे प्रिय राजन! इस भौतिक जगत में स्त्री, पुत्रादि नाम से जाने जाने वाले कुटुम्बीजन वास्तव में चीतों तथा सियारों की भाँति व्यवहार करते हैं। चरवाहा यथाशक्ति अपनी भेड़ों की रखवाली करना चाहता है किन्तु चीते तथा लोमड़ियाँ उन्हें बलपूर्वक उठा ले जाते हैं। इसी प्रकार यद्यपि कंजूस अपने धन की चौकसी रखना चाहता है,



किन्तु उसके परिवार वाले उसकी सारी सम्पत्ति को उसके जागरुक रहते हुए भी बलपूर्वक छीन लेते हैं।

किसी हिन्दी कवि ने कहा है - दिन की डाकिनी रात की बाघिनी पलक पलक लहू चूसे। पत्नी दिन में डाकिन के तुल्य रहती है और रात में बाघिन की तरह। उसका एकमात्र कार्य है दिन-रात अपने पति के खून को चूसना। दिनभर पति द्वारा खून पसीना एक करके कमाया धन गृहस्थी के खर्चों में चला जाता है। रात में यौन सुख के कारण पति वीर्यरूप में अपना रक्तपात करता है। इस प्रकार वह अपनी पत्नी द्वारा रात-दिन चूसा जाता है फिर भी वह इतना पागल होता है कि बड़ी सावधानी से उसे पालता है। इसी प्रकार बच्चे भी चीते, सियार तथा लोमड़ियों के तुल्य हैं। जिस प्रकार चीते, सियार तथा लोमड़ियाँ चरवाहे के सतर्क रहने पर भी मेमनों को उठा ले जाते हैं उसी प्रकार बच्चे भी पिता का धन ले लेते हैं, यद्यपि इस धन की देख-रेख पिता स्वयं करता है। इस प्रकार कुटुम्बीजन भले ही पत्नी तथा सन्तान कहलाते हों किन्तु वास्तव में वे सब हैं लुटेरे ही। (५.१४.३ मूल तथा तात्पर्य)

प्रतिवर्ष कृषक अपने अनाज के खेत को जोतकर सारा घास-फूस निकालता रहता है। तो भी उनके बीज खेत में पड़े रहते हैं और पूरी तरह भस्म न होने के कारण खेत में बोये गये पौधों के साथ पुन: उग आते हैं। नीचे से जोते जाने पर भी घास-फूस सघन रूप से निकल आते हैं। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम एक कर्म-क्षेत्र है। जब तक पारिवारिक जीवन भोगने की इच्छा पूरी तरह भस्म नहीं कर दी जाती तब तक वह पुन: पुन: उदय होती रहती है। पात्र में बन्द कपूर को हटा लेने पर भी पात्र से कपूर की सुगन्ध नहीं जाती। जब तक इच्छाओं के बीज नष्ट नहीं कर दिये जाते तब तक सकाम कर्म का उच्छेदन नहीं होता।

जब तक प्राणीमात्र की इच्छाएँ भगवान् की सेवा में पूर्णत: अर्पित नहीं कर दी जातीं तब तक संन्यास लेने के बाद भी पारिवारिक जीवन की इच्छा बनी रहती है। कभी-कभी हमारे समाज इस्कॉन में कोई व्यक्ति भावावेश में आकर संन्यास ग्रहण कर लेता है किन्तु उसकी इच्छा पूरी तरह विनष्ट हुई नहीं रहती इसलिए वह अपनी प्रतिष्ठा तथा नाम को लज्जित करके भी पुन: पारिवारिक जीवन में चला जाता है। ये प्रबल इच्छाएँ पूर्णतया तभी विनष्ट हो सकती हैं जब कोई भगवान् की भक्तिमय सेवा में पूर्णत: संलग्न हो जाए। (५.१४.४ मूल तथा तात्पर्य)।

कभी-कभी यह बद्धात्मा, धूल के बवण्डर से अन्धे हुए व्यक्ति की तरह स्त्री की सुन्दरता को देखता है, जो प्रमदा कहलाती है। इस प्रकार से अन्धा हुआ वह सुन्दर

स्त्री की गोद में जा बैठता है और उस समय उसके विवेक पर रजोगुण का वेग विजय पा लेता है। इस तरह वह वासना से प्राय: अन्धा हो जाता है और वह विषयी जीवन के सारे नियमों का उल्लंघन करने लगता है। उसे यह ज्ञान ही नहीं रह जाता कि उसके इस उल्लंघन को अनेक देवता देख रहे हैं। इस प्रकार वह भविष्य के दण्ड को देखे बिना अर्धरात्रि में अवैध यौन सुख का आनन्द लेता है।

भगवद्गीता (७.११) में कहा गया है - धर्माविरुद्धो भूतेषु, कामोऽस्मि भरतर्षभ। यौनाचार की अनुमति केवल सन्तान उत्पन्न करने के लिए दी जाती है। विषय सुख के लिए नहीं। वंश, समाज तथा विश्व कल्याण हेतु उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही स्त्री-संग करना चाहिए। अन्यथा यौन धार्मिक जीवन के नियमों एवं प्रतिबन्धों के विरुद्ध है। भौतिकतावादी मनुष्य को विश्वास नहीं होता कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु नियमित है और वह यह नहीं समझ पाता कि यदि वह कोई त्रुटि करता है तो विविध देवता उसके साक्षी स्वरूप रहते हैं। प्राणी अवैध यौनाचार का आनन्द लेता है और कामान्ध होने के कारण वह सोचता है कि उसे कोई देख नहीं सकता किन्तु भगवान् के गण इसे अच्छी तरह देखते रहते हैं। फलस्वरूप वह प्राणी अनेक प्रकार से दण्डित होता है। इस कलियुग में अवैध यौन सम्पर्क के कारण अनेक गर्भ ठहर जाते हैं। और कभी-कभी तो गर्भपात भी कराये जाते हैं। इन पापमय कर्मों के साक्षी हैं भगवान् के गण। जो पुरुष तथा स्त्री ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं, उन्हें भविष्य में प्रकृति के कठोर से कठोर नियमों के अनुसार दण्डित किया जाता है (दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया)। अवैध यौनाचार कभी भी क्षमा नहीं किया जाता और वे जो इन कुकृत्यों में लिप्त रहते हैं उन्हें जन्मजन्मांतर दण्डित किया जाता है। भगवद्गीता (१६.२०) में इसकी पुष्टि की गई है -

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।।

"हे कुन्तीपुत्र! ऐसे व्यक्ति आसुरी योनि में बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए कभी भी मुझ तक पहुँच नहीं पाते। वे धीरे-धीरे अत्यन्त अधम गति को प्राप्त होते हैं।"

भगवान् किसी को भी प्रकृति के नियमों के विरुद्ध कर्म करने की अनुमति नहीं देते: फलत: अवैध कामाचार जन्म जन्मान्तर दण्डित है। अवैध यौन से गर्भावस्था उत्पन्न होती है और इन अवांछित गर्भावस्थाओं के फलस्वरूप गर्भपात कराया जाता है। जो इसमें भाग लेते हैं वे इन पापों में संलग्न हो जाते है, यहाँ तक कि अगले जन्म में उन्हें उसी प्रकार दण्ड दिया जाता है। इस तरह मनुष्य अगले जन्म में अपनी माता



के गर्भ में प्रवेश करते हैं और उसी तरह से मार डाले जाते हैं। श्रीकृष्णभावनामृत के दिव्य पद पर रहकर इनसे छुटकारा पाया जा सकता है। इस तरह मनुष्य पापपूर्ण कर्म नहीं करता। अवैध यौनाचार कामेच्छाओं से उत्पन्न सर्वाधिक प्रमुख पाप है। जब कोई रजोगुणी होता है तो उसे जन्मजन्मान्तर कष्ट उठाना पड़ता है। (५.१४.९ मूल तथा तात्पर्य)।

कभी-कभी बद्ध जीव इन्द्रियतृप्ति से प्राप्त होने वाले क्षणिक सुख की ओर आकर्षित होता है। फलस्वरूप वह या तो अवैध यौन सम्पर्क में रत होता है या पराये धन को चुराता है। ऐसी अवस्था में वह राजा द्वारा बन्दी बना लिया जाता है अथवा उस स्त्री का पति या रक्षक उसे दण्डित करता है। इस प्रकार किंचित सांसारिक तुष्टि हेतु वह नरक में जा पड़ता है और बलात्कार, अपहरण, चोरी तथा इसी प्रकार के कार्यों के लिए कारागार में डाल दिया जाता है।

इस भौतिक जीवन में अवैध यौन सम्पर्क, जुआ, मादक द्रव्य सेवन तथा मांसाहार में लिप्त होने पर बद्धजीव अत्यन्त विषम परिस्थितियों में फँस जाता है। मांसाहार तथा मादक द्रव्य सेवन से इन्द्रियां अधिकाधिक उत्तेजित होती रहती हैं और बद्धजीव कामिनी के चंगुल में पड़ जाता है। कामिनी को धन चाहिए और धन प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को माँगना, उधार लेना अथवा चोरी करनी पड़ती है। सचमुच ही उसे जघन्य कर्म करने पड़ते हैं जिससे उसे इस जन्म में तथा अगले जन्म में कष्ट भोगना पड़ता है। फलत: जो आत्म-साक्षात्कार के इच्छुक हों उन्हें चाहिए कि वे अवैध यौन सम्पर्क का परित्याग कर दें। अनेक भक्तजन अवैध यौन सम्पर्क से पतित हो जाते हैं। सम्भव है कि वे चोरी करने लगें और अत्यन्त सम्मानित संन्यास आश्रम से भ्रष्ट हो जाएँ। फिर जीविकोपार्जन के लिए उन्हें तुच्छ सेवाएँ करनी पड़ती हैं और वे भिक्षुक बन जाते हैं। इसलिये शास्त्रों का कथन है: यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखं हि तुच्छम् - अर्थात सांसारिकता यौनाचार पर आश्रित है, चाहे वह वैध हो या अवैध। गृहस्थ जीवन में आसक्त लोगों के लिये भी यौनाचार खतरों से भरा है। चाहे किसी के पास यौनाचार की अनुमति हो या नहीं, इसमें अनेक कष्ट हैं। बहु दु:ख भाक - यौनाचार में लिप्त होने पर न जाने कितनी विपदाएँ उत्पन्न होती हैं। भौतिक जीवन में उसे अधिकाधिक दु:ख मिलता है। जिस प्रकार एक कंजूस पुरुष अपनी सम्पत्ति का समुचित उपयोग नहीं कर पाता उसी तरह सांसारिक प्राणी मनुष्य जीवन का दुरुपयोग करता है। उसे वह आत्मोन्नति के लिए सदुपयोग न करके इन्द्रियतृप्ति के लिए प्रयोग करता है। इसलिये वह कृपण कहलाता है। (५.१४.२२ मूल तथा तात्पर्य)

कभी-कभी बद्धजीव प्रमादवश साक्षात् माया (अपनी पत्नी या प्रेयसी) से आकर्षित होकर स्त्री द्वारा आलिंगित होने के लिए व्याकुल हो उठता है। इस प्रकार वह अपनी बुद्धि तथा जीवन लक्ष्य के ज्ञान को खो देता है। उस समय वह आध्यात्मिक अनुशीलन का प्रयास न करके अपनी पत्नी या प्रेयसी से अत्यधिक अनुरक्त हो जाता है और उसके लिए उपयुक्त घर आदि की व्यवस्था करने का प्रयास करता है। फिर वह इस घरबार में अत्यधिक व्यस्त हो जाता है और अपनी पत्नी तथा बच्चों की चितवन, उसके हावभाव तथा वाणी का दास बन जाता है। इस प्रकार वह कृष्णभावनामृत से वंचित होकर भौतिक जगत् के गहन अंधकार में गिर जाता है।

जब बद्धजीव को अपनी प्राणप्रिय पत्नी का आलिंगन प्राप्त होता है, तब वह श्रीकृष्णभावनामृत को भूल जाता है। वह अपनी पत्नी से जितना ही अनुरक्त होता है, उतना ही वह पारिवारिक जीवन में उलझता जाता है। बँगला कवि श्री बंकिमचंद्र का कथन है कि प्रेमी की दृष्टि में उसकी प्रेमिका सदैव अत्यन्त सुन्दर होती है, भले ही वह कुरूप क्यों न हो। यह आकर्षण 'देवमाया' कहलाता है। पुरुष और स्त्री का यह आकर्षण दोनों के ही बन्धन का कारण है। वास्तव में ये दोनों 'परा प्रकृति' से सम्बन्धित हैं किन्तु दोनों ही 'प्रकृति' (स्त्री) हैं। किन्तु दोनों ही परस्पर आनन्द लेना चाहते हैं। इसलिए कभी-कभी वे पुरुष कहलाते हैं। सत्य तो यह है कि इनमें से कोई भी पुरुष नहीं है, किन्तु ऊपर से इन्हें पुरुष कहा जा सकता है। ज्यों ही स्त्री तथा पुरुष का संयोग होता है उनका लगाव घर-बार, खेत, मित्रता तथा धन से हो जाता है। इस तरह वे दोनों भौतिक जगत् के जाल में पड़ जाते हैं। भुजलता उप गूढ़ का अर्थ है "लताओं के सदृश सुन्दर भुजाओं द्वारा आलिंगित"। और यह बताता है कि किस तरह बद्धजीव इस भौतिक जगत् से बँध जाता है। यौन जीवन के फल - पुत्र तथा पुत्रियाँ निश्चित ही आते हैं। भौतिक जगत् की यही राह है। (५.१४.२८ मूल तथा तात्पर्य)।

ऐसे मिथ्या स्वामी, योगी तथा अवतार जो भगवान् में विश्वास नहीं करते, पाखण्डी कहलाते हैं। वे स्वयं पतित तथा ठगे गये होते हैं क्योंकि वे आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग नहीं जानते, और उनके पास जो भी जाता है वह निश्चित ही ठगा जाता है। इस प्रकार से ठगे जाने पर वह कभी-कभी वैदिक नियमों के वास्तविक उपासकों (ब्राह्मणों या कृष्णभावनामृत वालों) की शरण में जाता है जो सभी को वेदोक्त आचार से भगवान् की पूजा करना बताते हैं। किन्तु रीतियों का पालन न कर सकने के कारण, ये धूर्त पुनः पतित होते हैं और शूद्रों की शरण लेते हैं जो विषय भोग



में लिप्त रहने में पटु हैं। वानर जैसे पशुओं में मैथुन अत्यन्त खुला होता है और ऐसे मैथुन प्रेमी व्यक्तियों को वानर की सन्तान कहा जा सकता है।

जलचर से पशु तक विकास की प्रक्रिया को पूरी करके जीव अन्ततोगत्वा मनुष्य रूप पाता है। विकास प्रक्रिया में तीनों गुण सदैव क्रियाशील रहते हैं। जो प्राणी सत्वगुण के द्वारा मनुष्य रूप को प्राप्त करते हैं वे अपने पूर्व पशु अवतार में गाय थे। जो रजोगुण द्वारा मनुष्य रूप प्राप्त करते हैं वे पूर्वजन्म में सिंह थे और जो तमोगुण के द्वारा मनुष्य रूप धारण करते हैं वे पूर्व जन्म में बन्दर थे। इस युग में उन लोगों को जो बन्दरों की योनि से आते हैं, डार्विन जैसे मानवविज्ञानशास्त्रियों द्वारा बन्दरों के वंशज माना जाता है। यहाँ हमें यह पता चलता है कि जो केवल यौनाचार में रुचि रखते हैं वे वास्तव में वानरों से श्रेष्ठ नहीं हैं। वानर यौन सुख भोगने में पटु होते हैं। कभी-कभी उनकी यौन ग्रन्थियाँ निकाल कर मनुष्यों में लगा दी जाती हैं जिससे मनुष्य बुढ़ापे में भी यौन सुख प्राप्त कर सकें। यह आधुनिक सभ्यता की प्रगति है। भारत से बहुत सारे बन्दरों को पकड़ कर योरुप भेजा गया जहाँ उनकी यौन ग्रन्थियाँ निकाल कर बूढ़े मनुष्यों में लगा दी गईं। वास्तविक रूप में जो वानर की सन्तान हैं वे यौनाचार द्वारा अपने कुलीन परिवारों का विस्तार करने में रुचि रखते हैं। वेदों में भी कुछ ऐसे अनुष्ठान हैं जिनके द्वारा यौन उत्कर्ष तथा उच्च लोकों में पहुँचा जा सकता है जहाँ पर देवता यौन सुख में लीन रहते हैं। देवताओं की भी मैथुन के प्रति प्रवृत्ति होती है क्योंकि सांसारिक सुख का मूल सिद्धान्त यही है।

सर्वप्रथम जब बद्धजीव सांसारिक कष्टों से छुटकारा पाने के उद्देश्य से तथाकथित स्वामियों, योगियों तथा अवतारियों की शरण में जाता है तो वह उनके द्वारा ठगा जाता है। किन्तु जब वह उनसे तुष्ट नहीं होता तो वह भक्तों एवं विशुद्ध ब्राह्मणों के पास जाता है जो उसे सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए ऊपर उठाने का प्रयास करते हैं। किन्तु अनुत्तरदायी बद्धजीव अवैध स्त्री संग, मादक द्रव्य सेवन, द्यूत क्रीड़ा तथा मांसाहार को वर्णित करने वाले नियमों का कड़ाई से पालन नहीं कर पाता। इस प्रकार वह पतित हो जाता है और अन्त में ऐसे मनुष्यों की शरण में जाता है जो वानर तुल्य हैं। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन में ऐसे वानर शिष्य विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन न कर सकने के कारण पतित हो जाते हैं और मैथुन आश्रित समाज बनाने का प्रयास करते हैं। यह इसका प्रमाण है कि ऐसे मनुष्य वानरों की सन्तान हैं जैसा कि डार्विन ने पुष्टि की है। इस श्लोक में इसलिये स्पष्ट कथन है - यथा वानर जाते: (५.१४.३०)

भौतिक राग, दुर्दमनीय इच्छाएँ, विषाद, क्रोध, निराशा, भय, झूठी प्रतिष्ठा की भूख-इन सबका मूल कारण गृहस्थजीवन में आसक्ति है और इन सब के कारण जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। (५.१८.१४ मूल)

कोई भी स्त्री जो अपनी रक्षा के लिए भौतिक पति की खोज करती है या कोई भी पुरुष जो पत्नी की कामना करता है, वह मोहग्रस्त है। (५.१८.१९)

यदि कोई पुरुष या स्त्री विपरीत लिंग वाले अयोग्य सदस्य के साथ संभोग करता है तो मृत्यु के बाद यमराज के दूत उसे तप्तसूर्मि नामक नरक में दण्ड देते हैं। वहाँ पर ऐसे पुरुष तथा स्त्री को कोड़ों से पीटा जाता है। पुरुष को तप्त लौह की बनी स्त्री प्रतिमा से और स्त्री को ऐसी ही पुरुष प्रतिमा से आलिंगित कराया जाता है। व्यभिचार के लिए ऐसा ही दण्ड है।

सामान्यत: पुरुष को अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री से संभोग नहीं करना चाहिए। वैदिक नियमों के अनुसार पराई स्त्री माता तुल्य होती है। अपनी माँ, बहन तथा पुत्री के साथ संभोग करना वर्जित है। यदि कोई पुरुष पराई स्त्री के साथ अवैध सम्बन्ध रखता है तो यह कार्य अपनी माता के साथ संभोग करने के तुल्य माना जाता है। ऐसे कार्य अत्यन्त पापपूर्ण हैं। यही नियम स्त्री पर भी लागू होता है। यदि वह अपने पति को छोड़ कर पर-पुरुष से संभोग करती है तो यह कार्य अपने पिता या पुत्र के साथ यौन सम्बन्ध रखने के समान है। अवैध स्त्री-पुरुष सम्बन्ध सदैव वर्जित है और जो भी ऐसा करता है उसे इस श्लोक में वर्णित दण्ड भोगना पड़ता है। (५.२६.२० मूल तथा तात्पर्य)।

जो पुरुष अन्धाधुन्ध, यहाँ तक कि पशुओं के साथ भी यौनाचार करता है, उसे मृत्यु के बाद वज्रकंटक शाल्मली नामक नरक में ले जाया जाता है। इस नरक में वज्र के समान कठोर काँटो से पूर्ण सेमल का वृक्ष है। यमराज के दूत पापी पुरुष को इस वृक्ष से लटका देते हैं और बलपूर्वक नीचे की और खींचते हैं जिससे काँटों से उसका शरीर बुरी तरह चिथड़ जाता है।

कामेच्छा इतनी प्रबल होती है कि कभी-कभी मनुष्य गाय के साथ अथवा स्त्री किसी कुत्ते के साथ संभोगरत होते हैं। ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियों को वज्रकंटक शाल्मली नामक नरक में डाल दिया जाता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन अवैध स्त्री-पुरुष यौनाचार का निषेध करता है। इन श्लोकों से हम यह समझ सकते हैं कि अवैध यौनाचार कितना पापमय है। कभी-कभी मनुष्यों को नरक के इन वर्णनों पर विश्वास नहीं होता। किन्तु किसी को विश्वास हो या नहीं, प्रत्येक कार्य का पालन प्रकृति के नियमों द्वारा किया जाता है। कोई इनसे बच नहीं सकता। (५.२६.२ मूल तथा तात्पर्य)



कोई दुर्लभ पुरुष ही जिसने श्रीकृष्ण की शुद्ध भक्ति अंगीकार की होती है, पापपूर्ण कर्मों के घासपात को जड़ से उखाड़ फेंक सकता है जिससे उनके पुन: अंकुरित होने की सम्भावना ही नहीं रहती। वह यह कार्य केवल भक्तिमय सेवा करके सम्पन्न कर सकता है ठीक वैसे ही जैसे सूर्य अपनी किरणों से कोहरे को तुरन्त नष्ट कर देता है। (६.१.१५ मूल)

किसी स्त्री से अवैध सम्बन्ध हो जाने का दोष यह है कि उससे सारे ब्राह्मणोचित सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। भारत में अब भी सेवकों का एक वर्ग है जो शूद्र कहलाता है जिनकी दासी स्त्रियाँ शूद्राणी कहलाती हैं। कभी-कभी कुछ अत्यन्त कामुक व्यक्ति इन दासियों तथा मेहतरानियों से सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं क्योंकि समाज के उच्च वर्गों में वे, सामाजिक विचारधारा द्वारा कड़ाई से वर्जित, स्त्री आखेटन की लत में नहीं पड़ सकते हैं। अजामिल एक योग्य युवक ब्राह्मण था। उसने वेश्या से सम्पर्क के कारण अपनी सारी ब्राह्मण-विशेषताएँ खो दीं। (६.१.२१)

यह पतित ब्राह्मण अजामिल दूसरों को अनावश्यक रूप से बन्दी बना कर, जुए में धोखाधड़ी करके या सीधे लूटपाट करके सताया करता था। इस तरीके से वह अपनी रोजी रोटी कमाता था और अपनी पत्नी तथा बच्चों का भरण पोषण करता था।

यह श्लोक बताता है कि किसी वेश्या से अवैध यौन सम्बन्ध रखने से मनुष्य कितना पतित हो सकता है। किसी पतिव्रता या अभिजात वर्ग की स्त्री से अवैध यौन सम्बन्ध कर पाना सम्भव नहीं। किसी पुंश्चली शूद्रा से ही ऐसा हो सकता है। समाज जितना ही अधिक वेश्यागमन तथा अवैध यौन सम्बन्ध को स्वीकृति प्रदान करता है वह उतना ही अधिक धोखेबाजों, चोरों, लुटेरों, जुआरियों तथा शराबियों को प्रोत्साहन देता है। अत: हम श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के सभी शिष्यों को पहला उपदेश यही देते हैं कि अवैध यौन सम्बन्ध से बचो, क्योंकि यह सभी घृणित कर्मों की जड़ है और इसका पीछा करते हुये एक के बाद एक मांसाहार, जुआ और नशाखोरी आते हैं। निश्चय ही इन पर नियन्त्रण अति कठिन है, किन्तु यदि कोई प्राणी श्रीकृष्ण के प्रति पूर्णतया आत्म-समर्पण कर दे तो यह पूरी तरह सम्भव है क्योंकि श्रीकृष्ण भक्त के लिए ये सभी घृणित आदतें शनै: शनै: नीरस पड़ जाती हैं। यदि किसी समाज में अवैध यौन-सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति दे दी जाए तो सारा समाज ही ध्वस्त हो जाएगा क्योंकि वह बदमाशों, चोरों, धोखेबाजों और इसी तरह के अन्य लोगों से भर जाएगा। (६.१.२२ मूल तथा तात्पर्य)।

हे राजन! यदि कोई पापी व्यक्ति भगवान् के किसी प्रामाणिक भक्त की सेवा करने लगता है और इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों में अपना जीवन न्यौछावर करना सीखता है तो वह तुरन्त पूरी तरह शुद्ध हो जाता है। केवल तपस्या, कठोर साधना, ब्रह्मचर्य और प्रायश्चित्त के अन्य साधनों द्वारा, जिनका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ, कोई पापी पवित्र नहीं बन सकता। (६.१.१६ मूल)

पुरातन काल में जब अजामिल ने, जो एक पूर्ण ब्रह्मचारी था, मदमत्त शूद्र और वेश्या का दृश्य देखा तो उस पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। आजकल ऐसा पापकृत्य अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है और हमें ऐसे ब्रह्मचारी छात्र की मनः स्थिति पर विचार करना चाहिए जो ऐसा आचार-व्यवहार देखता है। ऐसे ब्रह्मचारी के लिए अविचल चित्त बने रहना बहुत ही कठिन है जब तक कि वह विधि-विधानों का पालन करने में अत्यन्त दृढ़ न हो। इतने पर भी, यदि कोई पूर्ण गम्भीरता के साथ कृष्णभावनामृत स्वीकार कर लेता है तो वह पाप द्वारा प्रेरित इस उत्तेजना को वश में कर सकता है। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अवैध यौन सम्बन्ध, नशा, मांसाहार तथा जुआ खेलने का निषेध करते हैं। कलियुग में शराब पिये हुए कोई अर्धनग्न स्त्री किसी शराबी को अपने बाहुपाश में जकड़े हुए - ऐसा दृश्य सामान्य है वह भी विशेष करके पश्चिमी देशों में। ऐसा दृश्य देख लेने के बाद अपने को नियन्त्रण में रख पाना कठिन है। फिर भी यदि भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से कोई व्यक्ति विधि-विधानों का पालन करता रहता है और हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करता है तो निश्चय ही श्रीकृष्ण उसकी रक्षा करेंगे। श्री कृष्ण कहते भी हैं कि उनके भक्त का कभी भी नाश नहीं होता (कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त प्रणश्यति)। अतः श्रीकृष्णभावनामृत के अभ्यासकर्ता प्रत्येक शिष्य को आदेशानुसार विधि-विधानों का पालन करना चाहिए और भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने में दृढ़ रहना चाहिए। डर की कोई आवश्यकता नहीं। अन्यथा व्यक्ति की स्थिति बड़ी ही भयावह है, विशेषकर इस कलियुग में (६.१.६१)।

जब-तक मनुष्य ज्ञान, धैर्य एवं उपयुक्त शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक आचरण में बहुत शक्तिशाली न हो तब तक कामेच्छाओं पर विजय पाना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। इस प्रकार एक पुरुष द्वारा एक नवयुवती को आलिंगन करते हुए और व्यवहारतः यौन जीवन के लिए जो कुछ आवश्यक है वह सभी कुछ करते देखकर, पूर्ण रूप से योग्यवान एक ब्राह्मण, जैसा कि पहले वर्णित हुआ है, वह भी अपनी कामुक वासनाओं पर नियंत्रण नहीं कर सका और उनका अनुसरण करने से अपने को रोक नहीं पाया। भौतिक जीवन के प्रबल वेग के कारण, आत्म-नियंत्रण करना तब तक अत्यन्त कठिन है जब तक कि व्यक्ति विशेषरूप से भक्तियोग के माध्यम से भगवान्



की सुरक्षा के अधीन नहीं हो जाता। (६.१.६२)

जैसा कि श्रीमद्भागवतम् में कहा गया है, यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हितुच्छम् - लोग पारिवारिक जीवन के प्रति केवल यौन सुख के लिए आसक्त रहते हैं। ऐसे लोग अपने सांसारिक कामकाज के कारण सदैव विभिन्न प्रकार से व्यथित होते रहते हैं और सारे दिन के कठिन श्रम के उपरान्त उनका एकमात्र मनोरंजन या सुख यही होता है कि रात में सोएं और यौनाचार में लिप्त हों। निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः रात में भौतिक गृहस्थ या तो निद्रा में रहते हैं या मैथुन में। दिवा चार्थेहया राजन कुटुम्ब भरणेन वा - दिन में वे अर्थोपार्जन में लगे रहते हैं और यदि धन मिल जाता है तो वे उसे अपने परिवार के भरण पोषण में व्यय करते हैं। (६.३.२५)

यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि संभोग की ऐसी सुविधा भगवान् की कृपा से मिलती है पर यह सुविधा उन्नत भक्तों को नहीं दी जाती क्योंकि वे भौतिक वासना से मुक्त होते हैं (अन्याभिलाषिता शून्यं)। इस सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि जो अमरीकी लड़के लड़कियाँ श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन में लीन हैं, यदि वे भगवान् की प्रेमाभक्ति का परम लाभ प्राप्त करने के लिए कृष्णभावनामृत में प्रगति करना चाहते हैं तो उन्हें संभोग सुविधा में रत रहने से अपने को रोकना होगा। इसलिये हम परामर्श देते हैं कि कम से कम अवैध यौन सम्बन्ध से तो बचो। यदि कामोपभोग के सुअवसर उपलब्ध हैं तो भी व्यक्ति को स्वेच्छा से केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही संभोग करना चाहिए, किसी अन्य उद्देश्य के लिये नहीं। कर्दम मुनि को भी कामोपभोग के सुअवसर दिये गये थे पर इसके लिए उनके मन में अत्यन्त अल्प इच्छा थी। अतः देवहूति के गर्भ से सन्तानें उत्पन्न कर लेने के उपरान्त उन्होंने पूर्ण संन्यास ले लिया। तात्पर्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति अपने वास्तविक घर परमधाम को वापस जाना चाहता है तो उसे यौन जीवन से स्वेच्छापूर्वक अपने को विरत कर लेना चाहिए। यौनाचार उतना ही स्वीकार किया जाना चाहिए जितना आवश्यक हो, असीमित नहीं।

अतः यद्यपि यौन जीवन भौतिक जगत् में सर्वोच्च भोग है और भगवान् की कृपा से संभोग सुख की सुविधा मिल भी जाए किन्तु इसमें अपराध करने का खतरा बना रहता है। (६.४.५२)

गृहस्थ होना तब तक अत्यन्त भयावह है जब तक पुरुष प्रशिक्षित न हो और पत्नी अपने पति की अनुगामिनी न हो। (६.१८.४०)

स्त्री का मुख शरदकालीन खिले हुए कमल के फूल के समान आकर्षक तथा सुन्दर होता है। उसके शब्द अति मधुर और कर्णप्रिय होते हैं, किन्तु यदि उसके हृदय

का अध्ययन किया जाए तो पता चलेगा कि वह उस्तरे की धार के समान अत्यन्त प्रखर है। ऐसी परिस्थितियों में भला कौन स्त्री के व्यवहार को समझ सकता है?

कश्यप मुनि द्वारा भौतिक दृष्टि से स्त्री का बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। स्त्रियाँ प्राय: फेयर सेक्स के नाम से जानी जाती हैं और वे अपनी तरुणावस्था में विशेषरूप से सोलह या सत्रह वर्ष की आयु में पुरुषों के लिए अत्यधिक आकर्षक होती हैं। इसलिये स्त्री के मुख की उपमा शरदकालीन खिले कमल के फूल से दी गई है। जिस प्रकार कमल का फूल शरद में अत्यन्त सुन्दर लगता है उसी प्रकार तरुणावस्था को प्राप्त स्त्री भी अतीव आकर्षक होती है। संस्कृत भाषा में स्त्री की वाणी को नारी स्वर कहते हैं क्योंकि सामान्यत: वह गाती है और उनका गान अत्याकर्षक होता है। आजकल सिनेमा कलाकारों, विशेषकर स्त्री गायिकाओं की विशेष माँग है। उनमें से कुछ तो मात्र गायन के बल पर प्रचुर धन कमाती हैं। इसलिये, जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है, स्त्री का संगीत घातक है क्योंकि संन्यासी उसका शिकार हो सकता है। संन्यास का अर्थ स्त्री-संग का परित्याग है, किन्तु यदि संन्यासी स्त्री की वाणी सुनता है और उसके सुन्दर मुखमण्डल को देखता है तो वह निश्चित रूप से उसकी ओर आकृष्ट होगा और उसका पतन हो जाएगा। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। यहाँ तक कि विश्वामित्र मुनि भी मेनका के शिकार हुए। अत: जो व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति करना चाहता है उसे चाहिए कि वह न तो स्त्री का मुख देखे और न उसकी वाणी सुने। स्त्री के मुख को देखकर उसकी प्रशंसा करना और उसकी वाणी सुनकर उसके गायन की प्रशंसा करना ब्रह्मचारी या संन्यासी का सूक्ष्म पतन है। अत: कश्यप मुनि द्वारा स्त्री के अंगों का वर्णन अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

जब स्त्री का शरीर सुन्दर है, उसका मुख आकर्षक और वाणी मधुर है तो वह पुरुष के लिए स्वाभाविक ही जाल के समान है। शास्त्रों का उपदेश है कि यदि ऐसी स्त्री पुरुष की सेवा करने आये तो उसे घास से ढका अन्धकूप समझना चाहिए। खेतों के बीच ऐसे अनेक कुएँ होते हैं और मनुष्य उनसे परिचित न होने से उनमें गिर जाते हैं। अत: ऐसे अनेक निर्देश हैं। चूँकि संसार के सारे आकर्षण स्त्री पर आधारित हैं, अत: कश्यप मुनि ने सोचा, "ऐसी स्थिति में भला स्त्री के हृदय को कौन जान सकता है?" चाणक्य पण्डित का भी उपदेश है - विश्वासोनैव कर्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु च - "दो प्रकार के व्यक्तियों पर कभी विश्वास न करें - राजनीतिज्ञ तथा स्त्री।" ये शास्त्रों की अधिकारिक शिक्षाएँ हैं अत: स्त्रियों के साथ व्यवहार करने में हमें विशेष सतर्कता बरतनी चाहिए।



कभी-कभी हमारे श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन की आलोचना की जाती है कि इसमें स्त्री और पुरुष मिलते-जुलते रहते हैं, किन्तु कृष्णभावनामृत तो हर एक के लिए है। चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है - स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपियान्ति परांगतिम् - चाहे स्त्री हो, शूद्र या वैश्य, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय होने को छोड़ दें, प्रत्येक जीव भगवान् के धाम जाने के लिए उपयुक्त है यदि वह गुरु तथा कृष्ण के उपदेशों का कठोरता से पालन करता है। अत: हम श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के समस्त सदस्यों से, चाहे स्त्री हों या पुरुष, यह आग्रह करते हैं कि वे भौतिक शरीर के प्रति आकृष्ट न होकर श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट हों। तभी सब कुछ ठीक रहेगा, अन्यथा भय है। (६.१८.४१ मूल तथा तात्पर्य)

अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए स्त्रियाँ पुरुषों के साथ ऐसा व्यवहार करती हैं मानो वे उनके परम प्रिय हों, किन्तु वास्तव में उनका कोई प्रिय नहीं होता। स्त्रियों को परम साधु स्वभाव वाला माना जाता है, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए वे अपने पति, पुत्र या भाई की भी हत्या कर सकती हैं या अन्यों से करवा सकती हैं।

कश्यप मुनि ने स्त्रियों के स्वभाव का विशेषत: अच्छा अध्ययन किया है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही स्वार्थी होती हैं, अत: उनकी रक्षा सभी तरह से की जानी चाहिए जिससे उनका यह अत्यधिक स्वार्थी स्वभाव प्रकट न हो। स्त्रियों को पुरुषों द्वारा सुरक्षा दिये जाने की आवश्यकता होती है। बचपन में स्त्री की रक्षा उसके पिता द्वारा, युवावस्था में उसके पति द्वारा और वृद्धावस्था में उसके वयस्क पुत्रों द्वारा होनी चाहिए। यही मनु का आदेश है। उनका कथन है कि स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए। स्त्रियों की रक्षा इसलिये की जानी चाहिए जिससे उनकी स्वाभाविक स्वार्थपरता प्रकट न हो पाए। इस काल में भी ऐसी अनेक घटनाएं हुई हैं जिनमें स्त्रियों ने जीवन बीमा का लाभ उठाने के लिए अपने पतियों की हत्या की है। यह स्त्रियों की आलोचना नहीं अपितु उनके स्वभाव का व्यावहारिक अध्ययन है। देहात्मबुद्धि के द्वारा ही स्त्री या पुरुष की ऐसी सहजप्रवृत्तियों का प्राकट्य होता है। जब स्त्री या पुरुष को आध्यात्मिक चेतना प्राप्त हो जाती है तो उसकी देहात्मबुद्धि व्यवहारिक रूप से समाप्त हो जाती है। हमें समस्त स्त्रियों को आध्यात्मिक इकाइयों (अहम् ब्रह्मास्मि) के रूप में देखना चाहिए जिनका एकमात्र धर्म श्रीकृष्ण को तुष्ट करना है। तब इस शरीर को धारण करने से उत्पन्न होने वाले गुणों का प्रभाव हम पर नहीं होगा। (६.१८.४२ मूल तथा तात्पर्य)।

यदि कोई प्रमाणित श्रोता गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की लीलाओं का जो कि

वासनापूर्ण लगती हैं, श्रवण करता है तो उसके हृदय की वे वासनापूर्ण इच्छाएँ समाप्त हो जाएंगी जो बद्धजीव के हृदय रोग तुल्य हैं और वह भगवान् का परम भक्त बन जाएगा। (७.१.३०)

गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पूर्व व्यक्ति को गुरु के संरक्षण में, उसके स्थान पर जिसे गुरुकुल कहते हैं, ब्रह्मचारी के रूप में प्रशिक्षित होना चाहिए। ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तो गुरोर्हितम् (भागवतम् ७.१२.१) ब्रह्मचारी को प्रारम्भ से ही गुरु के लाभार्थ हर वस्तु का त्याग करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। ब्रह्मचारी से कहा जाता है कि वह द्वार-द्वार जाकर भिक्षाटन करे, समस्त स्त्रियों को माता कहकर पुकारे और जो भी सामग्री वह एकत्र करे उसे गुरु के लाभार्थ दे दे। इस तरह वह यह सीखता है कि अपनी इन्द्रियों को किस तरह वश में रखा जाए और हर वस्तु गुरु को अर्पित कर दी जाए। जब वह पूरी तरह से प्रशिक्षित हो जाए, तो वह चाहे तो उसे विवाह करने की अनुमति दी जाती है। इस तरह वह सामान्य गृहस्थ नहीं होता जो केवल अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करना जानता है। प्रशिक्षित गृहस्थ क्रमशः गृहस्थ जीवन त्यागकर आध्यात्मिक जीवन में अधिकाधिक प्रबुद्ध होने के लिए जंगल जा सकता है और अन्त में संन्यास ग्रहण कर सकता है। प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता को बतलाया कि मनुष्य को समस्त भौतिक चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए जंगल चले जाना चाहिये। हित्वात्मपातंगृहमन्ध कूपम्। मनुष्य को चाहिए कि अपना घर-बार छोड़ दे क्योंकि वह भौतिक जीवन के गहनतम भागों में गिरने का स्थान है। इसलिए पहला परामर्श है कि मनुष्य गृहस्थ जीवन (गृहमन्ध कूपम्) का परित्याग करे। किन्तु, यदि वह अनियन्त्रित इन्द्रियों के कारण गृहस्थ जीवन रूपी अन्ध कूप में पड़ा रहना चाहता है तो वह अपनी पत्नी, बच्चों, नौकरों, घर, धन आदि की स्नेह-रूपी रस्सियों में अधिकाधिक बँधता ही जाता है। ऐसा व्यक्ति भौतिक बन्धन से कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए बच्चों को जीवन के प्रारम्भ से ही उच्चकोटि का ब्रह्मचारी बनने की शिक्षा दी जानी चाहिए। तभी वे भविष्य में गृहस्थ जीवन का परित्याग कर सकेंगे। (७.६.९)

ऐसा व्यक्ति जो अपने परिवार को परम प्रिय है और जिसका अन्तःकरण सदैव पारिवारिक चित्रों से पूरित रहता है, भला उनका संग कैसे त्याग सकता है? विशेषतः पत्नी सदैव दयालु तथा सहानुभूतिपूर्ण होती है और एकान्त में पति को प्रसन्न करती है। भला ऐसी प्रिय एवं स्नेही पत्नी की संगति को कौन छोड़ सकता है? छोटे-छोटे बच्चे तोतली बोली बोलते हैं जो सुनने में अतीव मनोहारी लगती है और उनका स्नेही



पिता सदैव उनकी मीठी बोली के बारे में सोचता रहता है। भला वह उनका संग कैसे छोड़ सकता है? व्यक्ति के वृद्ध माता-पिता तथा उसके पुत्र-पुत्री भी अति प्रिय होते हैं। पुत्री तो विशेष रूप से पिता की लाड़ली होती है और जब वह अपनी ससुराल में होती है तो वह उसके मन में सदा रहती है। भला ऐसी संगति को कौन छोड़ना चाहेगा? इसके अलावा भी, गृहस्थी के मामलों में अनेक सजावटी सामान, अनेक पशु तथा नौकर होते हैं। भला ऐसे सुख सुविधा के साधनों को कौन छोड़ सकता है? आसक्त गृहस्थ उस रेशम के कीड़े के समान होता है जो कोश बुनकर उसमें बन्दी हो जाता है और फिर उसमें से निकल नहीं पाता।

मात्र दो महत्वपूर्ण इन्द्रियों - जननांग तथा जीभ की तुष्टि हेतु मनुष्य भौतिक परिस्थिति के द्वारा बंध जाता है। तो वह उससे कैसे निकले?

गृहस्थी के मामलों में पहला आकर्षण सुन्दर तथा मनोहर पत्नी का होता है, जो गृहस्थी के प्रति आकर्षण को अधिकाधिक बढ़ाती है। मनुष्य दो मुख्य इन्द्रियों से अपनी पत्नी के साथ आनन्द लूटता है - जीभ तथा जननांग। पत्नी अति मृदु वचन बोलती है। यह निश्चित रूप से एक आकर्षण है। फिर वह जीभ को तुष्ट करने वाला स्वादिष्ट भोजन बनाती है और जब जीभ तुष्ट हो जाती है तो अन्य इन्द्रियों में बल आता है, विशेषतया जननांगो में। इस तरह पत्नी संभोग में आनन्द प्रदान करती है। गृहस्थ जीवन का अर्थ है यौन जीवन (यन्मैथुनादिगृहमेधि सुखं हि तुच्छम्) जीभ से इसे प्रोत्साहन मिलता है। फिर बच्चे आते हैं। बच्चा मीठी तोतली वाणी से आनन्द प्रदान करता है। और जब पुत्र-पुत्रियाँ बड़े हो जाते हैं तो मनुष्य उनकी शिक्षा तथा विवाह में व्यस्त हो जाता है। फिर उसके अपने माता-पिता होते हैं। जिनकी देखभाल करनी होती है। और उसे सामाजिक परिवेश की भी चिन्ता होती है तथा वह अपने भाइयों, बहनों को प्रसन्न करने में लग जाता है। मनुष्य गृहस्थी के मामलों में इतना अधिक फँसता जाता है कि उन्हें छोड़ पाना प्रायः असम्भव होता है। अतः गृहस्थ गृहम अंध कूपम् बन जाता है, अर्थात एक अंधकारमय कुँआ जिसमें व्यक्ति गिर पड़ा हो। ऐसे व्यक्ति के लिये निकल पाना तब तक अत्यधिक कठिन है जब तक उसकी सहायता एक बलशाली व्यक्ति यानि आध्यात्मिक गुरु द्वारा नहीं की जाती जो आध्यात्मिक निर्देश रूपी मजबूत रस्सी से उस गिरे हुए व्यक्ति को मदद करते हैं। एक पतित व्यक्ति को इस रस्सी की सहायता लेनी चाहिये और फिर आध्यात्मिक गुरु या भगवान् कृष्ण, उसे अंधकारमय कूँएं से निकाल लेंगे। (७.६.१३ मूल तथा तात्पर्य)

हे भगवान्! व्यक्ति के जन्म के प्रारम्भ से ही व्याप्त कामेच्छाओं के कारण उसकी इन्द्रियों, मन, जीवन, शरीर, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, ऐश्वर्य, शक्ति, स्मरणशक्ति तथा सत्यवादिता के कार्य लुप्त हो जाते हैं।

जैसा कि श्रीमद्भागवतम् में वर्णित है, कामम् ह्रद्रोगम्। भौतिकवादी जीवन का अर्थ है कि व्यक्ति कामेच्छा नामक घातक रोग से पीड़ित है। मुक्ति का अर्थ है कामेच्छाओं से मुक्ति, क्योंकि इन इच्छाओं के फलस्वरूप ही व्यक्ति को जन्म-मरण के चक्र में फँसे रहना पड़ता है। जब तक व्यक्ति की कामेच्छायें तुष्ट नहीं होतीं, उसे उन्हें पूरा करने के लिये बार-बार जन्म लेना पड़ेगा। अत: भौतिक इच्छाओं के फलस्वरूप, व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कार्य करता है और विभिन्न प्रकार के शरीर ग्रहण करता है जिनसे वे इच्छाओं को तुष्ट करने का प्रयास कर सके, जो कभी तुष्ट नहीं होतीं। एकमात्र उपाय है भक्तिमय सेवा प्रारम्भ करना, जो व्यक्ति के समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो लेने पर प्रारम्भ होती है: अन्याभिलाषिता शून्यम्। अन्याभिलाषिता अर्थात "भौतिक इच्छायें" तथा शून्यम् अर्थात "से मुक्त।" आध्यात्मिक आत्मा के आध्यात्मिक कार्य तथा आध्यात्मिक इच्छायें होती हैं, जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने बताया है : मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयी। भगवान् की सेवा के प्रति अहैतुकी भक्ति ही एकमात्र आध्यात्मिक इच्छा है। किन्तु इस इच्छा को पूरा करने के लिये व्यक्ति को समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होना पड़ेगा। (७.१०.८.)

श्रीनारद उवाच
ब्रह्मचारी गुरुकुलेवसन् दान्तो गुरोर्हितम्।
आचरन् दासवन्नीचो गुरौ सुदृढ़ सौह्रद:।।

नारदमुनि ने कहा: विद्यार्थी को चाहिए कि अपनी इन्द्रियों को पूरी तरह वश में करने का अभ्यास करे। उसे विनम्र होना चाहिए और उसमें गुरु के लिए दृढ़ मैत्री की प्रवृत्ति होनी चाहिए। ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह केवल गुरु के लाभ हेतु महान व्रत के साथ गुरुकुल में रहे। (७.१२.१ मूल)

(इस श्लोक में पाँच मुख्य बातें हैं (१) वसन् - ब्रह्मचारी को गुरु के आश्रम में रहना चाहिए (२) दान्त: उसे इन्द्रिय संयम सीखना चाहिए। (३) गुरो: हितम् - उसे केवल अपने गुरु के लाभ हेतु कार्य करना चाहिए। (४) आचरन्दासवत्नीच: - उसे एक तुच्छ नौकर की तरह आचरण करना चाहिए तथा (५) गुरौ सुदृढ़सौह्रद: - उसमें अपने गुरु के लिए दृढ़ मैत्री भाव होना चाहिए।)



ब्रह्मचारी को अत्यन्त शिष्ट तथा भद्र होना चाहिए एवं आवश्यकता से अधिक न तो खाना चाहिए, न संग्रह करना चाहिए। उसे सदैव क्रियाशील तथा दक्ष होना चाहिए और अपने गुरु तथा शास्त्र के आदेशों पर पूरी तरह विश्वास करना चाहिए। उसे अपनी इन्द्रियों को संयमित रखते हुए जितना आवश्यक हो उतना ही स्त्रियों या स्त्रियों द्वारा नियन्त्रित होने वालों से मेल करना चाहिए।

ब्रह्मचारी को चाहिए कि स्त्रियों से या स्त्री-कामी व्यक्तियों से मिलने-जुलने के प्रति सावधान रहे। यद्यपि भिक्षाटन करते समय उसे स्त्रियों से तथा स्त्री-कामी पुरुषों से बात करना आवश्यक है किन्तु यह सान्निध्य अति संक्षिप्त होना चाहिए और केवल भिक्षा माँगने के संदर्भ में ही उनसे बातें करनी चाहिए। ब्रह्मचारी को उन व्यक्तियों का संग करते समय अति सतर्क रहना चाहिए जो स्त्रियों के प्रति आसक्त हैं। (७.१२.६ मूल तथा तात्पर्य)

ब्रह्मचारी या गृहस्थ आश्रम स्वीकार न करने वाले को स्त्रियों से या स्त्रियों के विषय में बातें करने से कठोरतापूर्वक बचना चाहिए क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि वे संन्यासी तक के मन को चलायमान कर सकती हैं।

ब्रह्मचर्य का मूलत: अर्थ है कि विवाह न करने का प्रण ही नहीं अपितु दृढ़ता से कौमार्य पालन करने का व्रत लेना (बृहद्व्रत)। ब्रह्मचारी या संन्यासी को स्त्रियों से बातें करने या ऐसा साहित्य पढ़ने से बचना चाहिए जिसमें पुरुष तथा स्त्री के बीच बातें हों। स्त्रियों से संग का निषेध करने वाला आदेश आध्यात्मिक जीवन का आधारभूत सिद्धान्त है। किसी भी वैदिक ग्रंथ में स्त्रियों का संग करने या उनसे बात करने की शिक्षा नहीं दी गई है। सम्पूर्ण वैदिक प्रणाली मनुष्य को यही शिक्षा देती है कि यौन जीवन से अलग रहा जाए जिससे वह क्रमश: ब्रह्मचर्य से गृहस्थ, गृहस्थ से वानप्रस्थ और वानप्रस्थ से संन्यास में जा सके और इस तरह भौतिक भोग को छोड़ दे जो इस भौतिक जगत् में बन्धन का आदि कारण है। बृहद्व्रत उस व्यक्ति को इंगित करता है जिसने विवाह न करने का निश्चय कर लिया हो, अर्थात दूसरे शब्दों में वह आजीवन यौन जीवन में लिप्त न हो। (७.१२.७ मूल तथा तात्पर्य)

स्त्री की उपमा अग्नि से दी गई है और पुरुष की घृत पात्र से। इसलिए पुरुष को चाहिए कि एकान्त स्थान में अपनी पुत्री के भी साथ रहने से बचे। इसी तरह उसे अन्य स्त्रियों की संगति से भी बचना चाहिए। केवल आवश्यक कार्यों के लिए स्त्रियों का संग किया जाए, अन्यथा नहीं।

यदि घृत पात्र तथा अग्नि पास पास रखे जाएँ तो पात्र के भीतर का घृत अवश्य ही पिघलेगा। स्त्री की तुलना अग्नि से की गई है और पुरुष की घृत पात्र से। इन्द्रियों को संयमित करने में कोई कितना ही प्रवृद्ध क्यों न हो, उसके लिए स्वयं को स्त्री की उपस्थिति में वश में रख पाना लगभग असंभव है, भले ही वह स्त्री उसकी पुत्री, माँ या बहन क्यों न हो। वस्तुत: यदि वह संन्यास आश्रम में भी हो तो भी उसका मन उत्तेजित होता है। इसलिए वैदिक सभ्यता में स्त्रियों तथा पुरुषों के मिलने जुलने पर रोक लगाई जाती है। यदि कोई व्यक्ति स्त्री तथा पुरुष के मध्य मिलने जुलने को रोकने के आधारभूत सिद्धान्त को नहीं समझ सकता तो उसे पशु मानना चाहिए। इस श्लोक का यही तात्पर्य है। (७.१२.९ मूल तथा तात्पर्य)।

जब तक जीव को पूरी तरह आत्म-साक्षात्कार नहीं होता - जब तक वह अपने शरीर, जो मात्र आदि शरीर तथा इन्द्रियों की परछाईं है, के साथ अपनी पहचान की भ्रान्त धारणा से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह पुरुष तथा स्त्री के मध्य द्वैत से उबारा नहीं जा सकता। इस तरह पूरी सम्भावना है कि वह पतित हो जाएगा क्योंकि उसकी बुद्धि मोहित है।

यहाँ दूसरी महत्वपूर्ण चेतावनी है कि पुरुष अपने को स्त्री के आकर्षण से बचाए। कोई अपने को पूर्ण न समझे और इस शास्त्रीय आदेश को भूले नहीं कि मनुष्य को अपनी पुत्री, माता से लेकर बहन तक के साथ रहते समय सावधान रहना चाहिए, अन्य स्त्रियों की तो बात ही क्या। (७.१२.१० मूल तथा तात्पर्य)।

इस मनुष्य जीवन में स्त्री तथा पुरुष यौन आनन्द के लिए मिलते हैं किन्तु हमने वास्तविक अनुभव से यह देखा है कि उनमें से कोई भी सुखी नहीं है।

जैसा कि प्रह्लाद महाराज ने कहा है यन्मैथुनादि ग्रहमेधि सुखं हि तुच्छम्। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही यौन आनन्द की तलाश करते हैं और जब वे विवाह द्वारा मिल जाते हैं तो कुछ काल तक सुखी रहते हैं किन्तु अन्तत: मतभेद हो जाता है और विलगाव तथा सम्बन्ध-विच्छेद के अनेक मामले देखे जाते हैं। यद्यपि हर पुरुष तथा हर स्त्री यौन संयोग के माध्यम से जीवन का आनन्द लेने के लिए उत्सुक रहता है किन्तु परिणाम निकलता है विषमता और क्लेश। विवाह की संस्तुति पुरुषों तथा स्त्रियों को सीमित यौन जीवन की छूट के लिए की जाती है। इसकी संस्तुति भगवान् ने भगवद्गीता में भी की है। धर्माविरुद्ध भूतेषु कामोऽस्मि - यौन जीवन जो धर्म के विरुद्ध नहीं है वह श्रीकृष्ण हैं। हर जीव यौन जीवन का आनन्द उठाने के लिए सदैव उत्सुक रहता है क्योंकि भौतिकतावादी जीवन, भोजन करना, सोना, संभोग तथा भय से निर्मित है। (७.१३.२६ मूल तथा तात्पर्य)।



यौन बिल्कुल आवश्यक नहीं है, यद्यपि जिसे इसकी नितान्त आवश्कता होती है उसे गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने दिया जाता है। यह गृहस्थ जीवन भी शास्त्रों तथा गुरु के द्वारा नियन्त्रित होता है। हमें तथाकथित आरामदेह स्थिति उत्पन्न न करके तपस्या करने की तैयारी करनी चाहिए। जीवन के चरम लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनुष्य को इस तरह से रहना चाहिए। (७.१४.१ मूल तथा तात्पर्य)

हर पति अपनी पत्नी से अत्यधिक अनुरक्त रहता है। (७.१४.१२)

हे राजन! आत्मतुष्ट व्यक्ति केवल जल पीकर सुखी रह सकता है। किन्तु जो व्यक्ति इन्द्रियों द्वारा विशेष करके जिह्वा तथा जननांगो द्वारा प्रेरित होता है उसे अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए घरेलू कुत्ते का स्थान स्वीकार करना पड़ता है।

इन्द्रियों के लिए लोभ के कारण आत्मतुष्ट न रहने वाले भक्त या ब्राह्मण की आध्यात्मिक शक्ति, शिक्षा, तपस्या तथा प्रसिद्धि क्रमश: क्षीण हो जाती हैं और उसका ज्ञान धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है। (७.१५.१८-१९ मूल तथा तात्पर्य)।

इस द्वैतपूर्ण जगत में, पारिवारिक जीवन के कारण मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन या ध्यान नष्ट हो जाता है। इस तथ्य को विशेषरूप से समझते हुए मनुष्य को बिना हिचक के संन्यास आश्रम स्वीकार कर लेना चाहिए। (स्मृति साहित्य से ७.१५.३०के तात्पर्य में उद्धृत)।

यदि कोई यह सोचता है कि वह संन्यास के लिये अयोग्य है तो कोई हानि नहीं है। यदि वह अत्यधिक कामातुर है तो उसे ऐसे आश्रम में प्रविष्ट होना चाहिए जहाँ सम्भोग की अनुमति है - अर्थात उसे गृहस्थाश्रम में जाना चाहिए। यदि कोई एक स्थान पर अत्यन्त अशक्त जान पड़े तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह मायारूपी घड़ियाल से लड़ना बन्द कर दे। उसे श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए और उसी के साथ वह गृहस्थ बना रह सकता है, यदि वह यौन भोग में लिप्त रहने से संतुष्ट हो। संघर्ष बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है - स्थाने स्थिता: श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि: कोई अपने अनुकूल किसी भी आश्रम में रह सकता है, उसके लिए संन्यास ग्रहण करना अनिवार्य नहीं है। यदि वह कामोत्तेजित है तो वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकता है। किन्तु उसे संघर्ष जारी रखना चाहिए। जो दिव्य पद को प्राप्त नहीं है उसके लिए कृत्रिम संन्यास ग्रहण करना कोई महत्व नहीं रखता। यदि संन्यास उपयुक्त नहीं है तो वह गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर माया के विरुद्ध बलपूर्वक संघर्ष कर सकता है। लेकिन उसे संघर्ष बन्द करके भाग नहीं जाना चाहिए। (८.२.३०)

जो लोग आसुरी प्रवृत्ति बनाये रखते हैं वे स्त्री के सौन्दर्य से सम्मोहित हो जाते हैं किन्तु जो लोग कृष्णभावनामृत में आगे बढ़े हुए हैं या यहाँ तक की जो सतोगुणी हैं, वे भी मोहित नहीं होते। (८.१२.१५)

जो लोग कामेच्छाओं के वशीभूत हैं वे स्त्री के आकर्षक अंगों की प्रशंसा करते हैं। (८.१२.१६)

जब स्त्री तथा पुरुष काम भावनाओं का आदान-प्रदान करते हैं तो दोनों ही शिकार हो जाते हैं और इस तरह वे विविध प्रकार से इस संसार से बद्ध हो जाते हैं। (८.१२.२२)

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि मोहिनी मूर्ति शिवजी को अनेक स्थलों तक घसीट लाई विशेष कर जहाँ ऋषि रहते थे जिससे उन्हें शिक्षा दी जा सके कि उनके शिवजी एक सुन्दरी के पीछे पागल हैं। इस प्रकार यद्यपि वे सभी ऋषि तथा साधु पुरुष थे उन्हें अपने आपको मुक्त नहीं समझना चाहिए अपितु सुन्दर स्त्रियों से अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। सुन्दरी की उपस्थिति में किसी को अपने आपको मुक्त नहीं समझना चाहिए। (८.१२.३४)

यदि किसी को ब्रह्मचर्यपालन द्वारा वीर्य रक्षा करने का प्रशिक्षण दिया जाए तो वह स्त्री की सुन्दरता द्वारा आकृष्ट नहीं होता। यदि कोई ब्रह्मचारी बना रह सके तो वह संसार के अनेक कष्टों से स्वयं को बचा सकता है। संसार का अर्थ है मैथुन सुख का आनन्द उठाना (यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखम् हि तुच्छम्)। यदि मनुष्य को यौन जीवन की शिक्षा दी जाए और वीर्य रक्षा करने के लिए उसे प्रशिक्षित किया जाए तो वह भौतिक जीवन के संकट से बच जाता है। (८.१२.३५)

ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं एक तो वे जो घर लौट कर विवाह करते हैं और गृहस्थ बन जाते हैं और दूसरे वे जो ब्रहद्व्रत कहलाते हैं और आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने का व्रत लेते हैं। ब्रहद्व्रत ब्रह्मचारी गुरु के स्थान से वापस नहीं आता, अपितु वहीं रहता है और बाद में सीधे संन्यास ग्रहण कर लेता है। (९.४.१)

भवबंधन से मोक्ष चाहने वाले पुरुष को यौन जीवन में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की संगति छोड़ देनी चाहिए और अपनी इन्द्रियों को किसी बाह्यकार्य (देखने, सुनने, बोलने, चलने आदि) में नहीं लगाना चाहिए। उसे सदैव एकान्त स्थान में रहना चाहिए और मन को अनन्त भगवान् के चरणकमलों पर स्थिर करना चाहिए। यदि संगति करनी ही हो तो उसे समान प्रकार के कार्य में लगे व्यक्तियों की संगति करनी चाहिए।



सौभरि मुनि अपने अनुभव से प्राप्त निष्कर्षों को हमारे समक्ष रखते हुए उपदेश देते हैं कि भवसागर को पार करने की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को यौन जीवन और धन संग्रह करने में रुचि रखने वाले मनुष्यों की संगति त्याग देनी चाहिए।

जो व्यक्ति भवबन्धन से पूर्ण छुटकारा पाना चाहता है उसे भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगना चाहिये। उसे विषयी पुरुषों की संगति नहीं करनी चाहिए। हर भौतिकतावादी व्यक्ति विषय (यौन) में रुचि लेता है। इस तरह सीधे-सादे शब्दों में यह परामर्श दिया गया है कि साधु-पुरुष को भौतिकतावादी प्रवृत्ति वाले लोगों की संगति से बचकर रहना चाहिए। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर भी आचार्यों की सेवा करने के लिए कहते हैं और यदि किसी की संगति करनी ही है तो भक्तों की संगति करनी चाहिए (तांदेर चरण सेवि भक्तसने वास)। भक्त उत्पन्न करने के लिए श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन अपने अनेक केन्द्रों की स्थापना कर रहा है जिससे ऐसे केन्द्रों के सदस्यों से सम्पर्क बढ़ाने से लोगों को भौतिक कार्यों में अरुचि होने लगे। यद्यपि यह अति महत्वाकांक्षी प्रस्ताव है किन्तु यह संगति भगवान् चैतन्य महाप्रभु की दया से प्रभावशाली सिद्ध हो रही है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों की क्रमशः संगति करने, केवल प्रसाद ग्रहण करने तथा हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने से सामान्य लोग काफी ऊँचे उठ रहे हैं। सौभरि मुनि को पश्चाताप हो रहा है कि गहरे जल में भी उन्हें बुरी संगति मिली और मैथुनरत् मछली की कुसंगति करने से उनका पतन हुआ। एकान्त स्थान तब तक सुरक्षित नहीं होता जब तक अच्छी संगति न मिले। (९.६.५१ मूल तथा तात्पर्य)

जब तक कोई व्यक्ति आध्यात्मिक चेतना में अत्यधिक उन्नत नहीं होता तब तक गृहस्थ जीवन मात्र अंधकूप है जिसमें मनुष्य आत्महत्या करता है। (९.१९.१२)

स्त्री तथा पुरुष के मध्य सदैव सर्वत्र आकर्षण पाया जाता है जिससे हर व्यक्ति भयभीत रहता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे नियन्ताओं में भी ऐसी भावनाएं पाई जाती हैं और उनके लिए भी ये भय के कारण हैं। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जाए जो इस भौतिक जगत् में गृहस्थ जीवन के प्रति आसक्त हैं।

जब तक इस जगत् में पुरुष स्त्रियों के प्रति और स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति आकर्षित होती रहेंगी तब तक जन्म मृत्यु का चक्र चलता रहेगा। (९.११.१७ मूल तथा तात्पर्य)।

चाणक्य पण्डित का उपदेश है – विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च – "कभी भी किसी स्त्री या राजनीतिज्ञ पर विश्वास मत करो।" आध्यात्मिक चेतना प्राप्त किये बिना प्रत्येक व्यक्ति बद्ध एवं पतित है। फिर उन स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाए जो पुरुषों की अपेक्षा कम बुद्धिमान हैं। स्त्रियों की तुलना शूद्रों तथा वैश्यों से

की जाती है (स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः)। किन्तु जब कोई व्यक्ति आध्यात्मिक स्तर पर कृष्णभावनामृत पद को प्राप्त कर लेता है तो चाहे पुरुष हो या स्त्री, शूद्र हो या अन्य कुछ, सभी बराबर होते हैं। अन्यथा उर्वशी, जो स्वयं स्त्री थी और स्त्री स्वभाव को जानती थी, कहती है कि स्त्री का हृदय धूर्त लोमड़ी की तरह है। यदि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता तो वह ऐसी धूर्त लोमड़ियों का शिकार बन जाता है। किन्तु यदि वह इन्द्रियों को वश में कर लेता है तो वह ऐसी धूर्त लोमड़ी जैसी स्त्रियों का शिकार नहीं हो सकता। (९.१४.३६)

यौवनावस्था में भौतिक इन्द्रियों को भोगने की इच्छा होती है और जब तक युवावस्था में इन कामेच्छाओं को पूरी तरह पूरा नहीं कर लिया जाता तब तक भगवान् की सेवा करने में विघ्न उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है। हमने सचमुच देखा है कि ऐसे अनेक संन्यासी जो अपरिपक्व अवस्था में संन्यास ग्रहण कर लेते हैं अपनी इच्छाओं को तुष्ट न किये रहने के कारण विचलित होकर भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए सामान्य विधि यह है कि गृहस्थ जीवन तथा वानप्रस्थ जीवन बिताया जाए और अन्त में संन्यास ग्रहण करके भगवान् की सेवा में पूर्ण रूपेण संलग्न हुआ जाए (९.१८.४०)

इस संसार में सुखपूर्वक रहने के लिए आर्थिक विकास, आवास तथा अन्य वस्तुओं के प्रोत्साहन का कारण स्त्री के प्रति आकर्षण है। नर तथा नारी के संयोग से अच्छा मकान, अच्छा वेतन, सन्तान, तथा मित्र प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। इस तरह मनुष्य इस भौतिक जगत् में फँस जाता है। (९.१९.४)

यद्यपि मनुष्य जी भर कर यौन जीवन बिताने के लिए गृहस्थ बनता है लेकिन वह कभी भी तुष्ट नहीं होता। जिस प्रकार कोई अभागा मनुष्य भूत-प्रेत से सताये जाने पर पागल की तरह कार्य करता है उसी तरह भौतिकतावादी मनुष्य कामवासना के भूत-प्रेत से सताये जाने पर अपने वास्तविक कार्य को भूल जाता है जिससे वह देहात्मबुद्धि में तथाकथित सुख को भोग सके। (९.१९.५-६)

कामी पुरुष का मन कभी तुष्ट नहीं होता, भले ही उसे संसार की हर वस्तु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध क्यों न हो जिसमें धान, जौ, अन्य अनाज, सोना, पशु तथा स्त्रियाँ सम्मिलित हैं। उसे किसी वस्तु से सन्तोष नहीं होता।

तुष्ट मन प्राप्त करने के लिए कामेच्छाओं के हृदयरोग को त्यागना होगा। यह तभी सम्भव है जब कोई कृष्णभावनाभावित हो। कृष्णभावनाभावित होने पर वह हृदयरोग को त्याग सकता है अन्यथा कामेच्छाओं का यह रोग चलता रहेगा और मनुष्य को कभी भी मनः शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। (२.१९.१३ मूल तथा तात्पर्य)



मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।
बलवान इन्द्रिय-ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।

मनुष्य को चाहिए कि अपनी माता, बहन या पुत्री के साथ एक ही आसन पर न बैठे क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि बड़े-बड़े विद्वान भी यौन द्वारा आकृष्ट हो सकते हैं।

स्त्रियों के साथ व्यवहार करने का शिष्टाचार सीख लेने से कोई यौन आकर्षण से मुक्त नहीं हो सकता। जैसा कि यहाँ पर विशेष उल्लेख हुआ है, ऐसा आकर्षण अपनी माता, बहन या पुत्री से भी हो सकता है। सामान्यतया कोई अपनी माता, बहन या पुत्री के प्रति विषयभोग की दृष्टि से आकृष्ट नहीं होता किन्तु यदि कोई इनके सन्निकट बैठता है तो वह आकृष्ट हो सकता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। ऐसा कहा जा सकता है कि यदि कोई सभ्य जीवन में प्रवृद्ध नहीं है तो वह आकृष्ट हो सकता है किन्तु जैसा कि यहाँ विशेष रूप से उल्लेख हुआ है विद्वांसमपिकर्षति - विद्वान भी, चाहे वह भौतिक या आध्यात्मिक दृष्टि से कितना ही प्रवृद्ध क्यों न हो, विषय वासनाओं द्वारा आकृष्ट हो सकता है। आकर्षण की वस्तु उसकी माता, बहन या पुत्री तक हो सकती है। अतएव स्त्रियों के साथ व्यवहार करते समय मनुष्य को अत्यधिक सावधान रहना चाहिए। चैतन्य महाप्रभु ऐसे व्यवहार में, विशेषतया संन्यास ग्रहण करने के बाद अत्यन्त कठोर थे। वस्तुतः कोई भी स्त्री प्रणाम करने के लिए उनके पास नहीं जा पाती थी। यहां पर पुनः यह चेतावनी दी गई है कि मनुष्य स्त्रियों के साथ व्यवहार करते समय अत्यन्त सतर्क रहे। (९.१९.१७ मूल तथा तात्पर्य)

जिसने यह नहीं समझा कि वह भौतिक शरीर नहीं अपितु श्रीकृष्ण का अंश रूप नित्य आत्मा है, वह अपनी भौतिक इन्द्रियों के वेगों को वश में करने में निश्चित ही अक्षम होगा। इस तरह संयमित इन्द्रियतृप्ति का भोग बताने वाले वैदिक आदेशों की उपेक्षा करने वाला व्यक्ति पापपूर्ण असंयमित इन्द्रियतृप्ति में जा गिरता है। उदाहरणार्थ, जो लोग कामेच्छा से पीड़ित रहते हैं उन्हें विवाह यज्ञ करने का आदेश दिया जाता है। हम प्रायः देखते हैं कि तथाकथित ब्रह्मचारी मिथ्या गर्व के कारण विवाह को माया कहकर तिरस्कृत करता है। किन्तु यदि ऐसा ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रख पाता तो वह निःसन्देह अवैध यौन में रत् होकर अपने को नीचे गिरा देगा। (११.३.४५)

जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता वह परमेश्वर की माया से उत्पन्न स्त्री के स्वरूप को देखकर तुरन्त आकृष्ट हो जाता है। वस्तुतः जब कोई स्त्री

मोहक शब्द बोलती है, नखरे से हँसती है और अपने शरीर को कामवासना से युक्त होकर मटकाती है तो पुरुष का मन तुरन्त मुग्ध हो जाता है और वह भव-अन्धकार में उसी तरह गिर जाता है जिस तरह पतंगा अग्नि पर मदान्ध होकर उसकी लपटों में तेजी से गिर पड़ता है। विवेकहीन मूर्ख व्यक्ति सुनहरे गहनों, सुन्दर वस्त्रों तथा अन्य सौन्दर्य प्रसाधन से युक्त कामुक स्त्री को देखकर तुरन्त लुब्ध हो उठता है। ऐसा मूर्ख व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए उत्सुक होने से अपनी सारी बुद्धि खो बैठता है और उसी तरह नष्ट हो जाता है जिस तरह जलती अग्नि की ओर दौड़ने वाला पतंगा। (११.८.८-९ मूल)

सन्त पुरुष को चाहिए कि वह किसी युवती का स्पर्श कभी न करे। वस्तुत: उसे काष्ठ की बनी स्त्री के स्वरूप वाली गुड़िया को भी अपने पाँव तक को नहीं छूने देना चाहिए। स्त्री के साथ शारीरिक सम्पर्क होने से वह निश्चित रूप से उसी तरह माया द्वारा बन्दी बना लिया जाएगा जिस तरह हथिनी के शरीर का स्पर्श करने की इच्छा के कारण हाथी पकड़ लिया जाता है। विवेकवान व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए स्त्री के सुन्दर रूप का लाभ उठाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। जिस तरह हथिनी से संभोग करने का प्रयास करने वाला हाथी उसके साथ संभोग कर रहे अन्य हाथियों द्वारा मार डाला जाता है उसी तरह यदि कोई व्यक्ति किसी नारी के साथ संभोग करना चाहता है तो वह किसी भी क्षण उसके अन्य प्रेमियों द्वारा मार डाला जा सकता है जो उससे अधिक बलिष्ठ होते हैं। (११.८.१३-१४ मूल)

मनुष्य को चाहिए कि स्त्री के कामोत्तेजक रूप के सम्मोहन से येन केन प्रकारेण बचे। मनुष्य को यौन - आनन्द के वासनामय सपनों में अपने मन को खोने देना नहीं चाहिए। पुरुषों और स्त्रियों के मध्य अनेक प्रकार की इन्द्रियतृप्ति का आनन्द लूटा जा सकता है - जिनमें बोलना, मनन करना, स्पर्श करना, तथा संभोग आदि सम्मिलित हैं। ये सभी माया के जाल को बुनते हैं जिसके द्वारा मनुष्य पशु की तरह असहाय होकर बाँध लिया जाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह जैसे-तैसे यौन-आनन्द स्वरूपा इन्द्रियतृप्ति से दूर रहे अन्यथा आध्यात्मिक जगत् को समझ पाना सम्भव नहीं हो सकेगा। (११.८.१३.)

जो व्यक्ति अपने शरीर से अत्यधिक प्रेम करता है वह निश्चय ही कामेच्छा के वश में हो जाएगा। (११.२१.२९)



# श्रील प्रभुपाद की अन्य पुस्तकों से उद्धरण

भक्तियोग का सम्प्रदाय इतना सशक्त है कि भगवान् की श्रेष्ठ सेवा में लगे रहने से स्वत: ही यौन के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है। (भगवद्गीता ६.१३-१४)

ब्रह्मचारी केवल कृष्णभावनामृत से सम्बन्धित शब्दों को ही सुनता है। समझने के लिए सुनना (श्रवण) मूल सिद्धान्त है। इसलिए शुद्ध ब्रह्मचारी पूर्णतया हरेर्नामानु कीर्तनम् में अर्थात भगवान् के यश के कीर्तन तथा श्रवण में अपने को लगाता है। वह अपने को अन्य शब्द ध्वनियों से रोकता है और वह हरे कृष्ण की दिव्य ध्वनि सुनने में लगा रहता है। (भगवद्गीता ४.२६)

वह सुख जो इन्द्रिय विषयों के साथ इन्द्रियों के सम्पर्क से मिलता है और जो पहले अमृत लगता है किन्तु अन्त में विष बन जाता है उसे रजोगुणी कहा जाता है।

युवक तथा युवती मिलते हैं तो युवक की इन्द्रियाँ युवती को देखने, उसका स्पर्श करने तथा उसके साथ संभोग करने के लिए उकसाती हैं। शुरु में यह इन्द्रियों को अच्छा लग सकता है किन्तु अन्त में या कुछ समय बाद यह विष बन जाता है। वे या तो विलग हो जाते हैं या उनमें सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, फिर पछतावा, दु:ख आदि होता है। ऐसा सुख सदैव रजोगुणी होता है। इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-विषयों के संयोग से प्राप्य सुख सदैव दु:ख का कारण बनता है इसलिए इससे सभी तरह से बचना चाहिए। (भगवद्गीता १८.३८ मूल तथा तात्पर्य)

काम तथा प्रेम में भिन्न भिन्न गुण होते हैं जिस तरह लोहे तथा सोने के भिन्न भिन्न स्वभाव होते हैं।

मनुष्य को यौन प्रेम तथा शुद्ध प्रेम में अन्तर करने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि वे भिन्न भिन्न श्रेणियों के होते हैं, उनमें जमीन आसमान का अन्तर होता है। वे एक दूसरे से उसी तरह पृथक हैं जिस तरह सोने से लोहा। (चैतन्य चरितामृत आदि लीला ४.१६४ मूल तथा तात्पर्य)

अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने की इच्छा काम है किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की इन्द्रियों को प्रसन्न करने की इच्छा प्रेम है।

श्रीचैतन्य चरितामृत के प्रणेता अधिकारपूर्वक कहते हैं कि यौन प्रेम निजी इन्द्रिय-भोग है। लोकप्रियता, पितृत्व, सम्पति की इच्छाओं से सम्बद्ध वेदों के सारे विधि-विधान इन्द्रियतृप्ति की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। इन्द्रियतृप्ति के कार्य जन कल्याण, राष्ट्रीयता, धर्म , परोपकारिता, नैतिक आचार संहिता, बाइबिल की आचारसंहिता, स्वास्थ्य विषयक

निर्देश, सकाम कर्म, लज्जा, सहिष्णुता, निजी आराम, भौतिक बन्धन से मुक्ति, उन्नति, पारिवारिक स्नेह या सामाजिक निर्वासन अथवा न्यायिक दण्ड के भय की आड़ में किये जा सकते हैं। किन्तु ये सारी श्रेणियाँ एक ही वस्तु, इन्द्रियतृप्ति के उपभाग हैं। ऐसे समस्त सद्कार्य मूलतः व्यक्ति के अपने इन्द्रिय भोग के लिये किये जाते हैं क्योंकि कोई भी व्यक्ति इन बहु विज्ञापित नैतिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों को सम्पन्न करते समय अपने निजी हित को न्यौछावर नहीं कर सकता। किन्तु इन सबसे ऊपर एक दिव्य अवस्था है जिसमें मनुष्य अपने को केवल भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य सेवक के रूप में अनुभव करता है। इस सेवक भाव से किये गये सारे कर्म शुद्ध ईश्वर प्रेम कहलाते हैं क्योंकि वे श्रीकृष्ण की परम इन्द्रियतृप्ति के लिए किये जाते हैं। किन्तु कोई भी कर्म जो इसके फल को भोगने के उद्देश्य से किया जाता है, इन्द्रियतृप्ति का कार्य है। ऐसे कार्य कभी स्थूल रूप में तो कभी सूक्ष्म रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। (चैतन्य चरितामृत आदि लीला ४.१६५ मूल तथा तात्पर्य)।

कभी-कभी ईर्ष्यालु लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन की आलोचना करते हैं क्योंकि यह ईश्वर प्रेम के वितरण के लिए लड़के तथा लड़कियाँ दोनों को समान रूप से लगाता है। ये मूर्ख तथा धूर्त यह नहीं जानते कि योरुप जैसे देश में लड़के तथा लड़कियाँ मुक्तभाव से मिलते-जुलते हैं इसलिए ये कृष्णभावनामृत में लड़कों तथा लड़कियों की उनके मिलने जुलने के लिये आलोचना करते हैं। किन्तु इन धूर्तों को विचार करना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति किसी समुदाय के सामाजिक रीति-रिवाजों को सहसा बदल नहीं सकता। किन्तु चूँकि लड़के लड़कियाँ दोनों ही को प्रचारक बनने का प्रशिक्षण दिया जाता है इसलिए वे लड़कियाँ साधारण लड़कियाँ नहीं है, किन्तु वे अपने उन भाईयों के समतुल्य हैं जो कृष्णभावनामृत का प्रचार कर रहे हैं (चैतन्य चरितामृत आदि लीला ७.३१-३२)

चूँकि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में योरुपीय तथा अमरीकी लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ प्रचार करते हैं इसलिए अल्पज्ञ लोग आलोचना करते हैं कि वे बिना रोक-टोक के मिलते हैं। योरुप तथा अमरीका में लड़के तथा लड़कियाँ बिना रोक-टोक के मिलते-जुलते हैं और समान अधिकार रखते हैं। इसलिए पुरुषों को महिलाओं से पूरी तरह पृथक रख पाना सम्भव नहीं है। तो भी हम स्त्री पुरुष दोनों को सम्पूर्ण रूप से शिक्षा देते हैं कि किस तरह प्रचार करें और वे बहुत अच्छा प्रचार कर रहे हैं। निःसन्देह हम अवैध यौन का कड़ाई से निषेध करते हैं। अविवाहित बालक बालिकाओं को साथ-साथ सोने या एक साथ रहने की अनुमति नहीं दी जाती। हर मन्दिर में उनके लिए पृथक-पृथक प्रबन्ध हैं। गृहस्थजन मन्दिर के बाहर रहते हैं क्योंकि



मन्दिर के भीतर पति-पत्नी को भी रहने की अनुमति नहीं दी जाती। इसके परिणाम आश्चर्यजनक हैं। पुरुष तथा स्त्री दोनों ही भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् श्रीकृष्ण के सन्देश को द्विगुणित उत्साह से प्रचारित कर रहे हैं। (चैतन्य चरितामृत आदि लीला ७.३८)

भोग की भावना से स्त्रियों का संग भक्त का सबसे बड़ा शत्रु है। (चैतन्य चरितामृत मध्य लीला २२, भूमिका)

जो लोग इन्द्रियों पर संयम नहीं रख सकते उनके लिए विवाह एक छूट है। सामान्यतया विवाह हो जाने पर व्यक्ति आध्यात्मिक चेतना में अधिक प्रगति नहीं कर पाता। वह अपने परिवार में लिप्त हो जाता है और इन्द्रियतृप्ति के प्रति उन्मुख रहता है। इस तरह उसकी आध्यत्मिक प्रगति या तो अत्यन्त मन्द होती है या प्रायः शून्य हो जाती है।

यह तथ्य है कि हम लगातार माया द्वारा दुलत्ती खा रहे हैं जिस तरह कि संभोग के लिए गधी के पास आने पर गधा लतियाया जाता है। इसी तरह कुत्ते और बिल्लियाँ संभोग के समय लड़ते झगड़ते रहते हैं। ये सब प्रकृति के छल हैं। यहाँ तक कि हाथी भी प्रशिक्षित हथिनी के द्वारा एक गड्ढे में ले जाये जाकर पकड़ा जाता है। माया के अनेक कर्म हैं और भौतिक जगत् में उसकी सबसे प्रबल बेड़ी मादा है। वैसे देखा जाए तो हम न तो नर हैं, न मादा, क्योंकि ये उपाधियाँ केवल बाह्य पहरावे अर्थात शरीर की द्योतक हैं। हम वास्तव में श्रीकृष्ण के दास हैं। बद्धजीवन में हम सुन्दर स्त्रियों के रुप में प्रस्तुत लौह श्रृंखलाओं से जकड़े हुए हैं। इस तरह हर नर यौन जीवन से बँधा है, इसलिए जब कोई व्यक्ति भौतिक पाश से मुक्ति पाना चाहता है तो सर्वप्रथम उसे यौन इच्छा को वश में करना सीखना चाहिए। (भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ, भूमिका)

शरीर की आवश्यकताओं को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है - जिह्वा का वेग, उदर का वेग तथा प्रजनांग का वेग। यह देखा जा सकता है कि ये तीनों इन्द्रियाँ शरीर में एक सीधी रेखा पर स्थित हैं और शारीरिक माँगें जिह्वा से शुरु होती हैं। यदि हम जिह्वा की माँगों को प्रसाद ग्रहण करके सीमित कर सकें तो उदर तथा जननांगो की इच्छाएँ स्वयमेव वश में हो जाएंगी। (उपदेशामृत, श्लोक एक)

जहाँ तक कामेच्छाएँ हैं, ये दो प्रकार की हैं - उचित तथा अनुचित अथवा वैध तथा अवैध यौन। जब पुरुष ठीक से प्रौढ़ हो जाए तो वह शास्त्रों के विधि-विधानों के अनुसार विवाह करे और अपने जननांगों का उपयोग अच्छी सन्तान पैदा करने के

लिए करे। यह वैध तथा धार्मिक है। अन्यथा वह जननांगों की मांगों को पूरा करने के लिए असंयमित होकर अनेक कृत्रिम साधन अपना सकता है। जब कोई व्यक्ति चिन्तन, योजना बनाने, संभोग के बारे में बातें करने या संभोग करने या कृत्रिम साधनों से जननांगों की तुष्टि करने में, जिनके बारे में शास्त्रों में वर्णन हैं, लिप्त होता है तो वह माया के पाश में जकड़ा जाता है। ये निर्देश न केवल गृहस्थों पर लागू होते हैं अपितु त्यागियों पर भी लागू होते हैं। श्री जगदानन्द पंडित अपनी पुस्तक 'प्रेम विवर्त' के सातवें अध्याय में कहते हैं -

वैरागी भाई ग्राम्य - कथा ना शुनिबे काने
ग्राम्य वार्ता न कहिबे यबे मिलिबे आने

स्वपने ओ ना कर भाई स्त्री-सम्भाषण
गृहे स्त्री छाड़िया भाई आसियाछ वन

यदि चाह प्रणय राखिते गौरांगेर सने
छोट हरिदासेर कथा थाके येन मने

भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे
हृदयेते राधा-कृष्ण सर्वदा सेविबे

"हे भाई! आप वैरागी हैं इसलिए आप सामान्य सांसारिक बातों के बारे में न तो सुनें न ही बोलें। और जब आप अन्यों से मिलें तो न ही सांसारिक बातों के बारे में कहें। स्वप्न में भी स्त्रियों के बारे में न सोचें। आपने विरक्त जीवन इस प्रण के साथ स्वीकार किया है कि आप स्त्रियों की संगति नहीं करेंगे। यदि आप श्रीचैतन्य महाप्रभु की संगति चाहते हैं तो आपको छोट हरिदास की घटना सदैव स्मरण रखनी होगी कि महाप्रभु ने किस तरह उसका परित्याग किया था। न तो अच्छे व्यंजन खाएं, न अच्छे वस्त्र पहनें अपितु आप विनीत बनकर अपने हृदय के भीतर श्री श्री राधा-कृष्ण की सेवा करें।" (उपदेशामृत, श्लोक एक, तात्पर्य)

यदि शरीर में कोई रोग हो जाता है और उसकी उपेक्षा की जाती है तो वह असाध्य हो जाता है। इसी तरह जब व्यक्ति इन्द्रियों को संयमित रखने के प्रति सतर्क नहीं रहता और उन्हें ढील देता है तो उन्हें वश में कर पाना अति कठिन हो जाता है। (कृष्ण, अध्याय ४)

मानव जीवन की पूर्णता ज्ञान तथा वैराग्य पर आधारित है, किन्तु गृहस्थ जीवन में रहते हुए ज्ञान तथा वैराग्य की अवस्था तक पहुँचना बहुत कठिन है। (कृष्ण, अध्याय ८७)



ब्रह्मचारी चार प्रकार के होते हैं। (१) सावित्र - वह ब्रह्मचारी जिसे दीक्षा तथा जनेऊ संस्कार के बाद कम से कम तीन दिन तक ब्रह्मचर्य व्रत रखना चाहिए। (२) प्राजापत्य - वह ब्रह्मचारी जो दीक्षा के बाद एक वर्ष तक दृढ़ता से ब्रह्मचर्य का पालन करता है (३) ब्राह्म-ब्रह्मचारी- वह ब्रह्मचारी जो दीक्षा के समय से वैदिक साहित्य के अध्ययन की समाप्ति तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है। तथा (४) नैष्ठिक - वह ब्रह्मचारी जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है। इनमें से प्रथम तीन उपकुर्वाण हैं जिसका अर्थ है कि ब्रह्मचारीकाल समाप्त होने के बाद ब्रह्मचारी विवाह कर सकता है। किन्तु नैष्ठिक ब्रह्मचारी यौन जीवन के प्रति सर्वथा विरक्त रहता है इसलिये चारों कुमार तथा नारद नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहे जाते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी वीर व्रत कहलाते हैं क्योंकि उनका ब्रह्मचर्यव्रत क्षत्रियों के ही तुल्य वीरतापूर्ण होता है। ब्रह्मचारी जीवन शैली विशेष रूप से लाभप्रद है क्योंकि यह स्मृति तथा संकल्प को वर्धित करती है। इसका विशेष रूप से उल्लेख है कि चूंकि नारद नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे अतः वे अपने गुरु से जितना सुनते थे उसे स्मरण रखते थे और उसे कभी नहीं भूल सके। जो व्यक्ति हर बात को अविरत स्मरण रख सकता है वह श्रुतिधर ब्रह्मचारी किसी पुस्तक का सन्दर्भ दिये बिना, जो कुछ सुने रहता है उसे अक्षरशः दुहरा सकता है। महामुनि नारद में यह गुण है अतः नारायण ऋषि से शिक्षा प्राप्त करके वे भक्ति के दर्शन को विश्वभर में प्रसारित करने में लगे हुए हैं। (कृष्ण, अध्याय ८७)

वर्षा ऋतु में, जब नदियाँ उमड़ कर समुद्र की ओर दौड़ती हैं और जब वायु लहरों में उफान लाती है तो समुद्र उद्विग्न प्रतीत होता है। इसी तरह जब योग में संलग्न व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में अधिक प्रवृत नहीं होता तो वह प्रकृति के गुणों से प्रभावित हो सकता है और इस तरह यौन आवेग से विचलित हो सकता है।

आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त व्यक्ति सुन्दर स्त्रियों तथा उनके संग में मिलने वाले यौन सुख जैसे भौतिक प्रकृति के प्रलोभनों से आकृष्ट नहीं होगा। किन्तु वह व्यक्ति जो अब भी आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन में अपरिपक्व है, क्षणिक सुख के भ्रम से किसी भी क्षण आकृष्ट हो सकता है जिस तरह वर्षा ऋतु में प्रवाहित नदियों से तथा बहती वायु से समुद्र उत्तेजित हो उठता है। इसलिए यह अति महत्वपूर्ण है कि प्रामाणिक गुरु, जो ईश्वर का प्रतिनिधि है, के चरणकमलों में अपने को स्थिर किया जाए, जिससे व्यक्ति यौन-चंचलता में नहीं बहता। (भागवत प्रकाश १७ मूल तथा तात्पर्य)

गृहस्थ जीवन का अंधकूप आत्मा को मार डालता है। (भागवत प्रकाश, श्लोक १७ तात्पर्य)

विद्यार्थी की शिक्षा ब्रह्मचर्य से शुरु होनी चाहिए, जिसका अर्थ है यौन लगाव से मुक्ति। उसे चाहिए कि ऐसी व्यर्थ बातों से जहाँ तक सम्भव हो बचे। यदि ऐसा नहीं कर सकता तो वह विवाह कर ले। (महारानी कुन्ती कि शिक्षाएँ)

सर्वप्रथम व्यक्ति को ब्रह्मचारी प्रणाली में प्रशिक्षित होना चाहिए और इन्द्रियों को दुत्कारना सीखना चाहिए। ब्रह्मचारी को तपस्या का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए भोग का नहीं। प्राचीनकाल में ब्रह्मचारियों को आश्रम के लिए भिक्षा माँगने हेतु द्वार-द्वार जाना होता था और प्रारम्भ से उन्हें शिक्षा दी जाती थी कि वे प्रत्येक स्त्री को माता कह कर सम्बोधित करें। (भगवान् कपिल की शिक्षाएँ पृष्ठ १३१)

यौन से विलगाव के फलस्वरूप मनुष्य अति दृढ़ संकल्प तथा शक्तिशाली बन जाता है। और कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रहती। इस रहस्य से लोग परिचित नहीं हैं। यदि आप दृढ़ निश्चय से कुछ कार्य करना चाहते हैं तो यौनाचार से बचें। चाहे जो भी विधि हो - चाहे हठ योग, भक्ति योग या ज्ञान योग, या कुछ भी - यौन लिप्तता की अनुमति नहीं दी जाती। यौन की अनुमति केवल गृहस्थों को दी जाती है जो अच्छी सन्तानें उत्पन्न करके उन्हें कृष्णभावनामृत में पालना चाहते हैं। यौन जीवन का लाभ उठाकर तथा उसमें संलग्न होकर हम केवल अपना समय नष्ट कर रहे हैं। (सिद्धि पथ)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह संकल्प उसी को सुशोभित करता है जो यौन में प्रवृत्त नहीं होता। ब्रह्मचर्य से संकल्प दृढ़ होता है इसलिए श्रीकृष्ण प्रारम्भ से ही कहते हैं कि योगी यौन में प्रवृत्त नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति यौन में लिप्त होता है तो उसका संकल्प क्षणिक होगा। इसलिए यौन जीवन को गृहस्थाश्रम के नियमों के अनुसार नियन्त्रित करना चाहिए या तुरन्त उसका परित्याग कर देना चाहिए। वस्तुतः इसका एकदम परित्याग ही ठीक होगा। किन्तु यदि ऐसा कर पाना सम्भव न हो तो इसे नियंत्रित करना चाहिये। तब संकल्प उत्पन्न होगा क्योंकि संकल्प अंततः शारीरिक विषय है। संकल्प का अर्थ है धैर्यपूर्वक तथा परिश्रम से कृष्णभावनामृत में लगे रहना। यदि किसी को तुरंत वांछित फल नहीं मिलता तो उसे यह नहीं सोचना चाहिए, "अरे! यह कृष्णभावनामृत क्या है? मैं इसे छोड़े देता हूँ।" नहीं। हममें दृढ़ता तथा श्रीकृष्ण के वचनों में श्रद्धा होनी चाहिए। (सिद्धि पथ)

"भला इस शरीर में जो कि त्वचा तथा अस्थियों का झोला है जिसमें रक्त भरा



है और जो त्वचा तथा मांस से आच्छादित है तथा जिससे कफ और दुर्गंध उत्पन्न होते हैं, व्यक्ति यौन जीवन के भोग में आनंद कैसे ले सकता है?" यह अनुभूति उसी को हो सकती है जिसमें कृष्णभावनामृत जागृत हो चुका हो और जो भौतिक शरीर की घृणित प्रकृति से पूरी तरह अवगत हो। (भक्तिरसामृत सिन्धु, अध्याय ४८)

वैदिक सभ्यता में बालकों को जीवन के प्रारम्भ से ही प्रथम कोटि का ब्रह्मचारी बनने की शिक्षा दी जाती थी। वे गुरुकुल जाते थे और वहाँ आत्मसंयम, स्वच्छता, सत्यता तथा अन्य अनेक सद्गुण सीखते थे। इनमें से जो सर्वश्रेष्ठ होते थे वे ही आगे चल कर देश का शासन चलाने के लिये उपयुक्त होते थे। (आत्म साक्षात्कार का विज्ञान पृष्ठ १८७)।

ब्रह्मचर्य का सही सही पालन करने के लिए मनुष्य को यौन जीवन के विषय में सोचना या बातें तक नहीं करना चाहिए। आधुनिक साहित्य तथा अखबार जो कामुक सामग्री से ओत-प्रोत रहते हैं उनको पढ़ना भी ब्रह्मचर्य के नियमों के विरुद्ध है। इसी तरह किसी भी प्रकार से यौन में लिप्त होना, लड़कियों को ताकना या उनके साथ फुसफुसाना तथा यौन जीवन में प्रवृत्त होने के लिए निश्चय करना या प्रयास करना भी ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। व्यक्ति वास्तविक ब्रह्मचर्य का पालन तब करता है जब ये सारे कार्य बन्द हो जाते हैं। (कृष्णभावनामृतः अनुपम भेंट अध्याय ४)

इस भौतिक जगत् के अन्धकार में निद्रा तथा संभोग (यौन) ये ही सुख हैं। (डायलेक्टिक स्पिरिच्वलिस्म)

श्रील प्रभुपादः यौन पाशविक है। यह प्रेम नहीं काम (वासना) है। यौन का अर्थ है इन्द्रियों की पारस्परिक तुष्टि और यह काम है। यह काम प्रेम के नाम पर चल रहा है और भ्रमवश लोग इस काम को प्रेम समझ बैठे हैं। वास्तविक प्रेम कहता है "लोग कृष्णभावनामृत के अभाव से पीड़ित हैं। हमें उनके लिए कुछ करना चाहिए जिससे वे जीवन के मूल्य को समझ सकें।" (डायलेक्टिक स्पिरिच्वलिस्म)

साधारण लोग यौन को सर्वोच्च आनन्द मान बैठते हैं। सम्पूर्ण जगत् यौन के ही कारण अस्तित्व में है, किन्तु यह यौन आनन्द कितनी देर तक रहता है? केवल कुछ क्षणों तक। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा आनन्द नहीं चाहता जो कुछ ही पल रहे अपितु वह ऐसा आनन्द चाहता है जो शाश्वत रहे। नित्य का अर्थ 'शाश्वत' है और आनन्द का अर्थ है "सुख।" वेदों का कथन है कि जो बुद्धिमान हैं वे क्षणिक आनन्द में

नहीं अपितु नित्य आनन्द में रुचि रखते हैं। वे अपनी स्वाभाविक स्थिति जानते हैं। वे जानते हैं कि वे शरीर नहीं हैं। शरीर का आनन्द क्षणिक है और धूर्त लोग ही उसकी खोज करते हैं। (डायलेक्टिक स्पिरिच्वलिस्म)

दमन तो सदैव होता है। यदि हम रुग्ण हैं और डॉक्टर ठोस भोजन करने का अनुमोदन नहीं करता है तो हमें भूख दबानी पड़ती है। ब्रह्मचर्य प्रणाली में ब्रह्मचारी अपनी यौन इच्छाओं को दबाता है। यही तपस्या कहलाती है, जो कि स्वेच्छ दमन है। निस्सन्देह बिना किसी श्रेयस्कर व्यस्तता के यह बहुत कठिन है। इसलिए, जैसा कि मैंने कहा, हमें निकृष्ट व्यस्तता को श्रेष्ठ व्यस्तता से स्थानान्तरित करना होता है। जब आप श्रीकृष्ण के सुन्दर स्वरूप को देख कर मुग्ध हो जाते हैं तो आपको किसी तरुणी के सुन्दर रूप को देखने की इच्छा नहीं होती। (डायलेक्टिक स्पिरिच्वलिस्म पृष्ठ ४९४)

श्रील प्रभुपाद: हमें समझना होगा कि यह यौन समस्या क्यों है। यदि हम थोड़ी खुजलाहट सहन कर लें तो सभी पीड़ाओं से बच जाएं। यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखम् हि तुच्छम् कण्डूयनेन कर योरिव दु:खदु:खम् - "यौन जीवन की तुलना खुजलाहट से राहत पाने के लिए दो हथेलियों को रगड़ने से की गई है। गृहमेधी अर्थात आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन गृहस्थजन यह सोचते हैं कि यह खुजलाहट सुख की चरम अवस्था है यद्यपि यह दु:ख का स्रोत है।" (भागवतम् ७.९.४५) जब साधारण व्यक्ति भौतिकतावादी जीवन के प्रति अत्यधिक आसक्त होते हैं तो उनका एकमात्र आनन्द संभोग होता है। शास्त्रों का कथन है कि संभोग से प्राप्त होने वाला सुख अत्यन्त नगण्य है। वस्तुत: यह सुख है ही नहीं। इसे अधिक से अधिक दशम् श्रेणी का सुख माना जा सकता है। चूंकि लोगों को कृष्णभावनामृत के सुख का कोई अनुमान नहीं है, इसलिए वे सोचते हैं कि यौन सर्वोच्च सुख है। किन्तु हमें विवेचना करनी चाहिए कि यह किस तरह का सुख है? जब हमें खुजलाहट होती है तो हम खुजलाते हैं जिससे कुछ आनन्द मिलता है किन्तु जब आनन्द समाप्त हो जाता है तो उसके प्रभाव निकृष्ट होते हैं। खुजलाहट और बुरी हो जाती है। शास्त्र बताते हैं कि यदि हम केवल इस खुजलाहट को सहन करने का प्रयास करें तो महान पीड़ा से हमें छुटकारा मिल जाए। यह तभी सम्भव है जब हम इस कृष्णभावनामृत का अभ्यास करें।

श्यामसुन्दर दास: फ्रायड का विश्वास था कि स्नायु-व्यतिक्रम (मानसिक-विकार), संभ्रम, चिन्ताएँ तथा नैराश्य दमन से उत्पन्न हैं।



श्रील प्रभुपाद: और मैं तुम्हें बता रहा हूँ कि ये सब यौन के परिणाम स्वरुप हैं। किन्तु हम दमन के पक्षधर नहीं है। पत्नी के रूप में सुविधा प्रदान करते हैं। यौन उत्तेजना पत्नी की ओर अभिमुख की जानी चाहिए।

श्यामसुंदर दास: किन्तु फ्रायड ने बल दिया है कि यौन उत्तेजना जीवन के प्रारम्भ से ही विद्यमान रहती है।

श्रील प्रभुपाद: हम भी स्वीकार करते हैं। हम कहते हैं कि ज्योंही जीव देहधारी बनता है उसे भूख और यौन (काम) सताते हैं। ऐसा क्यों है? आहार, निद्रा, भय, मैथुन - हम पशुओं तक में इन उत्तेजनाओं को पाते हैं। ये उत्तेजनाएँ पहले से हैं। इनको दार्शनिक रूप देने से क्या लाभ?

श्यामसुंदर दास: मनोविश्लेषण के माध्यम से दमित भावनाओं को मुक्त किया जा सकता है और स्मरण तथा स्वीकारोक्ति आदि से आघात को दूर किया जा सकता है।

श्रील प्रभुपाद: किन्तु इसकी क्या प्रत्याभूति है कि हमें दूसरा आघात नहीं लगेगा? जीव को आघात पर आघात लगता रहता है। यदि उसके एक आघात को ठीक किया जाता है तो दूसरा आ जाता है। यह तथ्य है कि भौतिक जीवन कष्टमय है। आपको भौतिक शरीर मिला नहीं कि तीन प्रकार के कष्ट (ताप) सहने होंगे। हर व्यक्ति सुख की तलाश में है किन्तु जब तक भौतिकवादी जीवन समाप्त नहीं किया जाता, जब तक हम जन्म, बुढ़ापा, रोग तथा मृत्यु का अन्त नहीं कर देते तब तक सुख का कोई प्रश्न ही नहीं है। भौतिकवादी जीवन एक रोग है और वैदिक सभ्यता इस रोग का उपचार करने का प्रयत्न करती है। हमारा कार्यक्रम पूर्ण उपचार का है। इससे फिर आघात नहीं होगा। (डायलेक्टिक स्पिरिच्वलिस्म)

श्रील प्रभुपाद: मानव जीवन तपस्या के लिए है, यौन को समाप्त करने के लिए है। यह विधि ब्रह्मचर्य की है। भौतिक जगत में एकमात्र सुख संभोग सुख माना जाता है। यन्मैथुनादि (भागवतम् ७.९.४५)। आदि का अर्थ है मूल सिद्धान्त जो इस भौतिक जगत में यौन है। भौतिकतावादी सुख क्या है? मित्रों तथा परिवार के साथ इस जीवन का भोग। किन्तु यह किस तरह का आनन्द है? इसकी तुलना मरुस्थल में जल की एक बूँद से की जाती है। वस्तुत: हम असीम आनन्द की खोज करते हैं। आनन्दमयोऽभ्यासात्। मरुस्थल में यह जल की बूँद, जो भौतिकतावादी आनन्द है, क्या

हमें कभी तुष्ट कर सकती है? कोई भी तुष्ट नहीं है, यद्यपि लोगों को अनेक प्रकार से यौन प्राप्त है। और अब युवतियाँ नग्न प्राय: घूमती हैं और सर्वत्र मादा-जनसंख्या बढ़ रही है। ज्यों ही मादा-जनसंख्या में वृद्धि होती है कि स्त्रियाँ कहती हैं "पुरुष कहाँ हैं?" तब विपत्ति आती है क्योंकि हर स्त्री पुरुष को आकृष्ट करने का प्रयास करती है और पुरुष इसका लाभ उठाते हैं। यदि बाजार में दूध उपलब्ध हो तो गाय पालने से क्या लाभ? पुरुष जितने ही अधिक स्त्रियों से लिप्त होंगे उतनी ही मादा जनसंख्या बढ़ेगी। जब आप अधिक संभोग करते हैं तो बालक उत्पन्न करने की क्षमता घटती जाती है। जब नर कम वीर्यवान होता है तो लड़की पैदा होगी और जब नर अधिक वीर्यवान होता है तो लड़का उत्पन्न होगा। यदि पुरुष की वीर्य मात्रा अधिक है तो लड़का उत्पन्न होगा। यदि स्त्री का स्खलन अधिक है तो लड़की पैदा होगी। जब स्त्रियाँ सरलता से उपलब्ध होती हैं तो पुरुष क्षीण हो जाते हैं और वे लड़कियाँ उत्पन्न करते हैं क्योंकि वे अत्यधिक लिप्त रहने से अपनी वीर्यशक्ति खो देते हैं। यहाँ तक कि वे कभी-कभी नपुंसक भी हो जाते हैं। यदि आप अपने यौन जीवन पर पाबन्दी नहीं लगाते तो अनेकानेक विपत्तियाँ आएंगी। यामुनाचार्य कहते हैं –

यदवधि मम चेत: कृष्ण पादारविन्दे नवनवरसधामन्युद्यतं रन्तुमासीत
तदवधि बत नारीसङ्गमे स्मर्यमाने भवति मुखविकार: सुष्ठु निष्ठीवनं च

"जब से मैं श्री कृष्ण की दिव्य सेवा में लगा हुआ हूँ और उनमें नित नूतन आनन्द की अनुभूति करता रहा हूँ, जब भी मैं यौन आनन्द के बारे में सोचता हूँ तो इस विचार पर मैं थूकता हूँ और मेरे होंठ बुरे स्वाद से मुड़ जाते हैं।"

श्यामसुन्दर दास: फ्रायड इसे दमन का एक रूप मानता है।

श्रील प्रभुपाद: उसका दमन का विचार हमारे से भिन्न है। हमारे दमन का अर्थ है प्रात:काल जल्दी जागना, मंगल आरती में सम्मिलित होना, हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना और भक्तिमय सेवा में लगना। इस तरह हम भौतिक लालसाओं का दमन करते हैं।

श्यामसुन्दर दास: दूसरे शब्दों में यह जागरुकता तथा ज्ञान से युक्त दमन है।

श्रील प्रभुपाद: वास्तविक ज्ञान तो बाद में आता है। प्रारम्भ में गुरु के प्रति आज्ञाकारिता होती है। इस तरह से हममें अवांछित कर्म करने की आदत नहीं पड़ेगी। (डायलेक्टिक स्पिरिच्चलिस्म)



# श्रील प्रभुपाद की जीवनी से सम्बन्धित कार्यों से उद्धरण

जो व्यक्ति लोवर ईस्ट साइड के हिप्पियों में अपने अनुयायी बनाना चाह रहा हो उसके लिए यौन आनन्द को बुरा कहना निश्चय ही कूटनीतिक चाल नहीं थी। किन्तु प्रभुपाद ने अपने सन्देश को बदलने पर कभी विचार नहीं किया। वस्तुत: जब उमापति ने उल्लेख किया कि अमरीकी लोग यह सुनना पसन्द नहीं करते कि संभोग केवल बच्चे पैदा करने के लिए है तो प्रभुपाद ने उत्तर दिया था "मैं अमरीकियों को प्रसन्न करने के लिए दर्शन को नहीं बदल सकता।"

एक शाम को मन्दिर में एकत्र भीड़ में से पीछे से, इस्कॉन के एटार्नी, स्टीव गोल्डस्मिथ, ने पूछा, "यौन के विषय में क्या कहते हैं?" इस पर प्रभुपाद ने कहा, "संभोग केवल अपनी पत्नी से होना चाहिए और वह भी संयमित। यौन (संभोग) तो कृष्णभावनाभावित सन्तानें उत्पन्न करने के लिए है। मेरे गुरु महाराज कहा करते थे कि कृष्णभावनाभावित सन्तानें उत्पन्न करने के लिये वे एक सौ बार संभोग करने को तैयार थे। नि:सन्देह इस युग में यह सबसे कठिन है। अतएव वे ब्रह्मचारी रहे।"

गोल्डस्मिथ ने प्रतिवाद किया, "किन्तु यौन अति प्रबल शक्ति है। एक पुरुष एक स्त्री के लिए जो अनुभव करता है उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"

श्रील प्रभुपाद ने उत्तर दिया, "इसलिये हर संस्कृति में विवाह की संस्था है। आप विवाह कर सकते हैं और एक स्त्री के साथ शान्तिपूर्वक रह सकते हैं, किन्तु पत्नी का उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिये मशीन की तरह नहीं होना चाहिए। महीने में केवल एक बार संभोग करना चाहिए और वह भी केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए।"

स्वामीजी के बाईं ओर, चमकते बड़े करताल के पास बैठा हयग्रीव सहसा बोल पड़ा "महीने में केवल एक बार?" इसके बाद हँसी करते हुए जोर से बोला "इससे अच्छा है कि इसे पूरा भुला दिया जाए!"

"हाँ, यही बात है, अच्छा लड़का है!" कह कर स्वामीजी हँस पड़े और अन्य लोग भी उनके साथ हँसने लगे "अच्छा तो यही हो कि इसके विषय में सोचा ही न जाए। सर्वोत्तम होगा कि केवल हरे कृष्ण कीर्तन किया जाए।" और उन्होंने अपने हाथ इस तरह ऊपर उठाये मानो वे माला पर जप कर रहे हों। "यही तरीका है जिससे हम ऐसे झंझट से बच सकेंगे। यौन तो खुजलाहट के समान है। बस। जितना खुजलाओ उतनी ही खुजली होती है, अत: हमें खुजली सहनी चाहिए और श्रीकृष्ण से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमारी सहायता करें। यह आसान नहीं है। यौन भौतिक जगत्

में सर्वोच्च आनन्द है और सबसे बड़ा बन्धन भी है।" किन्तु स्टीव गोल्डस्मिथ अपना सिर हिलाता रहा। प्रभुपाद ने मुस्कुराते हुए उसकी ओर देखा "क्या अब भी समस्या है?"

"तो ऐसा है! हाँ, यह सिद्ध किया जा चुका है कि यौन उत्तेजना को दबाना घातक है। ऐसा सिद्धान्त है कि युद्ध होते हैं क्योंकि" श्रील प्रभुपाद ने टोका "लोग मांस खा रहे हैं। जब तक लोग मांस खाते रहेंगे युद्ध होते रहेंगे। और यदि मनुष्य मांस खाता है तो निश्चित है कि वह अवैध यौन भी करेगा।"

स्टीव गोल्डस्मिथ इस्कॉन का प्रभावशाली मित्र तथा समर्थक था। किन्तु प्रभुपाद ने "अमरीकियों को प्रसन्न करने के लिए" कृष्णभावनामृत के दर्शन को बदला नहीं। (श्रील प्रभुपाद लीलामृत अध्याय २१)

श्रील प्रभुपाद ने रुढ़िवादी कहे जाने पर आपत्ति जताई। वे क्रुद्ध हुए "रुढ़िवादी? ऐसा कैसे?" मुकुन्द ने सुझाया, "यौन तथा नशीली दवाओं (ड्रग्स) के सम्बन्ध में?"

प्रभुपाद: "निस्सन्देह, उस हिसाब से तो हम रुढ़िवादी हैं। इसका यही अर्थ हुआ कि हम शास्त्र का पालन कर रहे हैं। हम भगवद्गीता से विलग नहीं हो सकते। किन्तु हम रुढ़िवादी नहीं हैं। चैतन्य महाप्रभु इतने अनुशासनप्रिय (कठोर) थे कि वे किसी स्त्री की ओर देखते तक नहीं थे किन्तु हम इस आन्दोलन में प्रत्येक को, लिंग, जाति, पद आदि का विचार किये बिना स्वीकार कर रहे हैं। हर व्यक्ति आकर हरे कृष्ण कीर्तन करने के लिए आमन्त्रित है। यह चैतन्य महाप्रभु की उदारता या वदान्यता है।" (श्रील प्रभुपाद लीलामृत अध्याय २२)

उपेन्द्र को अब भी यौन इच्छा सता रही थी। उसने सोचा कि अच्छा हो कि वह विवाह कर ले। किन्तु उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कृष्णभावनाभावित विवाह क्या है। जिस लड़की से आप विवाह करना चाहते हैं यदि उससे प्रेम नहीं है तो फिर आप विवाह कैसे कर सकते हैं, उसको आश्चर्य हुआ? और उससे संभोग किये बिना आप उससे प्रेम कैसे कर सकते हैं? वह स्वामी जी से इसके विषय में पूछना चाहता था किन्तु वह अपनी बात अपने मन में रखे रहा और सही समय आने तथा साहस कर पाने की प्रतीक्षा करने लगा। तब एक दिन जब प्रभुपाद अपने कमरे में इस कोने से, जहाँ तीन बडी खिडकियों से क्रेडरिक स्ट्रीट दिख रही थी, उस कोने तक, जहाँ उनकी हिलने वाली कुर्सी पड़ी थी, टहल रहे थे, वह उनके कमरे में प्रविष्ट हुआ। उपेन्द्र ने निश्चय किया कि वह अपना प्रश्न अब पूछ सकता है। उसने शुरु किया, "स्वामीजी ! क्या मैं एक प्रश्न कर सकता हूँ?" श्रील प्रभुपाद ने टहलना रोक कर



उत्तर दिया "हाँ" "यदि कोई लड़का किसी लड़की से विलग रहे तो वह उससे प्रेम करना कैसे सीखेगा?" प्रभुपाद पुन: अपनी माला में जप करते हुए इधर-उधर टहलने लगे। क्षण भर बाद लौटकर मृदुता से उन्होंने कहा "प्रेम? प्रेम तो श्रीकृष्ण के लिए होता है।" और वे खिड़की की ओर चले गये तथा नीचे सड़क की ओर देखने लगे "तुम लड़की चाहते हो? तो एक को ले लो।" उन्होंने सड़क से गुजर रही किसी स्त्री की ओर इशारा किया। उन्होंने कहा, "इस संसार में प्रेम नहीं है। प्रेम तो श्रीकृष्ण के लिए है।" (श्रील प्रभुपाद लीलामृत अध्याय २४)

श्रील प्रभुपाद: स्त्रियाँ तथा पुरुष अलग-अलग रह सकते हैं। यह भी आवश्यक है। घृत तथा अग्नि को दूर ही रखना चाहिए। अन्यथा घी पिघल जाएगा। आप उसे रोक नहीं सकते। (श्रील प्रभुपाद लीलामृत अध्याय ४६)

प्रभुपाद: "यह गुरु का कार्य नहीं है कि यौन जीवन तथा पारिवारिक जीवन को किस तरह बढ़ाया जाए। ये पश्चिम के पुरुष तथा स्त्रियाँ सुखी नहीं है। वे विवाह करते हैं किन्तु सुखी नहीं है। इसलिये मैं ब्रह्मचर्य और संन्यास जीवन की संस्तुति करता हूँ" (श्रील प्रभुपाद लीलामृत अध्याय ४९)

इन्द्रियों के संयम का अर्थ है कि मैं सुन्दर स्त्रियों के बीच में रह सकता हूँ किन्तु मुझे यौन की इच्छा नहीं होगी। मुझ में पर्याप्त शक्ति है किन्तु मुझमें इसके लिए कोई इच्छा नहीं है। यही इन्द्रियों का वास्तविक संयम है। (प्रभुपाद लीला)

योग का छात्र: यौन इच्छा के बारे में क्या कहना है? मुझे आध्यात्मिक चाहिए, किन्तु मुझ में यौन के लिए प्रबल इच्छा है।

प्रभुपाद: हठ योग भी यौन इच्छा को वश में करने के लिए है। यदि आप में ऐसी इच्छा है तो आप कोई प्रगति नहीं कर रहे।

योग का छात्र: एक कृष्ण भक्त कैसे यौन इच्छा का दमन करता है?

प्रभुपाद: स्वयमेव। कृष्ण सुन्दर हैं। हमें चिरकाल से इसकी आदत है। गम्भीर बनो, और कृष्ण तुम्हारी रक्षा करेंगे।

योग का छात्र: कभी-कभी मुझे यौन उत्तेजना होती है.....

प्रभुपाद: क्या? तुम्हें? हर एक को होती है। पक्षियों, पशुओं, देवताओं में बाँधने वाली शक्ति यौन है। भौतिक जीवन का अर्थ ही है यौन इच्छा। यदि तुम्हें अत्यधिक यौन इच्छा होती है तो श्रीकृष्ण से प्रार्थना करो। यह जान लो कि यह माया का आक्रमण है। प्रार्थना करो तो माया भाग जाएगी। तुम अपनी शक्ति से माया से नहीं लड़ सकते।

माया अपने को श्रीकृष्ण से भी अधिक सुन्दर रूप में प्रस्तुत कर रही है। किन्तु श्रीकृष्ण अधिक सुन्दर हैं। (प्रभुपाद लीला)

विवाह का अर्थ है कि ७५ प्रतिशत यह सम्भावना है कि तुम भगवद्धाम वापस नहीं जाओगे। (सरवेन्ट ऑफ दी सरवेन्ट में उद्धृत श्रील प्रभुपाद)

तत्पश्चात् प्रभुपाद ने ब्रह्मचारी बने रहने के बारे में एक बलपूर्वक व्याख्यान देते हुए पुरुषों को बताया, "विवाह करने का झंझट क्यों मोल लें? विवाह होते ही आपकी पत्नी झट से कहेगी, 'कहाँ है घर? कहाँ हैं बच्चे? कहाँ हैं कपड़े? कहाँ है भोजन?' इस तरह अनेक समस्याएँ आएंगी।" उन्होंने कहा कि सीधे-सादे रहना और ब्रह्मचारी बने रहकर श्रीचैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रचार करना उत्तम है।" (सरवेन्ट ऑफ दी सरवेन्ट)

प्रभुपाद ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने के लाभों के विषय में व्याख्यान दिया। यदि कोई ऐसा कर सके, तो भगवद्धाम वापस जाना बहुत आसान हो जाए। ब्रह्मचारी को इसकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि कहाँ सोया जाए और कितना खाया जाए। वह किसी वृक्ष के नीचे, या बर्फ में भी सो सकता है। उसकी एकमात्र चिन्ता यही रहती है कि कृष्ण की अधिक से अधिक सेवा किस तरह की जाए। वह इतनी सेवा करता है कि रात के समय जब विश्राम करने का समय आता है तो वह तुरन्त सो जाता है क्योंकि उसे किसी तरह की चिन्ता नहीं रहती।

किन्तु गृहस्थ जीवन समस्याओं से भरा हुआ है। विवाह होते ही नाना प्रकार के उत्तरदायित्व आ पड़ते हैं जिनसे अनावश्यक रूप से जीवन की समस्याएँ बढ़ जाती हैं। स्त्री की माँग होने लगेगी कि हमारा घर कहाँ है? कब हमारे बच्चे होंगे? मेरे वस्त्र कहाँ हैं? भोजन कहाँ है? इस तरह व्यर्थ ही अति विक्षेप होंगे। इसलिए मनुष्य को बुद्धिमान बनकर इस झंझट से बचना चाहिए। अपना सारा समय पुस्तक वितरण करने में लगाएं तो माया द्वारा आपको लुभाये जाने के लिए समय ही नहीं बचेगा।

श्रील प्रभुपाद से प्रचार करने के प्रति समर्पित ब्रह्मचर्य जीवन का गुणगान सुन कर ब्रह्मचारियों को आनन्द आया। विपरीत लिंग के झंझट में फंसने से बचकर वे पहले ही एक चिन्तारहित जीवन की अनुभूति कर रहे थे। इस तरह अपने गुरु को अपनी स्थिति की पुष्टि करते हुए देख कर अपने व्रत में दृढ़ बने रहने का उनका संकल्प सुदृढ़ हो गया। किन्तु यह सदैव आसान नहीं था। जब श्रील प्रभुपाद ने प्रश्न करने के लिए कहा तो एक भक्त ने पूछा "श्रील प्रभुपाद हम लोगों को पुस्तकें वितरित करते समय अनेक स्त्रियों के पास जाना पड़ता है। फिर हम भौतिक जीवन से अभी



आये हैं और अब भी आकर्षण का अनुभव करते हैं। तो प्रभावित हुए बिना प्रचार करने का सर्वोत्तम उपाय क्या है?"

श्रील प्रभुपाद ने तुरन्त उत्तर दिया "यौन जीवन खुजलाहट है। इसे सहन करना पड़ता है। यदि आप सहनशील बन जाएं तो यह खुजलाहट चली जाएगी। इसे सहन करना सीखो और सेवा कार्य में अधिक एकाग्रचित्त रहो।" (सरवेन्ट ऑफ दी सरवेन्ट)

## श्रील प्रभुपाद के पत्रों से उद्धरण

ब्रह्मचारी को किसी तरह का नंगा चित्र नहीं देखना चाहिए। यह ब्रह्मचारी नियम का उल्लंघन है। (२८.२.६७) (इस पत्र में श्रील प्रभुपाद स्पष्ट कहते हैं कि इस में कृष्ण और गोपियों के चित्र भी सम्मिलित हैं।)

कृष्णभावनामृत का अर्थ है कृष्णभावनामृत में व्यक्तियों की संख्या बढ़ाना। इसलिए ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह भिक्षुक के रूप में द्वार-द्वार जाकर लोगों को कृष्णभावनामृत का उपदेश दे। जब भी कोई भक्त किसी व्यक्ति के पास जाता है तो वह उससे कृष्णभावनामृत के विषय में सुनेगा। इससे भक्त तथा भक्त से सुनने वाले व्यक्ति दोनों ही को अत्यधिक लाभ होगा। भारत में ब्रह्मचारियों का कार्य गुरु के लिए द्वार-द्वार जाकर भिक्षा माँगना है। किन्तु आप के देश में इस कार्य की अनुमति नहीं है इसलिए कोई न कोई युक्ति यथा पुस्तकें बेचना, सदस्य बनाना, उन्हें अपनी सभाओं में बुलाना तथा इसी तरह के कार्य ठीक रहेंगे। (१३.४.६७)

तुमने यह लिखा है कि तुम्हारी पत्नी तथा तुम्हारे बीच कोई समस्या है जिसमें तुम्हें मेरी सहायता चाहिए। सर्वोच्च लोक से लेकर सबसे निम्न लोक तक सारा जगत् इसी समस्या का सामना कर रहा है। यौन इच्छा की तुष्टि के लिए पति-पत्नी का संयोग होना आवश्यक है। मूर्ख लोग नित्य ही इस समस्या को देखते हैं फिर भी उनमें इतनी बुद्धि नहीं कि वे इससे बचें। ब्रह्मचारी जीवन का प्रशिक्षण विशेषकर इसी प्रयोजन के लिये है और छात्र को इन्हीं समस्याओं से दूर रहने के लिए सुझाव दिया जाता है कि यौन में लिप्त न हों। ऐसे व्यक्ति के लिए जिसकी आमदनी अच्छी न हो और स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा न हो, स्त्री को तुष्ट कर पाना बहुत कठिन है। स्त्री जाति भोजन तथा श्रृंगार के पर्याप्त साधनों के साथ साथ पूर्ण यौन तुष्टि चाहती है। जो भी पति अपनी पत्नी की इन तीनों आवश्यकताओं - यथा पर्याप्त भोजन, पर्याप्त वस्त्र तथा आभूषण एवं पर्याप्त यौन तुष्टि को पूरा नहीं कर सकता है उसे इन समस्याओं का सामना करना होगा। और जैसे ही वह व्यक्ति इन समस्याओं के हल में जुट जाता है कि

कृष्णभावनामृत में कोई प्रगति कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के प्रति गम्भीर है तो उसे यथा सम्भव स्त्री के संग से बचना चाहिए। विवाहित जीवन एक प्रकार का अनुज्ञा है ऐसे असमर्थ व्यक्ति के लिए जो यौन जीवन से अपने को दूर नहीं रख सकता। (१३.११.६७)

आपने न्यूयार्क के मेरे शिष्यों की प्रशंसा की है इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि विभिन्न केन्द्रों के मेरे शिष्य इसी प्रकार से प्रशिक्षित किये जा रहे हैं। अवैध यौन सम्बन्ध निषेध, मांसाहार निषेध, नशा निषेध तथा द्यूत निषेध ये चार प्रतिबन्ध उनके चरित्र पर प्रभाव डाल रहे हैं। कृष्णभावनामृत तक पहुँचने के लिए चरित्र निर्माण आधारशिला है। वैदिक आदेश यही है कि तप तथा ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करके ही कोई व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर सकता है। (१८.०१.६८)

कृष्णभावनामृत आन्दोलन वस्तुत: माया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा है। जो बद्धात्माएँ इस भौतिक जगत् का भोग करना चाहते थे यौन इच्छाओं के द्वारा बन्दी बनाये गए हैं। यदि कोई भौतिक जगत् से छूट कर बाहर आना चाहता है तो उसे यौन इच्छाओं को वश में करना चाहिए। वैदिक सभ्यता की पूरी योजना यौन इच्छाओं को वश में करने के सिद्धान्त पर आधारित है। जीवन के चार आश्रम है - ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। अधिकांश आश्रमों, यथा ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यास में यौन जीवन वर्जित है। केवल गृहस्थों को यौन जीवन की छूट है। किन्तु इसमें भी प्रतिबन्ध है। इसका अर्थ यह हुआ कि यौन जीवन लगातार निन्दित है क्योंकि वही भौतिक बन्धन का कारण है। तरुण बालकों तथा बालिकाओं में यौन जीवन की अनुभूति स्वाभाविक है किन्तु तर्क तथा ज्ञान के द्वारा ऐसे यौन जीवन को रोकना पड़ता है। हमारे समाज में विवाहित लड़के तथा लड़कियाँ हैं, यौन जीवन वर्जित नहीं है। यदि जगतानन्द १६ या १७ वर्ष की ही आयु में कामेच्छा का इतनी तीव्रता से अनुभव कर रहा है तो उसे विवाहित जीवन का उत्तरदायित्व संभालने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं किसी भी स्थिति में अपने संघ में अवैध यौन जीवन जैसी मूर्खता की अनुमति नहीं दे सकता। जगतानन्द को चाहिए कि हरे कृष्ण मन्त्र का जप करके तथा श्रीकृष्ण से अपनी सहायता करने के लिए प्रार्थना करके अपनी यौन इच्छा को दमित करे। यदि ऐसा नहीं करता तो उसे विवाह करने के लिए तथा सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। वस्तुत: नवयुवकों तथा युवतियों की संगति ब्रह्मचारी जीवन के लिए घातक है किन्तु आपके देश में नवयुवकों तथा युवतियों को मुक्तभाव



से परस्पर मिलने से रोक पाना असम्भव है। अत: जब तक वे विवाहित न हो जाएं उन्हें इन यौन इच्छाओं को स्वेच्छा से रोकना होगा। यदि वे कृष्णभावनामृत में पर्याप्त दृढ़ हों तो कितनी भी यौन इच्छा उन्हें विचलित नहीं कर पाएगी। यदि विचलित करती भी है तो आकर चली भी जाएगी। श्रीकृष्ण मदनमोहन हैं अर्थात कामदेव को भी मोहने वाले हैं। और कामदेव तो यौन इच्छा के देवता है। अत: यदि कोई कामदेव द्वारा मोहित न होकर, कामदेव को मोहना चाहता है तो उसे कामदेव के मोहने वाले श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करनी चाहिए (२१.१.६८)

मैं समझता हूँ कि कभी-कभी तुममें यौन इच्छाएँ तथा नैराश्य उत्पन्न होता है। भौतिक जगत् में यौन इच्छा भौतिक अस्तित्व की बन्धक शक्ति है। दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति ऐसी इच्छाओं को उसी तरह सहता है जिस तरह खुजली की खुजलाहट सही जाती है। यदि नहीं सहता तो वह वैध विवाह करके यौन इच्छा पूरी कर सकता है। अनैतिक यौन जीवन तथा आध्यात्मिक प्रगति साथ-साथ नहीं चल सकते। कृष्णभावनामृत में पूरी तरह संलग्नता तथा निरन्तर जप करने से तुम सारी असुविधाओं से बच सकोगे। (२२.१.६८)

यदि तुम यौन जीवन चाहते हो तो तुम्हें विवाह कर लेने की छूट है। किन्तु माया की किसी प्रतिनिधि से अवैध यौन मत करना। इससे तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में सहायता नहीं मिलेगी। हम यौन जीवन के लिए मना नहीं करते, किन्तु अवैध यौन की अनुमति नहीं दे सकते। किसी युवक के लिए यौन इच्छा को रोक पाना बहुत कठिन है अत: उसके लिए सबसे अच्छा मार्ग यही होगा कि वह विवाह कर ले और एक उत्तरदायी भद्र व्यक्ति की तरह रहे। अनुत्तरदायी व्यक्ति न तो भौतिक उन्नति कर सकता है, न आध्यात्मिक। तुम बुद्धिमान व्यक्ति हो और जैसा हम कहते हैं उसे समझ सकते हो, अत: उसका पालन करो तो तुम्हें लाभ मिलेगा। त्रुटियाँ हम कर सकते हैं, क्योंकि ऐसा करना मानव क्रिया क्षेत्र के बाहर नहीं है किन्तु साथ ही तुम्हें अपनी अच्छी चेतना का प्रयोग करना चाहिए कि किस तरह जीवन के लक्ष्य, श्रीकृष्ण को प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए कृपया तुम जप की विधि का पालन कड़ाई से, निष्पाप होकर करो तो सब कुछ ठीक हो जाएगा (१२.२.६८)

यदि हम यौन जीवन को शून्य कर लें तो समझो कि हम ५० टका मुक्त हो गये। (१५.२.६८)

इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कोई ब्रह्मचारी है या गृहस्थ, वास्तविक परीक्षा तो यह है कि वह कृष्णभावनामृत को किस तरह सम्पन्न कर रहा है। (४.७.६८)

तुम्हारे शत्रु श्रीमान् काम के बारे में यही कहना है कि हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि श्रीकृष्ण किसी असुर, श्रीमान् कामदेव, या उसके पिता या पितामह से अधिक बलवान हैं। कोई तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकता, आवश्यक है कि तुम दृढ़ता से श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करो। किन्तु यह प्रस्ताव कि विवाह से काम की समस्या हल हो जाएगी, व्यवहारिक नहीं है। न ही पत्नी को अपनी कामेच्छा की तुष्टि के लिए मशीन समझा जाए। विवाह बंधन को पवित्र समझा जाना चाहिये। जो व्यक्ति काम का दमन करने के लिए विवाह करता है वह भूल करता है। क्योंकि काम की तुष्टि केवल इन्द्रियतृप्ति में लिप्त होने से नहीं होती। इसकी तुलना पेट्रोल की प्रचुर मात्रा से अग्नि को बुझाने से की जाती है। भले ही कुछ काल के लिए पेट्रोल डालने से आग बुझती प्रतीत हो किन्तु पेट्रोल स्वयं इतना खतरनाक होता है कि यह कभी भी जलने लग सकता है। अत: काम का दमन कर पाना कठिन है। तब तुम्हें अर्चाविग्रह की पूजा ग्रहण करनी होगी। अत: विवाह प्रस्ताव के अतिरिक्त तुम तुरन्त ही अर्चाविग्रह की पूजा शुरु कर दो। मुझे विश्वास है कि यह विधि, तुम्हारे नियमित जप के सहयोग के साथ, कामदेव को मार देगी। (७.१०.६८)

जब तक हमारे ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी रहने के प्रति अत्यधिक उत्सुक न हों, तो मैं यही कहूँगा कि हर कोई विवाह करे। किन्तु यदि कोई ब्रह्मचारी के रूप में रह सकता हो तो श्रेष्ठतर है। (१६.१०.६८)

प्रत्येक को अर्चाविग्रह की पूजा करनी चाहिए। सफलता की दूसरी विधि है कि जब कोई अत्यधिक काम व्याकुलता अनुभव करे तो वह गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की लीलाओं के बारे में सोचे। इससे उसकी कामेच्छा विस्मृत हो जाएगी। हाँ गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की लीलाओं के बारे में सोचें किन्तु उनका अनुकरण न करें। (८.११.६८)

तुमने लिखा है कि तुम्हें यौन चंचलता को लेकर कुछ कठिनाई है। तो फिर तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते? या तो तुम गृहस्थ बन जाओ अन्यथा और क्या विकल्प है? या तो तुम अपने को प्रशिक्षित करो और श्रीकृष्ण से प्रार्थना करो कि तुम ब्रह्मचारी बने रहना चाहते हो अथवा विवाह कर लो। (२.१२.६८)

मैं सदैव इसकी संस्तुति करता हूँ कि यदि सम्भव हो तो मनुष्य ब्रह्मचारी रहे (२४.१.६९)

ब्रह्मचारी बने रहने की तुम्हारी इच्छा जान कर मैं प्रसन्न हूँ। यदि तुम अपने निर्णय पर अटल रहे तो तुम इसी जीवन में बिना दूसरे जन्म की प्रतीक्षा किये भगवद्धाम



वापस जाओगे। तुम इस सिद्धान्त पर दृढ़ रहने का हर यत्न करो और केवल श्रीकृष्ण की सेवा में अपने को लगाओ। इससे माया के आक्रमण से तुम्हारी रक्षा हो सकेगी। ज्योंही हममें शिथिलता आती है कि हमारे हृदय में माया श्रीकृष्ण का स्थान ले लेती है। अन्यथा यदि श्रीकृष्ण सदैव आसीन रहें तो माया को स्थान ग्रहण करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। इस विधि का पालन करने का प्रयास करो। निश्चितरूप से तुम सफल होगे। (१.२.६९)

जहाँ तक यदा-कदा माया द्वारा तुम्हारी चंचलता की बात है उसका उत्तर बहुत सीधा है कि मनुष्य को या तो कठोरता से अपनी इन्द्रियों को वश में करना चाहिए अथवा विवाह कर लेना चाहिए। यदि वह कृष्णभावनामृत में दृढ़ है तो गृहस्थ बनने का कोई कारण नहीं है, किन्तु यदि इतने पर भी वह यौन इच्छा से विचलित होता है तो एकमात्र विवाह ही दूसरी सम्भावना है। किन्तु यदि वह अब भी ब्रह्मचारी है तो उसे समस्त विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में इस विषय में धोखा देने के लिए स्थान नहीं है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सन्तान उत्पन्न करने के लिए गृहस्थ द्वारा संभोग किये जाने की कभी भर्त्सना नहीं की। किन्तु जब छोट हरिदास की बात आई जो संन्यासी होने का ढोंग कर रहा था किन्तु फिर भी वासनापूर्ण विचारों में संलग्न था, तो श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसे सहन नहीं किया और उन्होंने छोट हरिदास को अपनी संगति से बहिष्कृत कर दिया। इसलिए यह अति महत्वपूर्ण है कि हम अपने ब्रह्मचारी व्रत पर अत्यन्त दृढ़ रहें अथवा यदि ऐसा करना कठिन हो तो इसका अगला संतोषजनक हल है गृहस्थ जीवन (८.२.६९)

यह बहुत अच्छी बात है कि तुम ब्रह्मचारी बने रहना चाहते हो। वस्तुत: इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कोई गृहस्थ है या ब्रह्मचारी। कृष्णभावनामृत में उद्देश्य के प्रति निष्ठा ही एकमात्र योग्यता है। श्री नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं कि वे ऐसे किसी भी व्यक्ति की संगति के लिए लालायित रहते हैं, चाहे वह संन्यासी हो या गृहस्थ, जो कृष्णभावनामृत के सागर में निमग्न हो। यही एक योग्यता है। (१३.२.६९)

उत्तेजित होना कोई बहुत असामान्य बात नहीं है, किन्तु इस पर संयम रखना वास्तविक बात है। यौन जीवन इन्द्रियतृप्ति नहीं है, अवैध यौन जीवन ही इन्द्रियतृप्ति है। (२३.३.६९)

जहाँ तक ब्रह्मचारी बने रहने का तुम्हारा निर्णय है, वह अत्युत्तम है और यदि तुम विधि-विधानों का पालन करो, नियमित रूप से जप करो तथा भगवान् बलराम एवं भगवान् चैतन्य से प्रार्थना करो तो निश्चय ही वे तुम्हें आवश्यक शक्ति प्रदान करेंगे

और यदि तुम ब्रह्मचारी बने रह सको तो तुम सांसारिक जीवन के ढेर सारे झंझटों से बच सकते हो। (२१.५.६९)

ब्रह्मचारी को अपने गुरु की सेवा करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करना होता। यह भागवत का आदेश है। ब्रह्मचारी को गुरु के तुच्छ दास की तरह काम करना होता है और जितना भी वह संग्रह करता है वह गुरु की सम्पत्ति हो जाती है, ब्रह्मचारी की सम्पत्ति नहीं। यही वास्तविक ब्रह्मचारी जीवन है। यदि ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए धन कमाता है तो वह ब्रह्मचारी जीवन नहीं है। अच्छा हो व्यक्ति गृहस्थ बन जाए और शान्तिपूर्वक जीवनयापन करे। (२९.६.६९)

जहाँ तक विवाह विषयक तुम्हारा प्रश्न है, बात यह है कि मैं संन्यासी होने के कारण पारिवारिक जीवन की चिन्ता नहीं करता, किन्तु चूँकि मैं कृष्णभावनामृत में अपने सारे शिष्यों को सुखी देखना चाहता हूँ, इसलिए जो शिष्य कुछ यौन विचलन अनुभव करते हैं उनसे मेरा अनुरोध है कि वे विवाह कर लें। दूसरा नियम यह है कि जो ब्रह्मचारी हैं वे अपनी सारी आय तथा संग्रह कृष्णभावनामृत आन्दोलन को समर्पित कर दें। जो विवाहित हैं उन्हें कार्य करके यथा सम्भव कमाना चाहिए और अपनी कमाई का कम से कम ५० टका कृष्णभावनामृत आन्दोलन पर खर्च करना चाहिए। तो तुम्हें विवाह कर लेने की अनुमति देने में हमें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु यह तुम्हारे विचार करने का विषय है कि तुम कठिन श्रम करके श्रीकृष्ण तथा अपने परिवार दोनों के लिए धन कमाओगे। ऐसा नहीं है कि तुम विवाह कर लो और कमाओ नहीं। निःसन्देह संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करके यदि तुम थोड़ी सी आमदनी से तुष्ट हो सकते हो तो यह भी उत्तम है। (५.७.६९)

हमें सदैव श्रीकृष्ण से प्रार्थना करनी चाहिए कि हम निर्बल हैं और माया अति प्रबल है। अतः हर पग पर उनके संरक्षण की याचना करो जिससे माया अपने त्रिशूल से हम पर चोट न पहुँचा सके। शायद तुमने हाथ में त्रिशूल लिए दुर्गा का चित्र देखा है। यह त्रिशूल भौतिक संसार के तीन तापों का प्रतीक है। माया का सर्वाधिक आकर्षक स्वरूप स्त्रियाँ तथा धन हैं। हम कृष्णभावनाभावित व्यक्तियों को प्रचार कार्य के दौरान स्त्रियों तथा धन से सम्पर्क रहता है और अपने को बचाने का एकमात्र निरोधी उपाय है उन्हें अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए स्वीकार न करना। तब हम पर्याप्त सशक्त बने रहेंगे। भौतिकतावादी लोग हर वस्तु का उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए करते हैं जब कि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति हर वस्तु को श्रीकृष्ण की संतुष्टि के लिए ग्रहण करते हैं। वैसे स्त्रियों तथा धन में स्वयं कोई दोष नहीं है किन्तु अनुचित उपयोग से ये दोषपूर्ण



बन जाते हैं। अनुचित उपयोग है इन्द्रियतृप्ति के लिए उन्हें स्वीकार करना। जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है कि श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण दृढ़ता से ग्रहण करने, उनके पवित्र नाम का निरन्तर जप करने तथा उनकी सेवा में लगे रहने के लिए सदैव प्रार्थना करते रहने से हम अत्यन्त सशक्त बने रह सकते हैं। इस तरह वे हमारी दुर्बलता से हमारी रक्षा करेंगे। (१८.१०.६९)

कृष्णभावनामृत किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ या संन्यासी सभी कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करने के लिए योग्य हैं। भौतिक परिवेश में प्रबल इन्द्रियों पर नियन्त्रण के क्रमशः विकास के लिए ये विभिन्न अवस्थाएँ हैं। किन्तु किसी व्यक्ति विशेष के लिए उपयुक्त आश्रम, जिसमें वह कृष्णभावनामृत को सही ढंग से सम्पन्न कर सके वही अपनाये जाने की सर्वश्रेष्ठ स्थिति है। सामान्यतया यदि कोई ब्रह्मचारी बना रह सके तो सबसे सुविधाजनक है और तब ब्रह्मचारी से संन्यास आश्रम ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु इस कलियुग में भक्तिविनोद ठाकुर की संस्तुति है कि गृहस्थ होकर कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करना कहीं अच्छा है। (२.११.६९)

कृष्ण अपने निष्ठावान भक्तों के प्रति अत्यन्त दयालु है किन्तु हमें यह भी याद रखना होगा कि माया अति प्रबल है। इसलिए हमें सदैव श्रीकृष्ण की सेवा करने में लगे रहना होगा। हमें प्रतिक्षण श्री कृष्ण को दिव्य आनन्द प्रदान करने के लिए कोई न कोई सेवा करते रहना चाहिए। यदि हम इसे स्मरण नहीं रखते तो माया हमें पकड़ लेने के लिये ठीक वहीं उपस्थित है। यह सब इस पर निर्भर करता है कि हम श्रीकृष्ण की ओर उन्मुख हैं या माया की ओर। यदि तुम श्रीकृष्ण की ओर उन्मुख होगे तो तुम कृष्णभावनामृत को प्राप्त करोगे और यदि माया की ओर उन्मुख हुए तो तुम भौतिक प्रकृति द्वारा मोहित कर लिये जाओगे। श्रीकृष्ण एवं माया धूप तथा छाँव की तरह हैं जो एक दूसरे के साथ हैं। यदि तुम थोड़ा इधर हुए तो धूप में रहोगे और छाँव का प्रश्न ही नहीं उठेगा। किन्तु यदि थोड़ा दूसरी ओर हुए तो तुम अँधेरे में रहोगे। अतः यदि हम श्रीकृष्ण की सेवा में लगे रहने का स्मरण रखें तो माया नहीं रहेगी और हर काम ठीक हो जाएगा। कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के इस महान रहस्य को सदा याद रखो। (२०.११.६९)

यह मेरा स्पष्ट मत है कि यदि कोई व्यक्ति सदैव ब्रह्मचारी रहे और यौन इच्छा से विचलित न हो या ऐसी इच्छा को सह ले तो उसे विवाह करने तथा अतिरिक्त उत्तरदायित्व उठाने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु जो मन से विचलित हो उसे अवश्य ही विवाह कर लेना चाहिए। इसलिए यह तो अपने आप निश्चय करना होगा

कि विवाह किया जाए या नहीं। किन्तु यह तथ्य है कि यह यौन इच्छा अधिक बाधक नहीं बनती यदि मनुष्य श्रीकृष्ण की सेवा में पूरी तरह लगा रहे। किन्तु तुम लोगों को कर्मियों तथा विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ कार्य करना होता है। ऐसी दशा में यदि तुम्हारी सहायता करने के लिये एक अच्छी पत्नी हो तो बहुत ही अच्छा हो। दूसरी कठिनाई यह है कि आधुनिक सभ्यता में हर कोई स्वतंत्र मानसिकता वाला है। लड़कियाँ उतनी विनीत तथा अपने पति की आज्ञाकारिणी नहीं हैं। इसलिए तुम्हें अपनी भावी पत्नी की ऐसी सनकों को सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए। हमारी वैदिक सभ्यता के अनुसार पति-पत्नी के मध्य असहमति को गम्भीरता से नहीं लिया जाता। किन्तु आधुनिक युग में पति या पत्नी द्वारा सम्बन्ध-विच्छेद तक की छूट है। ऐसी चीजें अच्छी नहीं हैं। किन्तु विवाह कर लेने के बाद पति-पत्नी के बीच अवश्य ही कुछ न कुछ असहमति या अनबन होगी। अत: इन सारी बातों पर विचार कर लो और अपने आप निर्णय लो। किन्तु यदि तुम विवाह करते हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। (२६.११.६९)

गृहस्थ होने से उसके लिये कुछ विशेष विचारणीय बातें होंगी। ब्रह्मचारी कोई भी असुविधा सह सकता है किन्तु स्त्रियाँ तथा बच्चे नहीं सह सकते। (१५.१२.६९)

यह मेरा स्पष्ट सुझाव है कि यदि कोई ब्रह्मचारी बना रह सकता है तो यह अत्युत्तम है किन्तु ढोंगी ब्रह्मचारियों की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवद्गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति बाहर से आत्म-संयमित होने का दिखावा करता है किन्तु भीतर ही भीतर इन्द्रियतृप्ति के बारे में सोचता है वह मिथ्याचार के रूप में निन्दनीय है। हमें अनेक मिथ्याचारी नहीं अपितु एक निष्ठावान आत्मा चाहिये। पत्नी स्वीकार करने और मन के किसी विचलन के बिना जीवन बिताने और इस तरह कृष्णभावनामृत में गम्भीरता से आगे बढ़ने में कोई आपत्ति नहीं है। (२.२.७०)

जहाँ तक काम को वश में करने की बात है, सबसे अच्छा होगा कि अत्यधिक मसालेदार भोजन न किया जाए और सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन किया जाए। नियमित रूप से जप करो और जितनी जल्दी हो सके विवाह कर लो तथा कृष्णभावनामृत में शान्त गृहस्थ जीवन व्यतीत करो। (२७.०५.७१)

अवैध यौन जीवन का तिरस्कार ही हमारा पहला आदर्श है। (१४.१०.७१)

ब्रह्मचारी जीवन अधिक अच्छा है क्योंकि यदि वीर्य को बचा लिया जाए तो यह मस्तिष्क को उर्वर बनाकर स्मरण शक्ति को तीक्ष्ण बनाता है। और यदि अच्छी



स्मरण शक्ति हो तो हमारा कृष्णभावनामृत पूर्ण बनता है - श्रवण, कीर्तन, स्मरण - यही विधि है (२०.१.७२)

हमारे विचार सदैव बदलते रहते हैं - मन का यही स्वभाव है अत: आप यह आशा नहीं कर सकते कि बड़े-बड़े सन्त पुरुष भी विचारों के आने-जाने से मुक्त हैं। किन्तु सोचने के बाद अनुभव करने तथा इच्छा करने का क्रम चलता है - इच्छा करना विचारों को कार्य रूप में परिणित करने की अवस्था है। अत: यदि हम अपनी बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं तो हम विचारों को कार्य रूप में प्रकट होने से पहले ही मार सकते हैं। किन्तु क्योंकि हम बुद्धिपूर्वक कुछ न कुछ भोग करने के लिये उत्याधिक उन्मुख हैं, इसलिए हमें पढ़कर तथा विचार-विमर्श करके और अन्यों को उपदेश देकर अपनी बुद्धि को प्रतिदिन तीक्ष्ण करते रहना होता है। इस तरह हम अपने दर्शन को चुनौती देने वालों को आसानी से परास्त कर पाते हैं और सारी बातें विभिन्न दृष्टिकोण से प्रकट होने के कारण अत्यन्त स्पष्ट हो जाती हैं। (२८.२.७२)

यह ब्रह्मचारी प्रणाली विद्यमान है किन्तु यदि कोई व्यक्ति उतना सशक्त नहीं है तो उसे विवाह कर लेने दिया जाता है किन्तु उसे सोच लेना चाहिए कि इसके परिणाम सदैव कष्टप्रद होंगे। मैं सर्वत्र पति-पत्नी को उनके परिवार सहित देखता हूँ और वे सभी कष्ट भोगते हैं किन्तु तब भी सन्तानें उत्पन्न करते जाते हैं। यौन का अर्थ है कष्ट। इसलिए मनुष्य को धीर बनना चाहिए और इस यौन जीवन के प्रति आकृष्ट नहीं होना चाहिए। अब से, जो भी विवाह करने की सोचे उसे कुछ न कुछ बाहरी आय अर्जित करनी चाहिए और मन्दिर से बाहर रहना चाहिए। उन्हें पहले से इसे जान लेना चाहिए और ऐसा बोझ उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। वे विवाह करें लेकिन अपने बल पर। मैं और अधिक अनुमति नहीं दे सकता। मेरे गुरु महाराज ने कभी अनुमति नहीं दी किन्तु जब मैं तुम्हारे देश में आया तो विशेष परिस्थिति थी इसलिए मैंने इसकी छूट दी। किन्तु अब मैं और अधिक देने के पक्ष में नहीं हूँ इसलिए अब मैं स्वीकृति नहीं दूँगा। इस जानकारी के साथ कि ऐसी व्यवस्थायें सदैव कष्टदायक होती हैं, वे अपने उत्तरदायित्व पर विवाह कर सकते हैं। (२८.२.७२)

यौन के विषय में सोचने के तुम्हारे इस प्रश्न के सम्बन्ध में- कि क्या यह भी अवैध यौन का एक रूप है या हमारे चार नियमों के विरुद्ध है? हाँ, यौन का चिंतन भी अवैध यौन जैसा ही है, किन्तु जो प्रवृद्ध नहीं है वह इससे बच नहीं सकता। किन्तु इससे हमारे नियमित विधान में बाधा नहीं पहुँचती। हम सारे विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करेंगे और कीर्तन करेंगे तो ये विचार आकर चले जाएंगे। विचार

तो आएगा ही, यहाँ तक कि शिवजी जैसे सन्त पुरुष तक आने वाले विचारों से मुक्त नहीं हैं तो फिर तुम्हारी क्या बात है। अत: हम यही कह सकते हैं कि ऐसा सोचना अपराध नहीं है क्योंकि तुम इसके अभ्यस्त हो। किन्तु सोचने से आगे अनुभव करना तथा इच्छा करने का क्रम चलता है। अत: यौन सम्बन्धी विचार उठ सकते हैं - सन्तपुरुषों तक के लिए बच पाना मुश्किल है - फिर भी अनुभव करने तथा इच्छा करने की अगली अवस्थाओं में हम इस यौन इच्छा पर आसानी से विजय पा सकते हैं। इच्छा करने से बचना चाहिए और उस पर अमल करना बन्द करना चाहिए अन्यथा अवैध यौन जीवन के मूलभूत निषेध को तोड़ने का अपराध होगा। यह सोचना मूर्खता है कि "चूँकि विचार आते हैं इसलिए मैं इसे व्यवहारिक रूप दूँगा।" किन्तु पुरानी आदत होने से हम इसे तब तक नहीं रोक पाते जब तक हम अनुभव, इच्छा तथा कार्य के स्वभाव और किस तरह बुद्धि के सही उपयोग से इन विचारों को क्रियान्वित होने से रोका जा सके, यह समझ न लें। यह कृष्णभावनाभावित विधि- विधानों का व्यवहारिक प्रयोग है। यहाँ तक कि स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि कभी-कभी जब मैं कठपुतली देखता हूँ तो मेरा मन चञ्चल हो जाता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इसे व्यवहारिक रूप दें। यह बुद्धि है। मनुष्य को आश्वस्त होना चाहिए कि यौन जीवन का अर्थ कष्ट है, इसमें कोई अपवाद नहीं है। अत: वह इसे विचार आने की अवस्था पर रोक सकता है जिससे इसका अनुभव होना, इच्छा होना तथा कार्यरूप में परिणत होना तो दूर रहा। मैं इस कष्टदायक विवाह कार्य से अत्यधिक ऊब चुका हूँ क्योंकि लगभग हर दिन पति-पत्नी से कोई न कोई शिकायत पाता रहता हूँ। संन्यासी होने के कारण विवाह का परामर्शदाता होना मेरा कार्य नहीं है। इसलिये अब आगे मैं कोई विवाह की स्वीकृति देने नहीं जा रहा। जो लोग विवाह करना चाहते हैं उन्हें पहले से जान लेना चाहिए और मन्दिर से अलग पत्नी तथा घर को चलाने के लिए बाहरी आय का प्रबन्ध करना चाहिए। मन्दिर में पति तथा पत्नी को अलग अलग रहना होगा। ऐसा होना चाहिए अन्यथा हमारे जैसे आध्यात्मिक संघ का क्या अर्थ है? मैंने यह छूट दी किन्तु मैं किसी ऐसी बात को किस तरह प्रोत्साहन दे सकता हूँ जो इतनी कष्टप्रद सिद्ध हो चुकी है? (२८.२.७२)

तुम्हारा प्रश्न है कि ब्रह्मचारीगण किस हद तक अविवाहित ब्रह्मचारिणियों के साथ मंदिर में संगति कर सकते हैं। ब्रह्मचारी के रूप में तुम्हें ब्रह्मचारिणियों से बिल्कुल ही मिलना-जुलना नहीं चाहिए। वस्तुत: उनका मुख तक नहीं देखना चाहिए, किन्तु तुम्हारे देश में ऐसा सम्भव नहीं है। अत: जहाँ तक हो सके दूर रहो और न्यूनतम बात करो। ब्रह्मचारी को परामर्श दिया जाता है कि वह युवती के निकट न जाए। ब्रह्मचारी



को चाहिए कि हर स्त्री को माता कह कर सम्बोधित करे। तुम्हारे देश में यह कुछ कठिन है किन्तु नियम यही है कि बचा जाए। एकान्त में या गुप्तरीति से बातें करना कठोरता से वर्जित है। यदि तुम्हें दर्शन तथा अन्य विषयों पर विचार-विमर्श करना हो तो किसी बैठक में सभी के समक्ष विचार-विमर्श कर सकते हो, गुप्त रूप से नहीं। एक ही कमरे में ब्रह्मचारी तथा अविवाहित स्त्री का अकेले होना सख्त वर्जित है। (३०.९.७२)

ईश्वर से प्रेम करने के अतिरिक्त प्रेम करने की संभावना नहीं है। वह केवल कामेच्छा रहती है। पदार्थ के इस वातावरण के अन्तर्गत समस्त मानवीय कार्यकलाप और न केवल मनुष्यों के अपितु सारे जीवों के कार्यकलाप यौन इच्छा अर्थात पुरुष तथा स्त्री के बीच के आकर्षण पर आश्रित हैं, उसी से प्रेरित होते हैं और इसलिये दूषित होते हैं। उसी यौन जीवन के लिए सारा ब्रह्माण्ड उसी के चारों ओर नाच रहा है और कष्ट भोग रहा है। यही कटु सत्य है। यहाँ पर तथाकथित प्रेम का अर्थ है कि "तुम मेरी इन्द्रियों की तृप्ति करो और मैं तुम्हारी इन्द्रियों की" और ज्यों ही तृप्ति में बाधा आयी नहीं, तुरन्त ही सम्बन्ध-विच्छेद, अलगाव, झगड़ा तथा घृणा उत्पन्न होती है। प्रेम की इस मिथ्या धारणा के नाम पर अनेक बातें चल रही हैं। वास्तविक प्रेम का अर्थ है भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम। (आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान पुस्तक में प्रकाशित, २७.११.७३ के दिन, लिने लुडविग को लिखा गया पत्र)

आप सब नायकगण यह देखें कि दीक्षा, स्वच्छता, भक्तों के वस्त्र तथा कार्य-कलाप, स्त्रियों तथा पुरुषों की संगति पर प्रतिबन्ध के विषय में कृष्णभावनाभावित मानदण्डों का दृढ़ता से पालन हो। भक्ति मनमाने ढंग से सम्पन्न नहीं की जा सकती। (१.१.७४)

मनुष्य जीवन तपस्या के लिए है और यह तपस्या गुरुकुल में ब्रह्मचारी जीवन के साथ शुरु होती है। छात्र को भूमि पर सोना चाहिए। दिन में उसे अपने गुरु के लिए भिक्षाटन करना चाहिए। उसे आरामदेह भौतिक व्यवस्था करने के लिए कठोर श्रम नहीं करना चाहिए। हमारे गुरुकुल प्रशिक्षण का यह फल है कि यद्यपि इस युग में हर व्यक्ति शूद्र के रूप में उत्पन्न होता है, किन्तु हम प्रथम कक्षा के ब्राह्मण उत्पन्न कर रहे हैं जो अपने साथी का वास्तव में कल्याण कर सकते हैं। (११.४.७४)

कृष्ण सदैव शक्तिमान हैं। यदि तुम श्रीकृष्ण की सेवा में पूरी तरह लगे रहो तो स्त्री का आकर्षण कपोल कल्पना सिद्ध होगा। यह केवल श्रीकृष्ण की कृपा है। नि:सन्देह अब हम वृद्ध हैं किन्तु वृद्ध पुरुष भी स्त्रियों द्वारा आकृष्ट होते हैं। इसलिए

चाहे वृद्ध पुरुष हो या नवयुवक, यदि उसका मन श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर स्थिर है तो इस तरह का भौतिक आकर्षण नहीं होगा। (१.९.७४)

यदि तुम ब्रह्मचारी बने रह सको तो वही जीवन की सर्वोत्तम विधि है। (७.९.७४)

तुम जितना ही कृष्णभावनाभावित बनोगे उतना ही यौन जीवन को भूलते जाओगे। यौन जीवन भौतिक बन्धन का मूल कारण है। जब कोई कृष्णभावनामृत ग्रहण करता है तो यौन अन्ततः गर्हित बन जाता है; और तब वह भगवद्धाम वापस जाने का पात्र बन जाता है (७.९.७४)

यदि मन में चंचलता होती है तो यह कोई दोष नहीं है। वस्तुतः भौतिक जगत में जब तक मन कृष्णभावनामृत में पूरी तरह शुद्ध न हो जाए यह मात्र स्वाभाविक है। किन्तु भक्ति में लगने से शनैः शनैः मन शुद्ध हो जाएगा और चंचलता समाप्त हो जाएगी। इसलिए यदि मन में कोरी चंचलता है तो इसमें कोई दोष नहीं है। किन्तु यदि यौन लिप्तता है, तो यह बड़ा अपराध है। यदि कोई अवैध यौन जीवन में लिप्त होता है तो वह गुरु को दिया गया वचन तोड़ता है और यह महान अपराध है। (२८.१२.७४)

ब्रह्मचारी का कार्य अध्ययन करना है और फिर गुरु के नाम पर भिक्षा संग्रह करना है। स्त्री अच्छी होती है और पुरुष भी अच्छा होता है किन्तु यदि नियमन के बिना दोनों को मिला दें तो दोनों बुरे बन जाते हैं। भारत में स्त्रियों के साथ एकान्त में बातें करने पर तुरन्त भर्त्सना की जाती है। (१४.७.७५)

दिल्ली में एक प्रकार का लड्डू मिलता है जिसका ऐसा स्वाद होता है कि जिस किसी ने एक बार चखा है वह पछताता है, ओह में पुनः किस प्रकार इसका आस्वाद करना चाँहूगा। किन्तु जिसने उसे कभी नहीं चखा और जिसने चखा है, दोनों ही पछताते हैं। पत्नी ऐसी ही है। यौन जीवन घृणित है, किन्तु भ्रम वश हम इसे अच्छा सोचते हैं। (१.९.७५)

कृष्ण तथा यौन जीवन दो चीजें है। यदि तुम्हें कृष्ण की चाह है तो तुम्हें यौन जीवन से ऊपर उठना होगा। इसके लिए कुछ शक्ति चाहिए। इसलिए तुम्हें लोगों को विश्वास दिलाना होगा कि इन विधि-विधानों, विशेषतया हरे कृष्ण कीर्तन द्वारा मनुष्य बलवान बन सकता है। दुर्भाग्यवश हममें इस कीर्तन के लिए रुचि नहीं है। यही हमारा दुर्भाग्य है। (१८.११.७५)



विवाह की संस्तुति नहीं की जा रही। क्या तुम कोई नौकरी करने, मन्दिर के बाहर एक कमरे में रहने, पत्नी को चूड़ी, साड़ी तथा संभोग देने के लिए तैयार हो? अच्छा यही होगा कि तुम इस कीर्तन (जप) तथा श्रवण पर ध्यान केन्द्रित करो, अन्यों को शिक्षा दो तथा उन्हें प्रसाद प्रदान करो। (६.१२.७५)

जहाँ तक तुम्हारे विवाह करने की बात है, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु ब्रह्मचारी के रूप में तुम विवाह करने के लिए बाध्य नहीं हो। विवाह करने से तुम्हें क्या लाभ होगा? इस पर विचार करना चाहिये। यदि कोई ब्रह्मचारी रह सके तो यह सर्वश्रेष्ठ है। इस जीवन को समाप्त करके भगवान् के पास वापस जाओ, कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही मूल विचार है। अतः तुम ही निश्चय करो। (३१.१२.७५)

ब्रह्मचारी अपने गुरु के निवास स्थान पर रहता है और गुरु के लाभार्थ, उसके भरण-पोषण के लिए भिक्षा माँगकर, सफाई कर, कृष्णभावनामृत के नियम सीखकर तथा भागवत धर्म की विधि में लगकर, कार्य करता है। इस प्रकार प्रारम्भ में कठोर प्रशिक्षण के कारण उसके जीवन की नींव दृढ़ तथा स्वस्थ बन जाती है जिससे वह माया की शक्तियों को जीत सकता है। (२०.१.७६)

माया पर विजय पाने का एक ही मार्ग है कि निष्ठा तथा गम्भीरतापूर्वक श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की जाए। इसलिए अत्यन्त निष्ठा के साथ जप करो और चार आवश्यक नियमों का पालन करो। इससे तुम्हें शीघ्र ही भौतिक आसक्तियों के दुःखों से छुटकारा मिल जायेगा। (८.७.७६)

कामेच्छाओं को नियंत्रित कर व्यक्ति परम संयमी बन जाता है। (७.९.७६)

यदि तुम्हें माया आकर्षक लगती है तो फिर गृहस्थ के रूप में ईमानदारी से रहो और हमारे आन्दोलन में योगदान करो। मेरा अनुरोध है कि तुम साधारण मूर्ख व्यक्ति मत बनो। जीवन की किसी भी स्थिति में कृष्णभावनामृत बनाये रखो। यही सफलता है। (२९.१०.७६)

यदि कोई व्यक्ति पूरी तरह से प्रचार में लगा रहे तो उसका मन दमित हो जायेगा। यही एकमात्र उपाय है। (२०.१२.७६)

यौन लिप्तता अच्छी नहीं होती। यह पूरी तरह भौतिक है और हमें इससे ऊपर उठना है। किन्तु जब किसी को श्रीकृष्ण में अटूट श्रद्धा होती है तो वह इस वेग को पार कर सकता है। अब तुम अपने यौन आदेशों को दण्डित कर सकोगे। तुम दृढ़ संकल्प हो इसलिए श्रीकृष्ण तुम्हारी सहायता करेंगे। (१९.१.७७)

# श्रील प्रभुपाद के प्रवचनों से उद्धरण

अत्याहार का अर्थ है आवश्यकता से अधिक भोजन करना या आवश्यकता से अधिक संग्रह करना। आहार का अर्थ है भोजन करना और आहार का अर्थ एकत्र करना या संग्रह करना भी है। तो, नि:संदेह किसी भी गृहस्थ को आपातकाल के लिए बैंक में कुछ धन जमा करने की आवश्यकता होती है। गृहस्थों के लिये, निश्चय ही, इसकी अनुमति है। किन्तु हम तो संन्यासी हैं। हमें कोई धन संग्रह नहीं करना है। देखा? यही भारतीय दर्शन प्रणाली है। किन्तु जो गृहस्थ हैं, पारिवारिक व्यक्ति हैं, उन्हें आपातकाल के लिए कुछ संचित धन चाहिए। अन्यथा जो संन्यासी हैं, जो ब्रह्मचारी हैं, उन्हें अपने जीवनयापन के लिए बैंक में अलग से धन जमा करने की अनुमति नहीं दी जाती। (२८.३.६६)

यदि मेरा मन श्रीकृष्ण के सौन्दर्य पर केन्द्रित हो तो मैं इन सुन्दर लड़कियों को श्रीकृष्ण की गोपियों के रूप में देख सकता हूँ। (१.९.१९६६)

भगवद्धाम वापस जाने की इच्छा मात्र से यह मान लिया जाता है कि व्यक्ति ब्रह्मचारी व्रत का पालन कर रहा है। कौमार्य जीवन बिताना, इसे ब्रह्मचारी कहते हैं। अत: इसका इतना अच्छा प्रभाव पड़ता है कि जो भी जन्म से मृत्यु तक ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है उसका भगवद्धाम वापस जाना निश्चित है। केवल एक नियम का पालन करके : यदिछन्तो ब्रह्मचर्यम् चरन्ति। ब्रह्मचर्य इतना उत्तम है। (१.९.१९६६)

और ब्रह्मचारी व्रते स्थित:। ब्रह्मचारी व्रत का अर्थ है ब्रह्मचर्य अर्थात रंचमात्र भी यौन जीवन नहीं। पूर्णतया वर्जित। ब्रह्मचारी व्रते। व्रत का अर्थ है यह प्रण करना कि "मैं यौन जीवन में लिप्त नहीं होऊँगा।" ऐसा व्यक्ति योग का अभ्यास कर सकता है।

जो व्यक्ति विधि-विधान के अनुसार अपनी पत्नी से सम्बन्ध रखता है और किसी अन्य स्त्री को नहीं जानता वह भी ब्रह्मचारी है। यह भी ब्रह्मचारी व्रत कहलाता है। और जो पूर्ण ब्रह्मचारी जीवन बिताता है वह भी ब्रह्मचारी है। अत: योगी के लिए यह ब्रह्मचारी व्रत अनिवार्य है। (७.९.१९६६)

जब पुरुष या स्त्री की आयु सोलह वर्ष की हो जाए तो युवावस्था का शुभारम्भ होता है। अत: १६ से २० वर्ष की आयु अत्युत्तम है। यह शक्ति से ओतप्रोत होती है। और यही समय वृद्धि का, बुद्धि का है। दुर्भाग्यवश हम इस अवधि को नष्ट कर देते हैं। अत: हम कम बुद्धिमान बन जाते हैं, और आयु घट जाती है। यदि हम इस



अवधि को व्यर्थ गँवा देते हैं, तब हमारा जीवन काल घट जायेगा और यदि इस अवधि में हम पूर्ण ब्रह्मचारी रहें तो हम सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। (१९.७.१९७१)

जो लोग अत्यधिक कामी हैं, योनि प्रेमी हैं, उन्हें इन्द्र की पूजा करनी चाहिये। यदि आपको श्रीकृष्ण के बजाय योनि चाहिए तो ठीक है, करो। उसे पाओ। अत: दुर्भाग्यवश यदि हमारा कोई छात्र श्रीकृष्ण के बजाय योनि का शिकार बनता है तो यह अति खेद का विषय है। तब अच्छा होगा कि वह श्रीकृष्ण के बजाय इन्द्र की पूजा करे। (२२.५.७२)

भक्त के समक्ष हजारों सुन्दरियाँ क्यों न हों किन्तु इससे उसका मन विचलित नहीं होता। वह उन्हें श्रीकृष्ण की शक्तियों के रूप में देखता है। "ये श्रीकृष्ण की गोपियाँ हैं। ये श्रीकृष्ण द्वारा भोग्या हैं। मुझे उनकी सेवा करनी है। वे गोपियाँ हैं। क्योंकि मैं तो दासानुदास हूँ।" गोपीभर्तु: पदकमलयो: दास दास दासानुदास:। अत: भक्त को चाहिए कि समस्त सुन्दरियों को श्री कृष्ण की सेवा में लगाए। यही उसका कर्तव्य है। उनका भोग करना नहीं। वह इन्द्रियतृप्ति है। भक्त की स्थिति यही है। उसे कामदेव के तीर भेद नहीं पाते अपितु वह हर वस्तु को श्रीकृष्ण से सम्बन्धित देखता है। (११.११.७२)

अत: इस भौतिकवादी जीवन का अर्थ है यौन जीवन। अत्यन्त तुच्छम् अर्थात गर्हित। यदि कोई इसे समझ चुका है तो वह मुक्त हो चुका है। किन्तु यदि वह अब भी आकृष्ट है तो यह समझना चाहिए कि उसके मोक्ष में अभी देरी है। जिसने इसे समझ कर इसे त्याग दिया है वह इसी शरीर में मुक्त हो चुका है। जीवन्मुक्त: स उच्यते। ईहायस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा निखिलास्वप्यवस्थासु जीवनमुक्त: स उच्चयते। तो हम इस इच्छा से किस तरह मुक्त हो सकते हैं? ईहा यस्य हरेर्दास्ये, यदि आप केवल श्रीकृष्ण की सेवा करने की इच्छा करें तो आप छूट सकते हैं अन्यथा नहीं। यह सम्भव नहीं। यदि आप भगवान् की सेवा के अतिरिक्त और कुछ चाहते हैं तो माया आप को प्रलोभन देगी, "इसे क्यों नहीं भोगते?" (२६.८.१९७३)

ब्रह्मचारी को जीवन के प्रारम्भ से केवल गुरु के लिए कर्म करने को प्रशिक्षित किया जाता है। यही ब्रह्मचारी है। यह आदेश है कि ब्रह्मचारी गुरु की शरण में, देखरेख में तुच्छ दास की तरह रहे। कृष्ण भी, भगवान् होते हुए भी, जब अपने गुरु, सांदीपनि मुनि, के घर पर ब्रह्मचारी के रूप में रह रहे थे तो वे जंगल से ईंधन के लिए लकड़ी एकत्र करते थे। वे प्रतिदिन जाते थे। ऐसा नहीं है कि क्योंकि वे भगवान् थे, उन्हें नहीं जाना चाहिए।

ब्रह्मचारी को प्रारम्भ से ही प्रशिक्षण दिया जाता है कि किस तरह जीवन के अन्त में संन्यासी बना जाए। उसे किस तरह प्रशिक्षित किया जाता है? उसे गुरु के लिए भिक्षा एकत्र करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। उसे इस तरह प्रशिक्षित किया जाता है कि यद्यपि उसने सब कुछ एकत्र किया है किन्तु वह किसी वस्तु को अपना नहीं कहता। वह अपने पास कुछ भी नहीं रखता। भले ही उसे आश्रम में भोजन करना होता है, किन्तु गुरु के कहने पर ही वह भोजन करेगा। गुरु कहेगा, "अमुक! अमुक! आओ और अपना प्रसाद ग्रहण करो।" कहा जाता है कि यदि किसी दिन गुरु उसे बुलाना भूल जाए तो उस दिन वह भोजन नहीं पाएगा। इसे कहते हैं ब्रह्मचारी अर्थात दृढ़ता से पालन करना। वे जीवन के प्रारम्भ से ही हर स्त्री को 'माता' कहकर पुकारते थे। यह है प्रशिक्षण। मातृवत् परदारेषु। वे जीवन के प्रारंभ से हर स्त्री के साथ माता का सा आचरण करते थे। (५.४.१९७४)।

यह ब्रह्मचारी जीवन है, जीवन को सफल बनाने के लिए स्वेच्छा से कष्ट स्वीकार करना। (१२.६.७४)

कभी-कभी यौन जीवन के विषय में सोच कर हम सूक्ष्म आनन्द का भोग करते हैं। इसे नारी-सङ्गमे कहते हैं। नारी अर्थात स्त्री तथा संग अर्थात संगम, एक होना। अत: जिनको आदत पड़ जाती है, वे वास्तविक संग न होने पर, संग का चिन्तन करते हैं। इसलिये यामुनाचार्य ने कहा है "स्त्री के साथ वास्तविक संग नहीं, यदि मैं संग के बारे में सोचता हूँ" तदवधि बत नारी-संगमे स्मर्यमाने, स्मर्यमाने "केवल सोच कर, भवति मुखविकार:, "ओह, मैं तुरन्त ऊब जाता हूँ : 'छि:! यह कितनी घिनौनी चीज है?' सुष्ठु निष्ठी (थूकता हूँ) यह सही है। यही पूर्णता (सिद्धि) है। हाँ। जब तक हम उसके बारे में सोचेंगे, इसे सूक्ष्म यौन कहते हैं, सोचना। वे यौन साहित्य पढ़ते हैं। यह सूक्ष्म यौन है। स्थूल यौन तथा सूक्ष्म यौन। तो मनुष्य को इन कामी इच्छाओं से पूर्णरूपेण मुक्त होना होता है, न कि इन में लिप्त हों, जो कभी भी तुष्ट नहीं हो सकती, दुष्पूरम्। (६.२.७५)

भौतिक जगत् का अर्थ है कि एक हृदय रोग है जो काम कहलाता है। हृद-रोग-काम यदि मैं किसी को कामी या यौन कार्यों में रत देखूं तो स्वभावत: मेरी भी कामवासना जाग उठेगी, भले ही मैं उसे वश में करने का प्रयास क्यों न कर रहा हूँ। नवदीक्षित अवस्था में यदि मैं अपने सामने कोई वासनापूर्ण कार्य देखूँ तो स्वभावत: मैं उन्मुख हो जाऊँगा।



(अजामिल) ब्रह्मचारी था जो शम, दम का अभ्यास कर रहा था, किन्तु वह अपने को वश में नहीं रख सका। वह सहसा अत्यधिक आकृष्ट हो गया। यह सामाजिक अवस्था है। यदि समाज में कोई रोक न हो तो स्वभावत: ये सारे नवयुवक तथा नवयुवतियाँ उन्मुख होंगे। ज्यों ही कोई कामोन्मुख होता है कि वह अन्य सारी संस्कृति भूल जाता है और शनै: शनै: पतित हो जाता है जैसा कि हम अजामिल के जीवन में देखेंगे, यद्यपि वह प्रशिक्षित था। इसी तरह हमारे छात्रों के लिए यह चेतावनी है कि वे यह सीख रहे हैं कि किस तरह कृष्णभावनाभावित बना जाए। कृष्णभावनाभावित बनना बहुत कठिन कार्य है, यह आसान काम नहीं है। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से हम शिक्षा देने का प्रयास कर रहे हैं और यह प्रभावी हो रही है, अन्यथा तुम सारे यूरोपियन तथा अमरीकी इन चार पापपूर्ण कार्यों को कैसे त्याग सकते हो? अत: अपने को सुरक्षित रखने का प्रयास करो। इसे केवल भक्ति, शुद्ध सत्व, वसुदेव पद पर रह कर ही संरक्षित किया जा सकता है। ये विधि-विधान, प्रतिबन्ध मनुष्य को वसुदेव पद पर बनाये रखने के लिए हैं। प्रात:काल जल्दी जगना, मंगल आरती करना और फिर एक के बाद एक कक्षा में जाना, गुरु पूजा आदि करना। जब तक सोने न जाएँ सेवा में लगे रहना चाहिए। तभी इन तीन गुणों से ऊपर उठ सकोगे। यदि हम वसुदेव पद पर बने रहें तो ये बातें हमें लुभा नहीं सकेंगी। अन्यथा हम लुब्ध होकर नीचे गिर जाएंगे।

कभी-कभी हम रासलीला सुनने या देखने जाते हैं किन्तु जब तक हमारी आध्यात्मिक चेतना उन्नत नहीं होती, रासलीला के इस देखने या सुनने से हम नीचे गिरेंगे। यदि कोई किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से, जो आध्यात्मिक चेतना में वस्तुत: उन्नत हो उससे, रास लीला सुनता है तो इसका फल होगा कि हमारी स्वाभाविक कामेच्छाएं लुप्त हो जाएंगी। किन्तु यदि हम कामेच्छाओं को समाप्त करने की बजाय उन्हें बढ़ाते जाएं तो इसका अर्थ होगा कि हम अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। इसलिए नवदीक्षित छात्रों के लिए इन रासलीला कार्यों में लिप्त होना वर्जित है। आपको बहुत सतर्क रहना चाहिए। लोग वृन्दावन में रासलीला देखने के अत्यधिक अभ्यस्त हैं। हो सकता है कि वे प्रवृद्ध हों किन्तु इसकी परीक्षा यही है कि मनुष्य अपनी कामेच्छाएँ त्याग चुका हो। यदि उसने इन्हें त्याग दिया है, तो रासलीला देखने के बाद वह घर न लौटा होता। मेरे गुरु महाराज कहा करते थे, "वापसी टिकट लेकर वृन्दावन मत जाना।" यह अत्यन्त गोपनीय है।

ब्रह्मचारी के लिए अनेकानेक प्रतिबन्ध हैं। सूक्ष्म यौन आठ प्रकार का होता है। किन्तु कलियुग में विधि-विधानों का पालन कर पाना अति कठिन है। मनुष्य को

प्रशिक्षण नहीं मिला है। परिपक्वावस्था तक में भी वह सुन्दर स्त्रियों से आकृष्ट हो जाता है। पश्चिमी देशों में ऐसा विशेष रूप से है।

जब आप इस काम इच्छा से और अधिक आकृष्ट नहीं होते तो आपको यह समझना चाहिए कि "मैं अब कृष्णभावनामृत में प्रगति कर रहा हूँ।" यही परीक्षा है। हमें काफी सावधान रहना होगा, किन्तु केवल सावधान रहना पर्याप्त नहीं है। हमें कृष्णभावनामृत में प्रगति करनी चाहिए। वह आसानी से संभव है हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन द्वारा। यदि स्वयं को सदा हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे का कीर्तन करने में व्यस्त रखें, यदि केवल कीर्तन करके, आप विधि-विधानों का पालन करें तो आप शिकार नहीं होंगे। आप बिना भय के प्रगति करेंगे। (२८.८.७५)

(अजामिल ने अपने समक्ष एक युवक और युवती को आलिंगन करते देखा।) ऐसी स्थिति में संयम रख पाना बहुत कठिन है। जब तक कोई बहुत प्रवृद्ध न हो तब तक ऐसा सम्भव नहीं। जब तक कोई कृष्णभावनामृत में बहुत दृढ़ न हो तब तक मन तथा इन्द्रियों को रोक पाना बहुत कठिन है। काम सदैव विचलित करता है। इस सारे भौतिक जगत् का अर्थ मदन (काम) है। शहरों में लोग कूकरों सूकरों की तरह कठिन श्रम करते हैं। वे कहते हैं कि हम भूखे हैं अतः हमें खूब श्रम करना पड़ता है। किन्तु तथ्य यह नहीं है।

वास्तविक तथ्य तो यह है कि हम यौन का भोग करना चाहते हैं। भूख को तो वश में किया जा सकता है, किन्तु यौन इच्छा को वश में कर पाना अति कठिन है। यन्मैथुनादि। संभोग (मैथुन) भौतिक जीवन का आरम्भ है। आप जानते हैं कि पश्चिमी देशों में कामेच्छायें कितनी प्रबल हैं। यहाँ तक कि मरणासन्न वृद्ध व्यक्ति में भी कामेच्छा रहती है। यद्यपि वह यौन का आनन्द नहीं उठा सकता फिर भी वह दवा, नशा, उत्तेजकों के द्वारा भरसक प्रयत्नशील है। इस भौतिक जगत् का यही एकमात्र सुख है।

मानव सभ्यता का अर्थ है धीर व्यक्तियों को उत्पन्न करना। यौन वेग (उत्प्रेरण) से विचलित न होना। न कि, आज अनेक तथा कथित साधुओ द्वारा प्रचारित, यौन द्वारा योग।

यह मानसिक चंचलता तब तक बनी रहेगी जब तक हम मदनमोहन द्वारा आकर्षित नहीं होते। जब तक हम मदनमोहन द्वारा आकृष्ट नहीं होंगे तब तक हम मदन द्वारा आकृष्ट होते रहेंगे। जब तक आप अपने मन को मदन द्वारा विचलित होने



से रोक नहीं सकते तब तक मोक्ष या भक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।

जिस तरह चोरी करने जा रहा चोर भी इसे नियन्त्रित करने का प्रयास करता है, "मैं चोरी करने जा रहा हूँ, इसका प्रतिफल यह होगा कि मैं पकड़ा जाऊँगा और मुझे जेल जाना होगा। यह शास्त्र द्वारा तथा राज्य के कानून द्वारा भी वर्जित है। मैं चोरी करने जा रहा हूँ किन्तु इसमें खतरा है।" चेतना उसे प्रताड़ित करती है किन्तु वह अपने को वश में नहीं कर सकता। यह स्थिति है। वह सब कुछ जानता है किन्तु फिर भी चोरी करता है। यही बात यहाँ हुई। अजामिल विद्वान ब्राह्मण था। वह जानता था कि, "मैं कामेच्छा से चलायमान हो रहा हूँ, यह अच्छी बात नहीं।" उसे पर्याप्त वैदिक ज्ञान था। उसने बुद्धि से मन को वश में करने का प्रयत्न किया किन्तु कर नहीं पाया। क्यों? क्योंकि मन कामेच्छाओं से अत्यधिक चलायमान था। यही बात है। कामेच्छाएँ अति प्रबल हैं।

इसलिये शास्त्र कहते हैं, "अपनी माता, पुत्री या बहन के साथ भी अकेले में मत रहो।" विद्वान (अजामिल जैसा) तक विचलित हो सकता है। आप एकान्त में किसी स्त्री से यहाँ तक कि अपनी माता, पुत्री या बहन से भी बातें न करें। मन अत्यधिक संवेदनशील है, किन्तु मन को एकमात्र कृष्णभावनामृत द्वारा वशीभूत किया जा सकता है। अम्बरीश महाराज ने उदाहरण प्रस्तुत किया है। अपने आपको केवल श्रीकृष्ण के विषय में सोचने तथा उन्हीं की बातों में लगाएं, तब यह चंचलता आपको विचलित नहीं कर सकेगी। (२९.८.७५)

भौतिक जीवन का अर्थ है यौन। यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखम् हि तुच्छम्। इस भौतिक जगत में न केवल मानव समाज में अपितु पक्षियों, पशुओं तथा कीड़ों तक में सर्वत्र यौन वेग अत्यन्त प्रबल है। और यदि आप यौन जीवन में लिप्त होंगे तो इस भौतिक शरीर से अधिकाधिक बंधते जाएंगे। यह प्रकृति का नियम है। इसलिये समस्त वैदिक सभ्यता यौन जीवन को कम करने के लिए है। सर्वप्रथम ब्रह्मचारी। यौन जीवन शून्य। प्रथम प्रशिक्षण ब्रह्मचारी है – अर्थात इसकी शिक्षा देना कि कैसे यौन के बिना रहा जाए। यह ब्रह्मचारी है। तपसा ब्रह्मचर्येण। तपस्या का अर्थ है ब्रह्मचारी बने रहना। यही तपस्या है। यह अति कठिन है इसलिये तपस्या कहलाती है। चूँकि सारा जगत् यौन जीवन द्वारा आकृष्ट होता है, पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावम्। सारा जगत्, न केवल इस लोक में अपितु सर्वत्र, यहाँ तक कि देवलोक में भी। इसलिए इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का अर्थ शारीरिक जागरुकता नहीं है। भौतिक जगत् का अर्थ है शारीरिक जागरुकता – किस तरह शरीर को आराम से रखा जाए। किन्तु यह सम्भव नहीं है। शरीर का अर्थ है दुःख। आप इसे आराम से नहीं रख सकते। यही माया

है। यह कभी आराम से नहीं रहेगा किन्तु लोग इसे आरामदेह बनाने का प्रयास कर रहे हैं। यही है माया। क्लेशद आस देह। जब तक यह भौतिक शरीर है, आपको कष्ट उठाना ही होगा।

अत: यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन शारीरिक स्तर पर नहीं है। यह आध्यात्मिक स्तर पर है। आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचने के लिए आवश्यक है कि आप यौन जीवन को घटाएं या शून्य कर दें। इसलिए यदि कोई आजीवन ब्रह्मचारी रहता है तो उसके लिए भगवद्धाम वापस जाना अति सरल हो जाता है। यह एक रहस्य है। इसलिए सम्पूर्ण वैदिक सभ्यता पहले पहल, ब्रह्मचारी पर ही आधारित है - जिसका अर्थ है यौन जीवन का न होना। गृहस्थ भी अत्यन्त नियन्त्रित है। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए मनुष्य यौन जीवन बिता सकता है। पिता, माता, स्त्री, पुरुष। धर्माविरुद्ध कामोऽस्मि। भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं कि धर्म द्वारा संस्तुत यौन जीवन मैं ही हूँ। अन्यथा यह अवैध यौन है। अवैध यौन के लिए दण्ड है।

अत: तपस्या का अर्थ है तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च। हमें अपने को वश में रखना है। जो जितना ही वश में करता है वह आध्यात्मिक संस्कृति में उतना ही प्रवृद्ध हो जाता है। योग पद्धति का अर्थ है योग इन्द्रिय संयम। योग का अर्थ है कि इन्द्रियों को कैसे वश में रखा जाए। इसलिये श्रीकृष्ण कहते हैं मय्यासक्तमना: पार्थ। अत: यौन लिप्तता जीवन की आध्यात्मिक प्रगति के विरुद्ध है। इसलिये हम देखते हैं कि ब्रह्मचारी के लिए आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करना बहुत आसान है। आप भी इसे कर सकते हैं। यदि आप श्रीकृष्ण के प्रति अपना आकर्षण बढ़ाते हैं तो स्वाभाविक ही यौन के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाएगा। यही कृष्णभावनामृत है। इसलिये श्रीकृष्ण का नाम मदनमोहन है। मदन का अर्थ है यौन जीवन। आप मदन को आकर्षित कर सकते हैं। तो ये बातें हैं जिन्हें भक्त साहित्य पढ़ कर सीखेगा। लेकिन बिना अध्ययन किये भी यदि आप निष्ठापूर्वक हरे कृष्ण मन्त्र का नियम बद्ध होकर जप करें तो सारे सद्गुण आ जाएंगे। (२७.१०.७५)

एक अत्यन्त शिक्षा प्रद कहानी है जो एक ऐतिहासिक तथ्य है। एक बार मुसलमान सम्राट अकबर ने अपने मंत्री से पूछा "कब तक कामेच्छा बनी रहती है?" मंत्री ने उत्तर दिया, "मृत्यु के समय तक"। अकबर को विश्वास नहीं हुआ अत: उसने कहा, "नहीं तुम ऐसा कैसे कह सकते हो?" मन्त्री ने कहा, "ठीक है, मैं समय आने पर उत्तर दूंगा।" अत: एक दिन एकाएक मंत्री सम्राट के पास पहुँचा और बोला, "आप अपनी युवा पुत्री सहित मेरे साथ तुरंत चलने के लिए तैयार हो जाएं।" अकबर



जानता था कि उसका मन्त्री बहुत बुद्धिमान है अत: इसमें अवश्य कोई प्रयोजन होगा। वह उसके साथ चल दिया और मन्त्री उसे एक ऐसे व्यक्ति के पास ले गया जो मरणासन्न था। तब मन्त्री ने अकबर से कहा "कृपया इस मरणासन्न व्यक्ति का मुखमंडल देखकर अध्ययन करें।" तो अकबर ने देखा कि जैसे ही वे तथा उसकी युवा पुत्री प्रवेश कर रहे थे तो वह मरणासन्न व्यक्ति उस युवती के मुख को ताक रहा था। इस तरह अकबर समझ गया, "मंत्री ने जो कहा था वह सत्य है। अन्तिम समय तक युवती का मुखमण्डल देखने की इच्छा बनी रहती है।" यह दुष्पूरेण कहलाती है - यह कभी पूरी नहीं होती। पुरुष, स्त्री तथा गृहस्थ जीवन का यह आकर्षण बना ही रहता है। (१०.१२.७५)

ब्रह्मचर्य का अर्थ है यौन जीवन पर अंकुश लगाना। जब कोई आध्यात्मिक चेतना में प्रगति के प्रति गम्भीर हो तो उसे, ऐसे ब्रह्मचारी बनने की विधि सीखने के लिये, गुरु के नियन्त्रण में रहना चाहिए। भक्त को अलग से ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं होती - वह यौन के प्रति आकृष्ट नहीं रहता (क्योंकि उसमें उच्चतर आस्वादन रहता है)

हमारे समाज में स्त्रियों से हमारा अनिवार्य रूप से मिलना जुलना होता है - स्त्रियों से ही नहीं अपितु अतीव सुन्दर लड़कियों से भी। किन्तु यदि कोई व्यक्ति सुन्दर स्त्रियों तथा लड़कियों की संगति में भी चंचल नहीं होता तो उसे परमहंस मानना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में हम इनसे बच नहीं सकते। यह समस्या शुरु से ही थी। भारत में मुक्त रूप से परस्पर मिलने-जुलने पर प्रतिबन्ध है, किन्तु आपके देश में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसलिये मैंने अपने शिष्यों का विवाह कराया। उन्होंने मेरी आलोचना की कि मैं विवाह कराने वाला बन गया हूँ। जो भी हो, मैं तो उन्हें नियमित करना चाहता था। इसी की आवश्यकता है। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि।

कृष्ण भी कहते हैं। विवाहित व्यक्ति भी ब्रह्मचारी हो सकता है। यदि विवाहित व्यक्ति एक पत्नीव्रत हो और यदि संभोग करने के पूर्व वह अपने गुरु की अनुमति प्राप्त करे तो वह ब्रह्मचारी है। मनमाने ढंग से नहीं। जब गुरु आज्ञा दे कि वह सन्तान उत्पन्न कर सकता है, तो वह ब्रह्मचारी है।

श्रीवीरराघवाचार्य ने अपनी टीका में बताया है कि दो प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं। पहला नैष्ठिक ब्रह्मचारी - जो विवाह नहीं करता। और दूसरा वह जो विवाह तो करता है किन्तु संभोग तक के बारे में गुरु के पूर्ण नियन्त्रण में रहता है। वह भी ब्रह्मचारी है।

यौन जीवन पर इतना प्रतिबन्ध क्यों है? पूरे विश्व के लोग इसे नहीं समझते। विशेषकर पाश्चात्य देशों के लोग यौन जीवन से मुग्ध हैं। भौतिक स्थिति का अर्थ है, स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिये, यौन जीवन की इच्छा। हम पहले से मोहग्रस्त हैं, भौतिक जगत् से आसक्त हैं, किन्तु जब स्त्री तथा पुरुष मिथुनीभूत होते हैं तो इस जगत् के प्रति हमारी आसक्ति बढ़ जाती है।

यह मनुष्य जीवन तपस्या के निमित्त है, अर्थात यह सीखने के लिए कि इस भौतिक जगत् से किस तरह विरक्त हुआ जाए। और इसका शुभारम्भ ब्रह्मचारी जीवन से होता है। ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन दान्तः। दान्त का अर्थ है आत्म-संयमित। यही वास्तविक शिक्षा है। वैदिक सभ्यता के अनुसार केवल उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिए यौन जीवन है और वह भी गर्भाधान संस्कार के साथ। दूसरे शब्दों में, वैदिक सभ्यता में मनमाना यौन जीवन पूरी तरह वर्जित है। उसमें हर वस्तु नियमानुसार है। अतः ब्रह्मचारी का अर्थ है कि इन्द्रियों को किस तरह अपने नियंत्रण में रखा जाए, यह नहीं, "अब मुझे संभोग की इच्छा है अतः तुरन्त संभोग करना चाहिए।" हमें यह सदैव स्मरण रखना होगा कि यह मनुष्य जीवन इन्द्रियों को वश में रखने के लिए है। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। यह केवल आध्यात्मिक जीवन के विषय में जिज्ञासा करने के लिए है। यही पूर्ण सभ्यता है।

इसलिए ब्रह्मचारी का अर्थ है गुरु के निर्देशन में जीवन बिताना। गुरोर्हितम् का अर्थ है कि वह केवल गुरु का हित करने का चिन्तन करे। इस स्थिति को प्राप्त किये बिना गुरु की सेवा नहीं की जा सकती। यह बनावटी बात नहीं। ब्रह्मचारी या शिष्य में गुरु के लिए वास्तविक प्रेम होना चाहिए तभी वह उसके नियन्त्रण में रह सकेगा। अन्यथा भला क्यों कोई किसी के नियन्त्रण में रहेगा? इसलिये कहा गया है आचरन् दासवत्। दास अर्थात तुच्छ सेवक। शिष्य से आशा की जाती है कि वह गुरुकुल में रहेगा। गुरुकुल का अर्थ है गुरु की शरण में नीचवत् अर्थात नीच दास की तरह। यह तभी सम्भव है जब कोई अपने गुरु से घनिष्ठतापूर्वक सम्बद्ध हो। अन्यथा एक साधारण सम्बन्ध से काम नहीं चलेगा। (१२.४.७६)

मशीन एक प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करती है। सभी ने देखा है कि घड़ी की मशीन अत्यन्त सही ढंग से कार्य करती है। इसी तरह हर छात्र, हर शिष्य को मशीन की तरह सही सही कार्य करना चाहिए। यह प्रश्न हो नहीं, कि आप पाठशाला या कक्षा में क्यों नहीं गये। आप यह नहीं कह सकते कि मैं यह या वह कर रहा था। जिस तरह मशीन काम करती है उसी तरह हर एक छात्र को कक्षा में जाना चाहिए,



प्रातःकाल उठना चाहिए और मंगल आरती में सम्मिलित होना चाहिए। कोई त्रुटि नहीं होनी चाहिए। यही वांछित है।

तत्पश्चात् छात्र को आकर सर्वप्रथम गुरु के चरण कमलों में नमस्कार निवेदन करना चाहिए। यही शुरुआत है। आदौ गुर्वाश्रयम्। यस्य प्रसादाद् भगवत प्रसादः। यही नियम है। यदि आप गुरु को नमस्कार करते हैं तो वह प्रसन्न होता है। कोई भी, चाहे वह अपराधी हो, यदि आकर अपने से बड़ों, गुरु को प्रणाम करता है तो अपराध होने पर भी वह भूल जाता है। ऐसा नित्य किया जाना चाहिए। मशीन की तरह। गुरु को देखते ही नमस्कार करना चाहिए। शुरु में और आखिर में भी नमस्कार करना चाहिए। जब वह गुरु से मिलने जाए तो उसे नमस्कार करना चाहिए और जब वह उस स्थान से विदा ले तो भी उसे नमस्कार करना चाहिए। आने और जाने के बीच के समय में उसे गुरु से वैदिक ज्ञान ग्रहण करना चाहिए। गुरुकुल में रहने का यही नियम है।

हमारे छात्र अत्यन्त आज्ञाकारी होते हैं। यदि वे गुरु को एक सौ बार देखते हैं तो हर बार भेंट करते तथा विदा लेते समय नमस्कार करते हैं। इन बातों का अभ्यास करना चाहिए तभी दान्त, ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तो। तभी वह आत्म-संयमित होगा। आज्ञाकारिता अनुशासन का प्रथम पहलू है। यदि आज्ञाकारिता नहीं है तो अनुशासन नहीं हो सकता और यदि अनुशासन नहीं होगा तो आप किसी का प्रबन्ध नहीं कर सकेंगे। ऐसा सम्भव नहीं। इसलिये यह नितान्त आवश्यक है कि छात्र बिल्कुल अनुशासित हों। शिष्य का अर्थ है वह जो अनुशासन का पालन करे। संस्कृत शब्द शिष्य शास् धातु, शासन से आया है। अतः शिष्य का अर्थ है वह जो स्वेच्छा से गुरु के शासन को स्वीकार करता है। (१४.४.७६)

इस विषय पर संस्तुति उपलब्ध है। तपसा ब्रह्मचर्येण। ब्रह्मचर्य अर्थात किसी तरह का यौन नहीं। यही तपस्या की शुरुआत है। ध्यान का अर्थ तपस्या है। तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन। शम का अर्थ है इन्द्रियों को वश में रखना। इस तरह रखना कि इन्द्रियाँ चलायमान न हों। दमेन। यदि चलायमान भी हों तो अपने ज्ञान से उनको दबा देना। उदाहरणार्थ यदि मैं किसी सुन्दर स्त्री, या सुन्दर लड़के को देखकर चंचल हो जाऊँ - यह स्वाभाविक है। नवयुवक, युवती - वे स्वभावतः आकृष्ट होते हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। किन्तु तपस्या का अर्थ है "मैंने व्रत लिया है कि किसी तरह का अवैध यौन नहीं करूँगा।" यही ज्ञान है। "यदि मैं आकृष्ट भी हूँ तो भी मैं नहीं करूँगा।" यही तपस्या है। "यदि मैं आकृष्ट हूँ इसलिए अब मैं भोग करूँ" यह तपस्या नहीं है। तपस्या का अर्थ है कि यदि कोई आकृष्ट हो तो भी ऐसा कार्य न करे। यही तपस्या है। नियन्त्रण करने में कुछ कठिनाई हो सकती है किन्तु इसका

अभ्यास दृढ़ता से करना होगा। इसका अभ्यास किया जा सकता है। यह बहुत कठिन नहीं है किन्तु संकल्पपूर्वक इसका अभ्यास करना होता है। अब मैंने अर्चाविग्रह के सामने एक व्रत लिया है। चूँकि दीक्षा के समय अर्चाविग्रह के समक्ष, अग्नि के समक्ष, गुरु के समक्ष तथा वैष्णवों के समक्ष यह वचन दिया जाता है कि मैं अवैध यौन में लिप्त नहीं होऊँगा। ऐसा वचन दिया जाता है। तो मैं इसे किस तरह तोड़ सकता हूँ?

मैंने अर्चाविग्रह के समक्ष, अग्नि के समक्ष, अपने गुरु के समक्ष तथा वैष्णवों के समक्ष प्रण किया है, "मैं अवैध यौन, मांसाहार, मद्यपान या नशा तथा जुआ खेलने में लिप्त नहीं होऊँगा।" मैंने इसका वचन दिया है। यदि मैं भद्रपुरुष हूँ, तो फिर मैं अपने प्रण को कैसे तोड़ सकता हूँ? यह ज्ञान कहलाता है। ज्ञान के साथ इसका अभ्यास करना होता है। यह तपस्या कहलाता है। अन्यथा आकृष्ट होना अस्वाभाविक नहीं है।

चैतन्य महाप्रभु संन्यासी थे। वे कहा करते थे कि जब मैं स्त्री की आकृति की कोई काठ की पुतली भी देखता हूँ तो मेरा मन चंचल हो उठता है। तो फिर हमारे बारे में क्या कहा जाए। यह एक उदाहरण है। चैतन्य महाप्रभु एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। मन का चलायमान होना अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु यदि आप अभ्यास करेंगे तो और अधिक विचलित नहीं होंगे- यदि आप ज्ञान के साथ अभ्यास करते हैं तो इसी को धीर कहते हैं। धीरस्तत्र न मुह्यति। हमको धीर बनना है। धीर तथा अधीर - ये पुरुषों की दो कोटियाँ हैं। एक गम्भीर होता है। यदि चंचलता का कोई कारण भी हो तब भी वह दृढ़ रहता है। वह धीर कहलाता है। अधीर का अर्थ है कि चंचलता का कारण उपस्थित होते ही वह उसका शिकार बन जाता है। इसी को अधीर कहते हैं। अतः हमें धीर बनना है। हम अनेक प्रकार के जन्मों में अधीर रहे हैं क्योंकि हम चौरासी लाख योनियों से होकर मनुष्य रूप मे आये हैं। तो फिर इस जीवन में थोड़ी सी तपस्या क्यों न की जाए? यदि मैं तपस्या करके, जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पा सकूँ तो उसे क्यों न करूँ? यही ज्ञान है। फिर भी यदि मैं शिकार बनूँ तो प्रकृति का नियम अपना कार्य करेगा। यदि आप चाहें तो भोग कर सकते हैं। प्रकृति आपको प्रदान करेगी। ठीक है, तुम संभोग चाहते हो, तो आओ, सूकर बन जाओ। प्रकृति इसके लिए तैयार है, यह बहुत कठिन नहीं है।

इसलिये शास्त्र कहता है नहीं, नहीं, यह जीवन सूकर या कूकर बनने के लिए नहीं है। नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टानकामान अर्हते विड्भुजां ये। सारा संसार अत्यधिक श्रम कर रहा है। लोग जीविकोपार्जन के लिए ऑफिस जाते हैं किन्तु इसमें क्या आनन्द है? आनन्द है यौन। बस। उनका चरम लक्ष्य यौन है। यन्मैथुनादि गृहमेधि



सुखं हि तुच्छम्। अतः मनुष्य को विचार करना चाहिए कि यौन लिप्तता तो सूकरों, कूकरों को उपलब्ध है और उसी आनन्द के लिए मुझे इतना कठिन परिश्रम करना पड़ रहा है। यही ज्ञान है। मुझे यह मनुष्य जीवन श्रीकृष्ण को समझने, ईश्वर को समझने, अपनी स्थिति, मैं क्या हूँ, को समझने के लिए मिला है।

हमारी मुख्य समस्या यौन जीवन है क्योंकि यौन जीवन भौतिक जीवन का मुख्य सिद्धान्त (तत्व) है। आप चाहे मनुष्य हों, या देवता, या पक्षी, या पशु, या मक्खी या मछली, या वृक्ष, पौधे, सभी कुछ। भौतिक जीवन का मूलभूत तत्व यौन है। पुंसः स्त्रिया मिथुनी भावम् एतत् तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।

सब कुछ उपलब्ध है। आपके पास अच्छी पुस्तकें हैं; उन्हें पढ़ें और उनका पालन करें। थोड़ा गम्भीर बनें, तब आप सक्षम बन सकेंगे। ऐसा नहीं है कि आप सक्षम बन ही नहीं सकते। आप सक्षम बनेंगे और श्रीकृष्ण आपकी सहायता करेंगे। जैसे ही हम अत्यधिक उत्सुक होंगे, वैसे ही श्रीकृष्ण सहायता करेंगे। इसलिये अर्चाविग्रह की पूजा का प्रावधान है। अर्चाविग्रह की पूजा के साथ-साथ हमें सदैव प्रार्थना करनी चाहिए, "हे श्रीकृष्ण! मुझे माया के दुर्गुणों से बचा लें।" वे ऐसा अवश्य करेंगे।

किन्तु यदि आप श्रीकृष्ण को तथा गुरु को धोखा देना चाहते हैं तो आपको धोखा होगा। बस इतना ही। न तो गुरु को धोखा दिया जा सकता है, न ही श्रीकृष्ण को। आप ही धोखा खाएँगे। यदि आप धोखा खाना चाहते हैं तो जो मन में आए सो करें और इस जन्म-मृत्यु के चक्कर को बढ़ाते रहें। और यदि रोकना चाहते हैं तो तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च त्यागेन। त्यागेन - यह भी एक प्रकार की तपस्या है। आप अपने पास कोई वस्तु न रखें। तब आप योजनाएँ बनाएँगे। मुझे अवैध यौन चाहिए। मुझे नशा करना चाहिए। जैसे ही आपके पास धन होगा। सबसे उत्तम बात यह होगी कि जैसे ही आपको धन मिले उसे तुरन्त श्रीकृष्ण पर खर्च कर दें। त्यागेन। इसका अर्थ है दान। यह नहीं कि आप भूखों मरें। आप कृष्णभावनामृत सम्पन्न करने के लिए अपने को स्वस्थ रखें, किन्तु अधिक धन न रखें। तुरन्त उसे श्रीकृष्ण को दान में दे दें। (१४.५.७६)

ब्रह्मचारी को यौन जीवन से दूर रहने का प्रशिक्षण दिया जाता है। यही ब्रह्मचारी है। किन्तु यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो उसे गृहस्थ जीवन स्वीकार करने दिया जाता है। कोई धोखाधड़ी नहीं होती है, न दिखावा कि मैं ब्रह्मचारी या संन्यासी होने का दावा करूँ और भीतर ही भीतर दुष्कर्म करूँ। यह तो दिखावा है। इस दिखावे

से आध्यात्मिक जीवन में आगे नहीं बढ़ा जा सकता। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उदाहरण प्रस्तुत किया है।

(तब श्रील प्रभुपाद ने बताया कि इस तरह श्रीचैतन्य महाप्रभु ने छोटे हरिदास का, जिसने विरक्त होकर तरुणी स्त्री को वासनापूर्ण दृष्टि से देख था, परित्याग कर दिया किन्तु जब उन्होने देखा कि शिवानन्दसेन की पत्नी गर्भवती है तो उन्होंने अजन्मे शिशुका नामकरण कर दिया।)

एक व्यक्ति जिसने मात्र एक तरुणी स्त्री को कामेच्छा से देख, उसे बहिष्कृत कर दिया गया। और एक व्यक्ति जिसने अपनी पत्नी को गर्भवती किया उन्होंने उसे स्वीकार किया, "ठीक है।"

तो इस आन्दोलन में यौन जीवन वर्जित नहीं है, किन्तु दिखावा वर्जित है। यदि आप कपटी बन जाऐं तो फिर कोई रास्ता नहीं बचता। यही चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है। छोटे हरिदास ने अपने को ब्रह्मचारी के रूप में प्रस्तुत किया, किन्तु वह एक तरुणी को देख रहा था। तब चैतन्य महाप्रभु जान गये कि वह कपटी है, उसे त्याग दो। और शिवानन्दसेन, गृहस्थ थे। गृहस्थ के सन्तानें होनी चाहिएं - इसमें कौन सा दोष है? उन्होंने कहा हाँ ठीक है, मेरा उच्छिष्ट उसे दिया जाए।

तो हमारा अनुरोध है कि कपटी मत बनो। चार आश्रम हैं: ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। उनमें से जो भी आश्रम आपके अनुकूल हो उसे स्वीकार करो, किन्तु निष्ठापूर्वक। कपटी मत बनो। यदि आप सोचते हैं कि आपको संभोग करना है तो विवाह करके भद्र पुरुष की भाँति रहिए। किन्तु कपटी न बनें। यही चैतन्य महाप्रभु का आन्दोलन है। उन्हें पाखण्ड पसन्द न था। किसी को भी पाखण्ड पसन्द नहीं होता।

किन्तु जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में लगा हो उसके लिए यौन जीवन तथा भौतिक ऐश्वर्य बहुत अच्छे नहीं होते। इसलिये चैतन्य महाप्रभु ने स्वेच्छा से संन्यास ग्रहण किया। वे अपने गृहस्थ जीवन में भलीभाँति स्थित थे। जब वे गृहस्थ थे, उन्होंने दो बार विवाह किया। एक पत्नी की मृत्यु हो गई तो दूसरी शादी की। किन्तु जब उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया तो वे अत्यधिक कठोर थे। कोई भी स्त्री उनके निकट नहीं जा सकती थी। यही चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है। इसलिए यदि हम गम्भीर हैं, तो हमें विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करना होगा। (२३.५.७६)

अत: हमें त्याग करना होगा। इसलिये विधान है। कम से कम अवैध यौन तो त्यागना ही होगा। आप विवाह कर लें और भद्र व्यक्ति की तरह रहें, उत्तरदायित्व



संभालें और तब शनै: शनै: आप यह यौन इच्छा त्याग सकेंगे। जब तक हम यह यौन इच्छा त्याग नहीं देते, पूर्णरूप से अचंचल नहीं हो जाते तब तक बार बार भौतिक जन्म लेने - जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग के चक्र की रुकने की सम्भावना नहीं है। ऐसा सम्भव नहीं है। (१.७.१९७६)

किसी स्त्री को देखना घातक नहीं है किन्तु उसे भोगने की सोचना घातक है। आप इससे बच नहीं सकते। आप यहाँ सड़क पर हैं। किन्तु रमण करने के भाव से देखना घातक है। अत: हमें इसके प्रति अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। इसके लिए कृष्णभावनामृत का पुष्ट प्रशिक्षण आवश्यक है। जब तक कोई कृष्णभावनामृत में प्रबल रूप से लगा न हो तब तक रमण करने की आदत को त्यागा नहीं जा सकता। (१०.९.१९७६)

ऐसा नहीं है कि ब्रह्मचारी को व्याकरण का पंडित बनना होता है..... ये गौण बातें हैं। पहली बात यह है कि उसे यह सीखना होता है कि किस तरह इन्द्रियों को वश में किया जाए, दान्त अर्थात मन को कैसे वश में रखा जाए। शमो दम:। यही ब्रह्मचर्य जीवन का आरम्भ है। यदि आप अपने मन को वश में नहीं कर सकते, यदि आप अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकते तो ब्रह्मचारी बनने का प्रश्न नहीं उठता। (२५.११.१९७६)

## श्रील प्रभुपाद के वार्तालापों से उद्धरण

कोई स्त्रियों से इतनी अधिक घृणा क्यों करे? तुम लोगों को इस तरह प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि स्त्रियों की उपस्थिति होते हुए भी तुम चलायमान न हों। ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता है। हम ऐसा ही प्रशिक्षण दे रहे हैं। मैं तरुण लड़कियों से सदा घिरा रहता हूँ। यदि यूरोपीय देशों में तुम इस तरह प्रतिबन्ध लगा दो तो यह पागलपन होगा। योरुप हीं क्यों?। आजकल यहाँ (भारत में ) भी है। यह केवल कल्पना है। यही चाणक्य पंडित का प्रशिक्षण है। मातृवत परदारेषु। भले ही हज़ारों स्त्रियाँ हों, किन्तु तुम उन्हें अपनी माता के रूप में देखो। यदि तुम अपनी माता को भी देखकर चलायमान हो उठो तो किया ही क्या जा सकता है। तब तुम गोखर (पशु) हो। स्त्री तथा पुरुषों का यह नियम-निष्ठ (कड़ा) विलगाव सम्भव नहीं। क्या तुम यह कहना चाहते हो कि यौन जीवन से बचकर कोई सिद्ध (पूर्ण) बन सकता है? तब तो सारे नपुंसक लोग सिद्ध हैं। सिद्ध का अर्थ है कि चंचलता के बावजूद वह चलायमान नहीं होता। यही सिद्ध है। (२७.३.७४)।

अत्यधिक निष्ठावान हुए बिना माया का सामना नहीं किया जा सकता। यह सम्भव नहीं। यदि तुम माया के दास बने रहते हो तो माया पर विजय नहीं पा सकते। तुम्हें श्रीकृष्ण का अति निष्ठावान दास होना होगा। तब तुम विजय पा सकते हो। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। अन्यथा तुम माया की चालों के अधीन हो। (१३.७.७४)

पांच से पच्चीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी को केवल ईश्वर के बारे में ही सीखना होता है। वह एकमात्र ब्रह्म में रुचि रखता है। उसी को ब्रह्मचारी कहते हैं। उसमें कोई भौतिक रुचि नहीं होती। आध्यात्मिक जीवन की यह आधारशिला है। (१.३.७५)

हर कोई अपनी कामेच्छा पूरी करना चाहता है। अत: जब तक कोई सतोगुणी या गुणातीत न हो, हर कोई इसे चाहेगा। यही भौतिक जगत है: रजस्तम:। रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये। यह सब शास्त्रों में विवेचित है। मान लो, कि मैं भूखा हूँ। और भोजन भी है। मैं उसे खाना चाहता हूँ। यदि मैं इसे बलपूर्वक लूँ तो यह अवैध है, किन्तु यदि मैं इसका मूल्य चुका दूँ तो यह वैध है। किन्तु मैं भूखा हूँ इसलिए इसे खाना चाहता हूँ। यही चल रहा है। हर कोई कामी है। अत: लोग "वैधीकृत वैश्यागमन" कहते हैं। वे यही चाहते हैं। इसलिए कभी-कभी विवाह को विधि सम्मत करा लिया जाता है। वासना तथा इच्छा वही रहती है, चाहे कोई विवाहित हो या अविवाहित। इसलिये वैदिक नियम कहता है, "विवाह कर लेना अच्छा है। तब तुम नियन्त्रित होगे।" वह उतना कामुक नहीं होगा जितना कि विवाहित जीवन न होने पर होता। इसलिए गृहस्थ जीवन एक छूट है - वही कामेच्छा विधि-विधानों के अन्तर्गत। विवाहित जीवन के बिना वह अनेक प्रकार से बलात्कार करेगा, अत: अच्छा हो कि स्त्री तथा पुरुष दोनों ही एक (संगी) से संतुष्ट हो लें और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करें। यही छूट है। इस जगत् का हर व्यक्ति इन्हीं कामेच्छाओं तथा लोभ को लेकर आया है। यहाँ तक कि शिव तथा ब्रह्मा जैसे देवता भी। ब्रह्माजी अपनी पुत्री पर ही कामासक्त हो गये और शिवजी मोहिनीमूर्ति के पीछे पागल हो उठे। तो फिर हम तुच्छ प्राणियों का क्या कहा जाए। अत: कामेच्छाएँ होती हैं। यही भौतिक जगत् है। जब तक कोई पूर्णरूपेण कृष्णभावनाभावित न हो, इस कामेच्छा को रोका नहीं जा सकता। ऐसा सम्भव नहीं।

पहली तपस्या ब्रह्मचर्य है अर्थात इस यौन इच्छा को रोकना। कहाँ है उनकी तपस्या? "इस तपस्या को करना बहुत कठिन है।" इसलिये चैतन्य महाप्रभु ने हरेर्नाम प्रदान किया है। यदि तुम नियमपूर्वक हरे कृष्ण मन्त्र का जप करो तो तुम ठीक हो जाओगे। अन्यथा नियमित तपस्या आजकल प्राय: असम्भव है (११.५.७५)



प्रचार करने अकेले मत जाओ। कम से कम दो भक्त या सम्भव हो तो अधिक एक साथ होने चाहिएं। (१२.५.७५)

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तो गुरोर्हितम्।
आचरन् दासवन्नीचो गुरौ सुदृढ सौहृद: ॥

ब्रह्मचारी को अपनी इन्द्रियों को वश में करते हुए और अपने लाभ के लिए नहीं अपितु गुरु के लाभ के लिए कार्य करते हुए गुरुकुल में रहना चाहिये। उसे दास की तरह कर्म करना चाहिए। स्वामी आज्ञा देता है और दास आज्ञा पालन करता है। भले ही वह राजसी या ब्राह्मण परिवार से हो, फिर भी उसे विनीत एवं गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए तैयार रहना चाहिए। शिष्य को कभी चुनौती नहीं देनी चाहिए।

उसे विनीत क्यों होना चाहिए? उसे कोई धन नहीं मिल रहा। ये बातें गुरु के प्रति प्रेम के आधार पर स्वीकार की जाती हैं। तुम नौकरी नहीं कर रहे। मैं तुम्हें वेतन नहीं दे रहा, फिर भी तुम काम करते हो किन्तु क्यों करते हो? मेरे प्रति प्रेमवश। यही मूल सिद्धान्त है। व्यक्ति को आश्वस्त होना चाहिए, "मेरे गुरु मेरे श्रेष्ठ मित्र हैं; अत: मुझे उनकी सेवा करनी चाहिए।" तुम जो सेवा कर रहे हो वह मेरे द्वारा किसी को एक हजार डॉलर प्रतिमास देने पर भी सम्भव नहीं है। यह सम्भव नहीं है। क्योंकि यह प्रेमवश की जाती है। यही मूल सिद्धान्त है। यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। जब कोई श्रीकृष्ण तथा उनके प्रतिनिधि स्वरूप गुरु की भक्ति में स्थिर हो जाता है तो हर वस्तु स्वयमेव प्रकट हो जाती है। तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते। ये सारे प्रकाशित अनुभव हैं। विशेषतया ब्रह्मचारीगण गुरु के संरक्षण में होते हैं। शुरु शुरु में किसने कितना क, ख, ग, सीखा इसका प्रश्न ही नहीं रहता। पहली बात यह है कि उसे गुरुकुल में रहना होता है और इन्द्रिय संयम का अभ्यास करना होता है। मूल सिद्धान्त यही होना चाहिए कि वह अपने लाभ के लिए नहीं अपितु गुरु के लाभ के लिए जीता है। गुरु जो भी आदेश दे, वह उसे पूरा करे। (जुलाई १९७५ में डल्लास में गुरुकुल के शिक्षकों से बातचीत करते हुए श्रील प्रभुपाद)

हमारे समाज का यह एक दोष है कि उसमें स्त्रियाँ भी होती हैं और पुरुष इन स्त्रियों का शिकार बन जाता है। और समाज को केवल पुरुषों के लिये रखना संभव नहीं है। यह भी सम्भव नहीं है। किन्तु किसी भी स्त्री को मन्दिर में नहीं रहना चाहिए।

**भक्त:** श्रील प्रभुपाद! ईसाइयों में स्त्रियों के लिए एक स्थान है और पुरुषों के लिए दूसरा स्थान होता है। किन्तु हम देखते हैं कि स्त्रियाँ अपने को ठीक से संगठित नहीं कर सकतीं। इसलिए उस तरह का भी कुछ कर पाना कठिन है।

**श्रील प्रभुपाद:** इसलिए यदि हम अपनी कामुक इच्छाएँ नहीं त्यागते तो चाहे हम पृथक रहें या साथ-साथ हमारा पतन होता है। कलियुग में यौन आवेग इतना प्रबल है किन्तु इसका कई तरह से उपयोग होता है। योगी, स्वामी, विद्यालय, महाविद्यालय, दर्शन और अन्त में यौन। बस हो गया। वही दृष्टान्त - कुत्ते की पूँछ (जो लाख यत्नों के बाद भी टेढ़ी की टेढ़ी रहती है) (१४.७.७५)

तपस्या का अर्थ ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है यौन जीवन पर पूर्ण विराम। यही ब्रह्मचर्य है। तपस्या का अर्थ है कष्ट लेना। यौन पर विराम सबसे बड़ी तपस्या है। तपसा ब्रह्मचर्येण। हमारी वैदिक सभ्यता में बालकों को प्रारम्भ से ही ब्रह्मचारी रहने का प्रशिक्षण दिया जाता है। हमारी सत्ता को शुद्ध होने की आवश्यकता है। सो कैसे? तपो अर्थात तपस्या से। किन्तु हम तो जीवन का आनन्द ले रहे हैं, हम तपस्या क्यों करें? आप आनन्द नहीं ले रहे, कष्ट पा रहे हैं। यदि आप यह सोचते भी हों कि आप आनन्द ले रहे हैं, तो कष्ट अनेक हैं। मूर्ख लोग यही नहीं जानते।

(भौतिक जगत के मुख्य कष्ट जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग हैं।) इनके अलावा भी अनेक अन्य कष्ट हैं। किन्तु मनुष्य सोचता है कि वह सुखी रहेगा। यह सुख यौन पर केन्द्रित है। यन्मैथुनादिगृह्यमेधि सुखं हि तुच्छम्। उनका एकमात्र सुख यौन है। इसलिये पाश्चात्य देशों में लोग केवल यौन आनन्द के लिए प्रयत्न करते हैं। सारी सभ्यता इसी पर आधारित है कि किस तरह उत्तम रीति से यौन का आनन्द लूटा जाए। उनकी सभ्यता का यही मूल सिद्धान्त है।

**भक्त:** अधिक बिकने वाली पुस्तकों की सूची में कुछ ऐसी पुस्तकें अवश्य होती हैं जो यौन का आनन्द लूटने के विषय पर हों।

**श्रील प्रभुपाद:** हाँ। यहाँ भी कुछ पुस्तकें हैं - यथा कामशास्त्र। हम यौन आनन्द भी असीम रूप में नहीं पा सकते। तब तो हम नपुंसक बन जाएंगे। नपुंसकता का अन्य पक्ष समलैंगिकता है। यह स्वाभाविक है। यदि आप अधिक संभोग करेंगे तो नपुंसक हो जाएंगे।

**भक्त:** अमरीका में समलैंगिकता को अधिकाधिक स्वीकार्य बनाया जा रहा है।

**श्रील प्रभुपाद:** हाँ, गिरजाघर स्वीकार करते हैं। यह कानून बन चुका है। सारा संसार विनाश के कगार पर है। कलियुग जो है। (६.९.७५)

यौन जीवन के बिना कोई व्यक्ति भौतिक दृष्टि से उत्साहपूर्ण नहीं हो सकता। और यदि आप यौन जीवन को विराम देते हैं तो आप आध्यात्मिक रूप से प्रवृद्ध हो



जाते हैं। यही रहस्य है। यदि आप यौन जीवन को विराम दें तो आप आध्यात्मिक दृष्टि से आगे बढ़ जाते हैं और यदि यौन जीवन में लिप्त होते हैं तो आप भौतिक दृष्टि से उत्साही होंगे। किन्तु ज्ञानियों, योगियों तथा भक्तों के लिए यौन जीवन वर्जित है। (१८.१०.७५)

**भक्त:** श्रील प्रभुपाद! क्या हम सारी स्त्रियों को 'माता' कहकर पुकारें?

**श्रील प्रभुपाद:** हाँ। और उनसे माता जैसा व्यवहार करें। न केवल पुकारें अपितु माता के समान उनसे आचरण करें।

**हरिकेश:** वस्तुत: हमें इसका भी कोई ज्ञान नहीं है कि माता के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।

**श्रील प्रभुपाद:** इसे सीखिये। कम से कम माता को तो संभोग का प्रस्ताव नहीं दिया जाना चाहिये। (२५.१०.७५)

**भक्त:** (एक ब्रह्मचारी) मंदिर कक्ष में स्त्रियों के साथ जप नहीं करना चाहता। वह कहता है, "मैं स्त्रियों के साथ कमरे में जप नहीं करना चाहता। इससे तो अच्छा हो कि मैं इनसे दूर ही रहूँ।"

**श्रील प्रभुपाद:** इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह पुरुषों तथा स्त्रियों में अन्तर करता है। वह अभी भी पंडित नहीं हुआ। पण्डित: समदर्शिन:। वह मूर्ख है। (२.११.७५)

**भक्त:** यदि कोई पुरुष वीर्यपात करता है, या हस्तमैथुन करता है, या लोग व्यर्थ ही अपनी यौन शक्ति का उपयोग करते हैं, तो क्या वे पागल हो जाएंगे। उनके मस्तिष्क अत्यन्त कमज़ोर हो जाएंगे और वे शरीर से अत्यन्त दुर्बल हो जाएंगे?

**श्रील प्रभुपाद:** हाँ। यह तथ्य है (१५.३.७६)

ब्रह्मचारी रहने के बाद यदि उसका मन करे तो वह विवाह कर सकता है। अन्यथा तुरन्त संन्यास ग्रहण कर ले। गृहस्थ बनना आवश्यक नहीं है। यदि किसी को लगे कि वह ब्रह्मचारी नहीं रह सकता तो उसे विवाह करने की अनुमति दी जाती है। यह भी सीमित है। नि:सन्देह, भौतिक जीवन यौन पर आधारित है। जब तक कामेच्छा रहती है तब तक वह व्यक्ति मुक्त नहीं होता। हमारी विधि है यौन जीवन से मुक्त हो जाना। मुख्य विषय है कामेच्छा से मुक्ति। यह सबसे अच्छी बात है। उत्तेजनाओं के बावजूद यदि कोई व्यक्ति स्थिर रहता है तो वह धीर कहलाता है। धीरस्तत्र न मुह्यति। इसलिए यदि हमारे छात्र हमारे गुरु महाराज की तरह धीर बनें

तो यह सर्वोत्तम बात है। (अप्रैल १९७६में वृन्दावन में गुरुकुल शिक्षकों से बात करते समय श्रील प्रभुपाद)

**रूपानुग:** एक ब्रह्मचारी आपसे शिकायत किया करता था कि वह सारे समय बीमार रहता है तो आपने कहा था, "क्या तुम ब्रह्मचारी नहीं हो?" क्या तुम ब्रह्मचारी नियमों का पालन नहीं करते?" क्या आपके कहने का मन्तव्य यह था कि यदि वह निष्ठापूर्वक ऐसा कर रहा होता तो वह सदा बीमार नहीं रहता?

**श्रील प्रभुपाद:** हाँ। यह तथ्य है। (९.७.७६)

यौन आवेग सारा चरित्र नष्ट कर देता है। (३१.७.७६)

हमारा जीवन सीधा सादा है। हम विलास नहीं चाहते। जीवन को अति सरल होना चाहिए। व्यर्थ की वस्तुओं को बिना आवश्यकता के बढ़ाते जाना ही भौतिक जीवन है। हमें बहुत अधिक की आवश्यकता नहीं होती। काम चलाने के लिए ही हमें चाहिए। हमें व्यर्थ के विलास से घृणा है। (३१.७.७६)

यदि कष्टों से बचना चाहते हो, तो विवाह मत करो। ब्रह्मचारी बने रहो। यदि ऐसा नहीं कर सकते, तो वैध पत्नी रखो, सन्तान उत्पन्न करो, उनका अच्छी तरह पालन पोषण करो, उन्हें वैष्णव बनाओ, उत्तरदायित्व लो। तो हम इस समाज का संगठन कर रहे हैं। इसमें स्वागत है। हम किसी न किसी तरह शरण का प्रबन्ध कर देंगे। किन्तु बच्चों की देखभाल करना, उन्हें शिक्षित करना यह सब उनके माता-पिता पर निर्भर करेगा। (३.८.७६)

यदि कोई अपने को शुद्ध रखना चाहे तो किसी भी परिस्थिति में अपने को शुद्ध रख सकता है। (२२.८.७६)

यौन जीवन इस भौतिक जगत् में अत्यंत प्रबल है, यहाँ तक कि स्वर्ग लोक में भी। बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी। पशुओं के साथ भी संभोग होता है। यौन जीवन इतना प्रबल है। जानवर के साथ रहता आदमी। यह मनुष्य को अंधा बना देता है। जरा उच्च-मंडल में यौन व्यापारों को तो देखा। देवताओं के गुरु बृहस्पति अपनी भ्रातृ वधू, जो गर्भवती थी, के पीछे इतने उन्मत्त हो गये कि बलपूर्वक उन्होंने संभोग किया। देखो। ये सारे उदाहरण हैं। ब्रह्मा अपनी पुत्री पर मुग्ध हो गये। शिवजी मोहिनी मूर्ति की सुन्दरता पर अपनी पत्नी की उपस्थिति में भी आकृष्ट हो गये। अत: यह यौन जीवन केवल कृष्णभावनाभावित होने पर ही नियन्त्रित किया जा सकता है। अन्यथा नहीं। भागवत ने इन सब बातों की चर्चा की है क्योंकि इस जगत में यौन आवेग से बच निकलने का कोई उपाय नहीं है जब तक कि हम कृष्णभावनाभावित न हों।



यह संभव नहीं है। यदवधि ममचेत: कृष्ण..... पूर्ण रूपेण कृष्णभावनाभावित होने पर मनुष्य इस व्यर्थ के पचड़े को त्याग देगा। "यह पचड़ा क्या है?" भवति मुख विकार: सुष्ठु। तब वह थूकेगा "इह! चले जाओ । क्या यह भोग है?" कृष्णभावनाभावित के लिए यह सम्भव है..... अन्य कोई नहीं कर सकता। और यही बन्धन है। उसे यौन व्यापारों के लिए कठिन श्रम करना पड़ेगा। और जब तक आप कर्मों से बँधे हैं तब तक आप को दूसरा शरीर धारण करना पड़ेगा और यह क्रम चलता रहेगा। इसे कौन जानता है कि हम किस तरह बँधे है और बद्ध हैं? यदि आप आधुनिक समाज में बातें करें तो लोग हँसेंगे, "यह व्यक्ति कैसा मूर्ख है..... 'यौन जीवन से मनुष्य बद्ध हो जाता है।' वे इसे समझ नहीं सकते। (७.१.७७)

हमने क्या छोड़ा है? हम मोटरकार का प्रयोग कर रहे हैं, हम इस मशीन का प्रयोग कर रहे हैं, हम खा रहे हैं, अच्छे कमरे में सो रहे हैं - तो त्याग है क्या? एकमात्र त्याग है स्त्री के साथ सम्बन्ध न रखना। यदि कोई स्त्री सम्बन्ध को त्याग दे तो वह मुक्त है। किन्तु यह अति कठिन है। (३१.१.७७)

न केवल प्रशिक्षित बालक अपितु प्रौढ़ व्यक्ति भी यदि कृष्णभावनामृत को गम्भीरता से ले तो वह भी यौन जीवन भूल जाता है। (सिगमण्ड फ्रॉइड पर विचार-विमर्श से)

जब तक मनुष्य में यौन के प्रति झुकाव रहता है तब तक उसे भौतिक शरीर ग्रहण करना होगा। (सिगमण्ड फ्रॉइड पर विचार-विमर्श से)

# अन्य स्त्रोतों से उद्धरण

## पारम्परिक ब्रह्मचारी जीवन पर संक्षिप्त लेख

(भानुस्वामी द्वारा विविध स्त्रोतों से संकलित)

### (१) ब्रह्मचारी के प्रकार

(अ) गायत्री—जो गायत्री मंत्र सीखता है, तीन दिनों तक नमक तथा मसाले छोड़े रहता है, और फिर गृहस्थ जीवन स्वीकार करता है।

(आ) ब्रह्मन्—जो गायत्री मंत्र सीखता है और गुरुकुल में पूरे १२-२० वर्षों तक रहकर अध्ययन करता है, भिक्षा माँगता है, अनुष्ठानों का अभ्यास करता है और तब स्नातक होने के बाद विवाहित जीवन स्वीकार करता है।

(इ) प्रजापति—जो गायत्री मंत्र सीखता है और गुरुकुल में अधिकतम तीन वर्षों तक रुकता है, फिर विवाह करता है।

(ई) नैष्ठिक—जो गायत्री मंत्र सीखता है, फिर गुरुकुल में रह कर अध्ययन करता है और मृत्यु होने तक गुरु के आश्रम में रहता है। (अर्थात ब्रह्मचारी प्रतिज्ञाओं का पालन करता है) वह शुद्ध, अविवाहित, लाल वस्त्र धारण करके, शिखा, उपवीत तथा दण्ड धारण करके, बिना नमक तथा मसाले का भोजन करके तथा अपने गुरु के लिए मिली भिक्षा पर जीवन निर्वाह करता है।

### (२) ब्रह्मचारी के कार्य

उसे उत्तम चरित्र का अनुशीलन करने, इन्द्रियों को वश में करने, वाणी पर संयम रखने, अन्यों के साथ उचित व्यवहार करने, अध्ययन करने, यज्ञ करने तथा भिक्षा मांगने में संलग्न होना चाहिए।

**(क) चरित्र तथा इन्द्रिय संयम का अनुशीलन**

उसे झूठ बोलना, काम, क्रोध, लोभ, प्रेमान्धता, गर्व, ईर्ष्या, हिंसा, भय तथा पश्चाताप का परित्याग करना चाहिए।

उसे सभी प्रकार का यौन जीवन छोड़ देना चाहिए।

उसे किसी भी प्रकार से वीर्यपात नहीं होने देना चाहिए।

उसे स्त्री को देखना, छूना या उससे बात नहीं करनी चाहिये।

उसे दिन में नहीं सोना चाहिए।



उसे पलंग पर नहीं सोना चाहिये।

उसे अपने शरीर पर तेल नहीं लगाना चाहिए।

उसे गर्म जल से स्नान नहीं करना चाहिए।

उसे सौंदर्य प्रसाधन, सुगंध, पुष्प अलंकरण, जूते तथा छातों का परित्याग करना चाहिए।

उसे लोकप्रिय गीतों का सुनना तथा गायन त्याग देना चाहिए।

उसे अति स्नान, अति भोजन, अति निद्रा, अति जागरण तथा अति आलोचना का परित्याग कर देना चाहिए।

उसे ब्रह्ममुहूर्त में जाग कर दाँत साफ करना, स्नान करना, गायत्री मंत्र का जाप और ईश्वर की पूजा करनी चाहिए।

"उसे दिन और रात की दोनों संधियों के समय गुरु, अग्नि, सूर्यदेव, भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहिए और गायत्री मन्त्र के जाप से उनकी पूजा करनी चाहिए" (श्रीमद् भागवतम् ७.१२.२)

**(ख) वाणी**

उसे प्रिय तथा सत्य भाषण करना चाहिए, अपनी सत्य भावनाओं को अपनी वाणी में घृणा लाये बिना व्यक्त करना चाहिए। उसे मन के व्यथित होने पर भी न तो आलोचना करनी चाहिए, न अप्रिय या असत्य भाषा कहनी चाहिए।

**(ग) आचार्य के प्रति सम्मान**

उसे आचार्य की धर्मानुकूल आज्ञाओं का पालन करना चाहिए।

उसे गुरु के संरक्षण में वेदों का अध्ययन करना चाहिए।

उसे आचार्य को जो प्रिय हो वही करना चाहिए।

उसे प्रातः तथा सायंकाल अहम्.....भो अभिवादये (मैं आपको नमस्कार करता हूँ) यह कह कर नमस्कार करना चाहिए।

इसका उत्तर शिक्षक इस प्रकार देगा :

सौम्य, आयुष्यमान भव। (हे सौम्य, तुम दीर्घायु हो)

तत्पश्चात् छात्र को अपने हाथों से अपने कानों का स्पर्श करके, हाथों को एक के ऊपर एक रखकर गुरु के पाँव छूने चाहिए।

उसे आचार्य तथा गुरुजनों को औपचारिक नाम से सम्बोधित करना चाहिए।

यदि शिक्षक उठता है तो छात्र को उठना चाहिए; यदि शिक्षक खड़ा रहे तो

छात्र को खड़ा रहना चाहिए; यदि शिक्षक टहलता है तो छात्र को उसके पीछे चलना चाहिए; यदि शिक्षक बैठ जाए या लेट जाए तो छात्र को उसकी अनुमति से एक नीचे आसन पर बैठना चाहिए।

**( घ ) अध्ययन**

अध्ययन तथा पूजा के कार्यों, जो उसे बिना कहे करने चाहिए, के अलावा उसे शिक्षक की अनुमति के बिना कार्य नहीं करना चाहिये।

उसे पैर फैलाकर, पेड़ पर, नाव पर, एक यान में, बिस्तर पर, श्मशान में, संध्या के समय, आँधी के समय, धरतीकम्प के समय, ग्रहण के समय, आपदा के समय, या उल्कापात् के समय, प्रतिबंधित खाद्य पदार्थ खाने के बाद, वमन के बाद, किसी विद्यार्थी, अध्यापक या अध्यापक के पुत्र या पत्नी की मृत्यु के समय, या शव की उपस्थिति में अध्ययन नहीं करना चाहिये।

**( ङ) भोजन करना**

उसे गुरु की अनुमति लेकर भोजन करना चाहिए।

उसे स्नान करके, गायत्री मन्त्र का उच्चारण करने के बाद हाथ पाँव तथा मुंह धोकर, अधोवस्त्र तथा उत्तरीय पहन कर दिन में दो बार ऐसी बिना टूटी थाली में भोजन करना चाहिए जो न तो उसकी गोद को छूती हो न आसन को।

उसे न तो किसी का उच्छिष्ट (गुरु को छोड़कर), न ही मासिक धर्म अवधि से गुजर रही स्त्री द्वारा स्पर्श किया, या ऐसे व्यक्ति, जिसके घर में कोई जन्मा हो या मरा हो, का छुआ भोजन ग्रहण करना चाहिए।

वह शूद्र से कच्चा भोजन ले सकता है जो वैध तरीकों से जीवनयापन कर रहा हो।

उसे बहुत अधिक तीखा, खट्टा, कसाय, कड़ुवा, नमकीन या दस्तावर भोजन से बचना चाहिए।

उसे माँस, मद्यपान या अन्य कोई प्रतिबंधित भोजन नहीं लेना चाहिए।

**( च ) यज्ञ**

ब्रह्मचारी को प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल अग्नि यज्ञ करना चाहिए।

### ( ३ ) स्नातकत्व:

जब छात्र का अध्ययन समाप्त हो ले और यदि वह घर लौटकर गृहस्थ जीवन



## यौन का अर्थ मृत्यु

कृष्णभावनामृत के शुभारम्भ से ही मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है इसलिए इन्द्रियों की लिप्तता को त्यागना सरल हो जाता है। आध्यात्मिक जीवन में चार सबसे बड़ी बाधाएँ हैं - अवैध यौन, नशा, मांसाहार तथा जुआ खेलना। इन्हें आश्चर्यजनक आसानी से छोड़ा जा सकता है। जब मनुष्य को वास्तविक वस्तु अर्थात अनवरत् आनन्द तथा ज्ञान का वास्तविक जीवन मिल जाता है तो जालसाजी को दूर करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

कृष्ण के प्रति अहैतुकी प्रेम श्रीकृष्ण की अहैतुकी सेवा के रूप में प्रकट होता है। यह सेवा ऐसी है जिसमें न तो किसी पुरस्कार की कामना रहती है न कोई अवरोध आता है। यह वह विशेषता है जो प्रेम को विकृत भौतिक विकार अर्थात काम से विभेदित करती है जिसमें निजी लाभ ही हेतु होता है। यहाँ तक कि पुरुष तथा स्त्री का यौन संगम भी कृष्ण की सेवा में लगाया जा सकता है। किसी शिशु के लिए सौभाग्य की बात है कि वह आत्म-साक्षात्कार में लगे माता-पिता से जन्म ले क्योंकि तब वह प्रारम्भ से काम तथा लोभ से अदूषित वातावरण में रहता है और उसे माता के दूध से ही आध्यात्मिक जीवन के नियम प्राप्त होते हैं। ऐसे बालक तभी गर्भ में हो सकते हैं जब माता-पिता उसी उद्देश्य के लिए संभोग करते है और अपनी चेतना की शुद्धि से अपनी सन्तान के सद्गुणों को सुनिश्चित करते हैं। माता-पिता का पहला कर्तव्य है अपनी सन्तानों का मृत्यु से उद्धार करना तथा पारिवारिक जीवन जो इस उद्देश्य के लिए समर्पित होता है, वह आत्म-साक्षात्कार के अनुकूल होता है, इसलिए कृत्रिम रूप से उससे विरक्त होने की आवश्यकता नहीं होती।

किन्तु यौन किसी अन्य कार्य के लिए यथा भोग हेतु शरीर का शोषण करने के लिये या अहंकार को भड़काने के लिए हो तो मृत्यु का कारण बनता है। यौन अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा कहीं अधिक हमें शरीर के साथ अपनी झूठी पहचान से जोड़ता है, मांस से कस देता है, और भौतिक प्रगति में हमें लिप्त करता है। यौन इच्छा कभी भी तुष्ट नहीं की जा सकती क्योंकि यह जिस पर पलती है उसी से बढ़ती है। यह हताशापूर्ण इच्छा एक गहरा और बंधन जनक क्रोध उत्पन्न करती है जो हमारे मोह को प्रगाढ़ बनाता है। इच्छा तथा घृणा के जुडवां भ्रम हमें अन्तहीन शारीरिक बन्धन में धकेलते हैं, ऐसे रूपों में, जो हमें भय से पूरित करते हैं, चोट तथा रोग से अनवरत् पीड़ित होते हैं, हमारे उनमें रहते हुए, वे छिन्न-भिन्न हो जाते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं। वास्तव में यह सब हमारे साथ घटित नहीं होता, किन्तु हमने भूलवश अपनी पहचान

शरीर से कर ली है और इस प्रकार से सब कष्ट अपने ऊपर ले लिये हैं। मृत्यु एक मोह है जिसे हमने स्वयं इस जगत् को भोगने की अपनी इच्छा के द्वारा अपने ऊपर लाद लिया है। उस इच्छा का सार यौन है। इसलिए यौन मृत्यु है।

यह ठीक ही है कि मृत्युदण्ड के विरुद्ध हम संघर्षरत हों। यह उचित ही है कि हम लज्जा तथा भयविहीन निरन्तर नित्य आनन्दमय जीवन की खोज कर रहे हैं। यह स्वाभाविक ही है कि हम द्वैत से किसी तरह का समझौता न करके पूर्ण और अपने से एक बनना चाहते हैं। किन्तु सबसे मृत्युदायी भ्रम यह है कि यौन इन सभी लक्ष्यों का मार्ग है, जब कि यह सबसे बड़ा बाधक है। यह हमारे रोग का कारण है जिसे हम उपचार समझ कर गले लगाते हैं।

धर्मों द्वारा आदिष्ट यौन कर्म पर प्रतिबन्ध मूलत: मानव सुख के इस सबसे बड़े अवरोध पर विजय पाने में सहायता करने के लिए थे। दुर्भाग्यवश अब प्रतिबन्ध तथा निषेध ही बचे हैं जब कि उनके पीछे वास्तविक कारण को भुला दिया गया है।

किन्तु आत्म-साक्षात्कार का जीवित मार्ग एक बार फिर खुल गया है। आप को ऐसा लग सकता है कि चाहे जितने अच्छे मनोभाव हममें हों, किन्तु यौन इच्छा इतनी प्रबल है कि इस पर विजय नहीं पाई जा सकती। यह सच है कि कृत्रिम रूप से दमन करने के लिए यह अति प्रबल है। किन्तु अनुभव से मैं जानता हूँ कि यदि आप भक्तियोग का प्रारम्भ विशेषकर हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने से करें, तो आप पायेंगे कि जो बहुत बड़ा अवरोध प्रतीत हो रहा था उसे पार करना आसान हो गया है और अपना वास्तविक जीवन, जो जन्म-मृत्यु के लोक से परे है, निकट है। (रवीन्द्र स्वरूप दास कृत "एंडलेस लव" से)

## शाश्वत प्रेम

प्रेम करने की हमारी लालसा स्वाभाविक ही असीम रूप से विस्तार करना चाहती है, किन्तु इस जगत में उसे बारम्बार अवरोध मिलते हैं। प्रेम करने की हमारी उमंग की निराशा हमारे जीवन की सबसे दु:खद घटना बन जाती है। समस्या की गूढ़ता यह है कि यद्यपि हम प्रेम करना चाहते हैं, किन्तु जब हम वैसा करते हैं तो सर्वाधिक भेद्य हो जाते हैं। जैसे ही हम किसी से प्रेम करते हैं, वैसे ही अपने को बहिष्कार, विश्वासघात, विलगाव, क्षति तथा सम्बन्धित संपूर्ण वेदना, पीड़ा के प्रति हम अपने को खोल देते हैं। इन बातों के अनुभव ने संसार को कटु, निराश, जिद्दी तथा चिड़चिड़े लोगों से भर दिया है।



किन्तु इसके भी पूर्व कि हम निष्फल प्रेम की पीड़ा सहें, हम पूरी तरह से और बिना शर्त के प्रेम नहीं कर पाते। हम जो हैं और इस जगत् में हम जिससे प्रेम कर सकते हैं, उसमें सामञ्जस्य नहीं है। हम इसे अपने अन्त:करण में जानते हैं। असीम तथा अनन्त रूप से प्रेम करने की हमारी इच्छा इसका स्पष्ट संकेत है कि हम स्वयं नित्य आध्यात्मिक प्राणी हैं। साथ ही हम इस जगत् में जिससे भी प्रेम कर सकते हैं, वह क्षणिक और भौतिक है। फलस्वरूप हम बिना भय के प्रेम नहीं कर सकते और हम शुरु से ही जाने अनजाने अपने प्रेम को पूरी तरह प्रकट नहीं कर पाते।

साहित्य में प्राय: जो नायक या नायिका बिना किसी बन्धन के स्वच्छन्द प्रेम करता है उन्हें नाना प्रकार के अत्यधिक कष्ट झेलने पड़ते हैं और अन्त में उनकी बड़ी कारुणिक मृत्यु होती है। हम इन कथाओं को सचेत करने वाली कहानियों के रूप में ले सकते हैं। किन्तु हमें हमारी सतत् निराशा का स्मरण दिलाने के लिए इनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इस संसार में हमारे प्रेम के लिए उपयुक्त विषय है ही नहीं।

इसलिये हम पर असीम दया करके, श्रीकृष्ण, दिव्य, बन्धन रहित प्रेम का अपना साम्राज्य प्रकट करते हैं, जिसमें वे नित्य ही प्रेम के परम विषय (लक्ष्य) - परमपूर्ण नायक, स्वामी, मित्र, शिशु तथा प्रेमी के रूप में प्रकट होते हैं। उनका सौन्दर्य अद्वितीय है और प्रेम के असीमित आदान प्रदानों में प्रकट उनका व्यक्तित्व अनवरत् रूप से मोहक है। जब हम श्रीकृष्ण की ओर मुड़ते हैं तो हमारी प्रेममयी लालसा अंतत: पदार्थ की कड़ी सीमाओं से मुक्त हो जाती है और सदैव बढ़ते रहने वाले एक ऐसे प्रवाह में खुल जाती है जो कभी किसी प्रतिबंध का सामना नहीं करता। इसलिए श्रीकृष्ण हमें निरन्तर अपने पास तथा अपने नित्य धाम में अनन्त प्रेम के आनन्द को उनके साथ आस्वादन करने के लिये बुलाते रहते हैं। (रवीन्द्र स्वरूप दास कृत "एंडलेस लव" से)

## शिक्षाप्रद शब्द

वैष्णव ग्रन्थ "वार्ता-माला" से उद्धरण

यदि कोई वैष्णव स्त्रियों के साथ (या स्त्रियाँ पुरुषों के साथ) अनुचित सम्बन्ध रखता है तो उसे निम्नलिखित अनर्थों या परिणामों को स्वीकार करना होता है।

(१) इससे पुरुष या स्त्री का शरीर बुरी तरह प्रभावित होता है इसलिए यह अनर्थ या अवांछनीय है।

(२) उसे देख कर अन्य लोग भी उसका अनुगमन कर सकते हैं। इसलिए पतित होने वाले वैष्णव के लिए ही यह अनर्थ नहीं है, अपितु उनके लिए भी जो उसके बुरे उदाहरण का पालन करते है तथा उस स्त्री के लिए भी जिसे उसने भ्रष्ट किया है। (उपर्युक्त दोनों परिणाम इसी जन्म में देखे जा सकते हैं।)

(३) इस तरह लिप्त होने से वह शास्त्र के आदेश, "मनुष्य को स्त्री के साथ अवैध सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए, क्योंकि इससे नरक का द्वार खुल जाता है" का अनादर करता है।

(४) उसे भगवान् के कोप का भाजन बनना पड़ेगा क्योंकि भगवान् ने कहा है "जो शास्त्र के नियमों का उल्लंघन करते हैं वे मेरे शत्रु हैं।"

(५) ऐसे अवैध कर्मों से वह वैष्णवों के कोप का भाजन बनेगा।

(६) उपर्युक्त कारणों से उसे अपने गुरु के भी कोप का भाजन बनना पड़ेगा।

(७) इससे पापी लोगों का संग करने के अवसर बढ़ेंगे। (जैसा कि तिरु मलई में कहा गया है "जब मैं इन्द्रियभोग में रुचि रखने वालों की संगति करता हूँ, तो मै भी स्त्रियों की घातक आँखों के मायावी जाल में फँस जाता हूँ।"

(८) ऐसी लिप्तता उसके नित्य स्वभाव के विपरीत है क्योंकि यह विचार कि 'इन्द्रियभोग उत्तम है' दास रूप में उसके नित्य स्वभाव के साक्षात्कार में बाधक है।

(९) चूंकि मनुष्य को यौन आनन्द लेने के लिए इतना प्रयत्न करना पड़ता है इसलिए यह महान अवरोध है इस विचार का, "कि भगवान् ही मेरे एकमात्र आधार एवं पालक हैं।"

(१०) चूँकि मनुष्य और अधिक यह सोच नहीं पाता कि "मेरे प्रभु की सेवा मधुर है" इसलिए यह एक अनर्थ है।

(११) श्रीवैष्णव साहित्य में अन्यत्र कहा गया है कि यदि कोई यौन सुख में लिप्त होता है तो वह परम धाम को नहीं जाएगा। यदि वह देवताओं की पूजा करता है तो वह किसी जीवन में वैष्णव बन सकता है। किन्तु जो व्यक्ति अपना मन यौन भोग में लगाता है वह सदैव नरक लोकों को जाता है, क्योंकि एक बार ऐसे विचार आने से वह लगातार उनमें पड़ता रहेगा। जो वैष्णव अवैध यौन में रत होता है वह घड़ियाल द्वारा पकड़े गये शिकार की भाँति है। घड़ियाल एक बार शिकार के पैर पकड़ लेता है तो छोड़ता नहीं अपितु उसे सिर तक निगल जाता है। उसी तरह इन्द्रियभोग भक्त के स्वभाव को पूरी तरह निगल जाता है।



एक बार एक वेश्या 'वार्तामाला' के लेखक के गुरु के पास आई। उसने पूछा, "यदि कोई वैष्णव दोपहर में मेरे पास आए और कहे कि मैं भूखा हूँ तो उसकी भूख मिटाने के लिए मैं उसे भोजन दूंगी। इसी तरह यदि कोई वैष्णव रात मे मेरे पास आए और कहे कि वह शारीरिक भूख या मेरे साथ सहवास के लिए पीड़ित है तो फिर उसे अपना शरीर अर्पित करके उसकी भूख बुझाने में क्या बुराई है?"

आचार्य ने उत्तर दिया "स्त्री अनेक वर्षों की तपस्या से शिशु प्राप्त करती है। यदि वह शिशु अपनी माता से कहे, 'मुझे फाँसी लगाने के लिए रस्सी दो या गला काटने के लिए चाकू दो,' तो क्या वह उसे उसकी चाही वस्तु देगी? इसी तरह यदि कोई वैष्णव तुम्हारे पास कामोन्मत्त होकर आता है तो तुम्हें सहमत नहीं होना चाहिए। उसके प्रस्ताव को मान कर तुम उसके नित्य स्वभाव को तथा उसकी प्रकृति का साक्षात्कार करने के अनुकूल विचारों को नष्ट करती हो।"

## ऋष्यशृंग की कथा

ऋष्यशृंग की उपदेशपरक कथा रामायण तथा महाभारत में पाई जाती है। ऋष्यशृंग ऐसे ऋषि का पुत्र था जो अपने पुत्र को निष्कलंक ब्रह्मचारी के रूप में पालना चाहता था। इसलिए उसने उस बालक को बचपन से स्त्रियों से दूर, यहाँ तक कि स्त्रियों की वार्ता से भी दूर, जंगल के वातावरण में पाला। उसे ध्यान, शास्त्र अध्ययन तथा ब्राह्मण-अनुष्ठानों की शिक्षा दी। इस तरह युवावस्था प्राप्त होने तक उसे स्त्रियों के अस्तित्व तक का पता ही न चल पाया।

तभी पड़ोसी राज्य में भीषण सूखा पड़ा। चिन्तित राजा ने अपने दरबारी ज्योतिषियों को बुलाया। उन सभी ने अपनी यौगिक दृष्टि से तय किया कि केवल एक ही विधि है जिससे राज्य में सौभाग्य लौट सकता है - वह है कि पास के जंगल में वास करने वाला बाल-ऋषि ऋष्यशृंग राज्य में निवास करने आए। इन ज्योतिषियों ने यह भी बताया कि उस बालक को किस तरह लाया जाए - उसे सुन्दर स्त्रियों द्वारा मोहित किया जाए।

कुछ दिनों बाद जब ऋष्यशृंग अपने पिता के आश्रम में अकेले थे तो हँसी तथा झनकार की आवाज़ से उनका ध्यान टूटा। आँखे खोलने पर यह देख कर वे चकित रह गये कि नवयुवकों की टोली ऐसा खेल खेल रही थी जैसा उन्होंने कभी नहीं देखा था। ये बालक कितने आकर्षक थे? ऋष्यशृंग का मन उनके मुखों तथा शरीरों,

उनकी आकर्षक मुस्कानों तथा चितवनों, उनके स्वरों और आनन्द रस से मुग्ध हो गया। उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो?"

उन्होंने उत्तर दिया, "हम मुनि पुत्र हैं।" क्योंकि वस्तुत: ये शहरी युवतियाँ ब्रह्मचारियों के वेश में थी। उन्होंने निमन्त्रण दिया, "आओ हमारे साथ खेलो।" भला ऋष्यशृंग कैसे मना कर सकते थे? खेलते समय उसका शरीर युवतियों के शरीर से छू गया और उसकी इन्द्रियाँ आकृष्ट हुईं। तत्पश्चात् मुनिपुत्रों ने स्वादिष्ट रुप से पकाए गए अपने व्यंजनों को ऋष्यशृंग के साथ बांट कर खाया। यह बालक जो जंगली मूलों तथा फलों पर पला था अब पूरी तरह मोहित हो गया। किन्तु उनके नये मित्र तुरन्त ही चले गये।

जब ऋष्यशृंग के पिता लौटे तो उन्होंने अपने पुत्र के मन को विचलित पाया। वे जान गये कि जीवन भर जिस बात का उन्हें भय था वही हो गया, अत: उन्होंने अपने पुत्र से अपनी अनुपस्थिति में जो भी घटित हुआ बतलाने को कहा। मुनिपुत्रों का विवरण सुन कर पिता ने ऋष्यशृंग को मना किया कि वह उन लड़कों से न तो पुन: बातें करे, न ही उनकी ओर देखे।

किन्तु क्षति तो हो चुकी थी। ऋष्यशृंग अपने ध्यान में एकाग्र नहीं हो पा रहे थे क्योंकि उनका मन अपने मित्रों को चाह रहा था। अगले दिन जब उनके पिता चले गये, तो मुनि पुत्रों को इस बालक मुनि को आकृष्ट करने में तनिक भी कठिनाई न हुई। पास ही नदी में प्रतीक्षारत नाव में वे तेजी से शहर चले गये। इसके पूर्व कि पिता आकर विरोध जताते, राजा ने ऋष्यशृंग का विवाह अपनी पुत्री से कर दिया।

इस कथा से कुछ शिक्षाएं मिलती हैं; (१) स्त्रियों की संगति से कामेच्छा जागृत होती और बढ़ती है; (२) भले ही कोई ब्रह्मचारी हो, उसे कभी भी स्त्री की आकर्षण शक्ति से अपने को परे नहीं मानना चाहिए; (३) कामेच्छा पर विजय पाने के लिए स्त्रियों से दूर रहना ही पर्याप्त नहीं है। निषेध विधि को सकारात्मक विधि से पूरा करना चाहिए जिससे माया को जीता जा सके। यह सकारात्मक विधि कृष्णभावनामृत है; (४) कामेच्छा की जड़ें बहुत गहरी तथा प्रबल होती हैं।



## पतित महिलाओं तथा पुरुषों के विषय में तुलसीदेवी के विचार

(ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित तुलसीदेवी के शंखचूड़ को कहे शब्दों से उद्धृत: तुलसी के सशक्त वचनों से उन पुरुषों तथा स्त्रियों की शोषणकारी मानसिकता का उद्घाटन होता है जो एक दूसरे का आनन्द लेना चाहते हैं।)

"तुम कौन हो? और मुझसे क्यों बातें कर रहे हो? यदि भद्र पुरुष किसी गुणवती स्त्री को अकेला देखता है तो वह उससे बातें नहीं करता। अत: तुम चले जाओ। शास्त्रों का कथन है कि केवल नीच पुरुष ही स्त्री की कामना करता है। पहले तो पुरुष को स्त्री मधुर लगती है किन्तु बाद में घातक बन जाती है। उसके मुख से मधु टपकता है किन्तु उसका हृदय विष का घट है। वह मीठे शब्दों का प्रयोग करती है, किन्तु उसका हृदय छूरे के समान तेज़ होता है। अपना स्वार्थ साधने के लिए वह अपने पति की आज्ञा मानती हैं, अन्यथा वह अविनीत होती है। उसका मुखमंडल प्रसन्न लगता है किन्तु उसका हृदय मलिन होता है। बुद्धिमान पुरुष कभी भी नीच स्त्री पर विश्वास नहीं करता। उसका न तो कोई मित्र है न शत्रु, क्योंकि वह केवल नये प्रेमी चाहती है। जब वह किसी सजे-धजे पुरुष को देखती है तो भीतर से वह उसे चाहती है, किन्तु बाहर से सती तथा उदार दिखती है। स्वभावत: कामुक होने से वह पुरुष के मन को आकृष्ट कर लेती है। वह अच्छे प्रेमी को मधुर-भोजन या स्फूर्तिदायक करने वाले पेयों से अधिक यहाँ तक कि अपने पुत्र से भी अधिक चाहती है। किन्तु यदि वह प्रेमी नपुंसक या वृद्ध हो जाए तो वह उसे शत्रु मानने लगती है। झगड़े तथा क्रोध आरम्भ हो जाते हैं और वह उसे उसी तरह निगल जाती है जिस तरह सर्प चूहे को खा जाता है। वह साक्षात उच्छृंखलता है और दोषों का भण्डार है।

"स्त्री धूर्त, जिद्दी तथा निष्ठाहीन होती है। यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा अन्य देवता भी धोखा खा जाते हैं। वह तपस्या के मार्ग में बाधा है, मुक्ति के मार्ग में अवरोध, भगवान् हरि में श्रद्धा उत्पन्न करने में अवरोध, समस्त भ्रम का स्रोत तथा इस जगत् से मनुष्य को बाँधनेवाली जीवित श्रृंखला है।"

"वह मल पात्र के समान है और स्वप्नों की तरह मिथ्या है। वह अति सुन्दर प्रतीत होती है किन्तु होती है रक्त, मूत्र तथा मल का पात्र। जब ईश्वर ने उसे बनाया तो उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि वह मोहग्रस्त के लिये मोह भावना तथा मुक्ति चाहने वालों के लिए विष बने। इसलिए किसी भी हाल में स्त्री की कामना नहीं करना चाहिए

और सभी तरह से उससे दूर रहना चाहिए।"

"जो व्यक्ति स्त्री द्वारा विजित होता है वह अत्यन्त अशुद्ध तथा सामान्य जन द्वारा दुत्कारा जाता है। ऐसे पुरुषों को पूर्वज तथा देवता निम्न तथा घृणित मानते हैं। यहाँ तक कि उनके माता-पिता भी मानसिक रूप से उनसे घृणा करते हैं। वेदों का कथन है कि जब कोई शिशु जन्म लेता है या सम्बन्धी मरता है, तो ब्राह्मण दस दिनों में, क्षत्रिय बारह दिनों में, वैश्य पन्द्रह दिनों तथा शूद्र और अन्य नीच जातियाँ इक्कीस दिनों में शुद्ध हो पाते हैं। किन्तु स्त्री द्वारा विजित पुरुष सदैव अशुद्ध रहता है। वह तभी शुद्ध होता है जब उसका शरीर भस्मीभूत होता है। न तो पूर्वज, न ही देवता उससे रोटी, पुष्प या अन्य भेंटें स्वीकार करते हैं।"

"जिन पुरुषों के हृदय स्त्रियों द्वारा विजित हो चुके हैं वे अपने ज्ञान, तप, जप, यज्ञ, पूजा, विद्या या यश का कोई फल प्राप्त नहीं करते।"

## वीर्य का महत्व

वीर्य शरीर की सारी कोशिकाओं में सूक्ष्म अवस्था में रहता है। जिस तरह गन्ने में शर्करा सर्वव्याप्त रहती है और दुग्ध में मक्खन उसी तरह वीर्य सारे शरीर में व्याप्त है। जिस प्रकार मक्खन विलग करने पर दूध पतला पड़ता है उसी प्रकार वीर्य के अपव्यय से यह पतला हो जाता है। वीर्य का जितना ही अपव्यय होगा शरीर उतना ही दुर्बल (क्षीण) होगा। योगशास्त्रों का कथन है:

मरणं बिन्दुपातेन जीवनम् बिन्दु रक्षणात्

"वीर्यपात से मृत्यु होती है, वीर्य के धारण से जीवन मिलता है।" वीर्य मनुष्य की वास्तविक जीवनी शक्ति एवं छिपा खजाना है। इससे मुखमंडल में ब्रह्मतेज आता है और बुद्धि को बल मिलता है।

शरीर में वीर्य के प्रभाव को उस वृक्ष से तुलना करके समझा जा सकता है, जो पृथ्वी से रस चूसता है। यह रस शाखाओं, प्रशाखाओं, पत्तियों, फूलों तथा फलों में चक्कर लगाता है। पत्तियों, फूलों तथा फलों के चमकीले रंग तथा प्राण इसी रस के कारण हैं। इसी तरह अण्डकोश की कोशिकाओं में रक्त से निर्मित वीर्य मनुष्य के शरीर तथा इसके विभिन्न अंगों को रंग तथा जीवनशक्ति प्रदान करता है।

आयुर्वेद के अनुसार, वीर्य भोजन से बनने वाली अंतिम धातु है। भोजन से निर्मित होता है पाकाशयस्थ (छोटी आंतों में भोजन से पृथक होने वाला एक रस)। पाकाशयस्थ से रक्त बनता है। रक्त से मांस। मांस से चर्बी। चर्बी से हड्डी। हड्डी से



मज्जा। मज्जा से वीर्य। ये जीवन तथा शरीर को टिकाने वाली सात धातुएँ हैं। वीर्य अन्तिम सार है। यह सारों का सार है।

वीर्य भोजन या रक्त का सार है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार चालीस बूँद रक्त से एक बूँद वीर्य तैयार होता है। आयुर्वेद के अनुसार, यह रक्त की अस्सी बूँदों से निर्मित होता है। जिस तरह मधुमक्खियां बूँद-बूँद करके छत्ते में शहद एकत्र करती हैं उसी तरह अण्डकोश की कोशिकाएँ रक्त से बूँद-बूँद करके वीर्य संचित करती हैं। तत्पश्चात् यह तरल पदार्थ दो नलिकाओं द्वारा लिंग (वेसिकुले सेमिनेलिस) तक ले जाया जाता है। जब पुरुष कामोत्तेजित होता है तो वीर्य विसर्जन नलिकाओं द्वारा पेशाब की नली में स्खलित होता है जहाँ यह शिश्न की ग्रंथियों के साथ मिलता है।

वीर्य भौतिक शरीर, हृदय तथा बुद्धि का पोषण करता है। केवल वही पुरुष जो शरीर, हृदय तथा बुद्धि का उपयोग करता है, पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर सकता है। एक पहलवान जो केवल अपने भौतिक शरीर का उपयोग करता है किन्तु बुद्धि तथा हृदय को अविकसित रहने देता है वह पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं रख सकता। वह केवल शरीर का ब्रह्मचर्य धारण कर सकता है, किन्तु मन तथा हृदय का नहीं। जो वीर्य मन तथा हृदय से सम्बन्धित है, वह निश्चितरूप से बाहर बह जाएगा। यदि कोई महत्वाकांक्षी केवल जप तथा ध्यान करता है, किन्तु वह हृदय को विकसित नहीं करता या शारीरिक व्यायाम नहीं करता तो वह केवल मानसिक ब्रह्मचर्य धारण करेगा। वीर्य का वह अंश जो हृदय तथा शरीर का पोषण करता है वह बाहर निकल जाएगा। किन्तु प्रबुद्ध योगी जो ध्यान में लीन रहता है वह पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करेगा भले ही वह शारीरिक व्यायाम न करे।

मन, प्राण तथा वीर्य ये तीनों एक ही शृंखला की तीन कड़ियाँ हैं। मन को नियन्त्रित करके प्राण तथा वीर्य को नियन्त्रित किया जा सकता है। प्राण को नियन्त्रित करके मन तथा वीर्य नियन्त्रित किये जा सकते हैं, और यदि वीर्य को नियन्त्रित कर लिया जाय और यदि शुद्ध विचारों से इसे ऊर्ध्वगामी बना दिया जाए तो मन तथा प्राण स्वत: नियन्त्रित हो जाते हैं।

मन दो बातों से गतिशील होता है - प्राण के स्पन्दन से तथा सूक्ष्म इच्छाओं से। मन तथा प्राण घनिष्ठ संगी हैं, जिस तरह कि मनुष्य तथा उसकी छाया। यदि मन तथा प्राण को रोका नहीं जाता तो चेतना तथा कर्म के सारे अंग अपने अपने कार्यों में लगे रहते हैं। जब मनुष्य कामोत्तेजित होता है तो प्राण गतिशील होता है। तब सारा शरीर मन की आज्ञा का पालन करता है जिस तरह सैनिक अपने अध्यक्ष के आदेश

को मानता है। प्राण आन्तरिक रस या वीर्य को गतिमान बनाता है। वीर्य गतिमान होता है। यह उसी तरह अध:पतित होता है जिस तरह बादल से वर्षा जल फूट पड़ता है, जिस तरह बहती वायु के वेग से पेड़ के फल, फूल और पत्तियाँ नीचे गिर जाती हैं।

(उपर्युक्त कथन स्वामी शिवानन्द के ग्रन्थों से लिया गया है। यद्यपि वे वैष्णव नहीं थे, तथापि शिवानन्द स्वामी आधुनिक युग के गम्भीर आध्यात्मिक अभ्यासकर्ता थे।)

## भगवान् पर ध्यान

(दक्षिण भारत का एक भक्त वर्णन कर रहा है कि वह क्या करता है जब उसकी चेतना में कोई अ-ब्रह्मचर्य विचार प्रवेश करने का प्रयास करता है।)

जब भी अनावश्यक विचार आते हैं उस समय मैं ध्यान करता हूँ कि मैं ईश्वर का दर्शन करने के लिए पंक्ति में खड़ा हूँ। इस पंक्ति में भगवान् के सुंदर चरणकमलों के दर्शन पाने की महान आकांक्षा से भारत भर से आये अनेक भक्त तथा तीर्थ-यात्री हैं। हर व्यक्ति अत्यन्त उत्सुक है, "हमारी पंक्ति शनै: शनै: परन्तु सतत् रूप से बढ़ रही है। हम शीघ्र ही भगवान् के निकट पहुँच कर उनके चरणकमलों का दर्शन पा सकेंगे।"

ये सारे भक्तगण इतने शुद्ध हैं कि भगवान् के प्रति आकर्षण से इतने भरे हुए हैं। मैं इतना पतित हूँ कि इन सबों के बीच में खड़ा होकर भी मैं उतनी उत्सुकता उत्पन्न नहीं कर पा रहा। फिर भी ईश्वर इतने दयालु हैं कि वे मुझे अपने चरणकमलों का दर्शन देने जा रहे हैं। मैं इतना भाग्यशाली हूँ। वाह ..... उनका उज्वल मुखमंडल कितना सुंदर होगा। ओह.....उनकी मुस्कान कितनी मधुर है। ओह! उनके कमलनेत्र कितने सुन्दर हैं.....ओह! भगवान् के संगी कितने अद्भुत हैं। ओह! भगवान्! यह पंक्ति तेजी से आगे क्यों नहीं बढ़ रही? मैं आपके दर्शन करना चाहता हूँ। यह दर्शन मन तथा इन्द्रियों को अति भाने वाला है।

अपने मन में ऐसा सोच कर मैं अपनी आँखें खोलता हूँ और मैं भगवान् के उन मृदुतम चरणकमलों को देखता हूँ और उनकी पूजा करने के बाद मैं उनके अति सुन्दर स्वरूप तथा मोहक मुस्कान का दर्शन करता हूँ। तब मैं चरणामृत लेता हूँ और इस प्रकार अपने सारे उत्पातों को दूर करता हूँ तथा ठीक से स्थित हो जाता हूँ।



## विविध

एक बार एक भक्त ने श्रील प्रभुपाद से पूछा "हमारे पास कृष्णभावनामृत का सम्यक दर्शन है और हमारे पास आप जैसे पूर्ण गुरु हैं। यद्यपि कृष्णभावनामृत के विषय में सब कुछ पूर्ण है फिर भी सदैव ऐसा प्रतित होता है कि हमारे पास अनेक समस्याएँ हैं। ऐसा क्यों?"

श्रील प्रभुपाद ने उत्तर दिया, "क्योंकि ब्रह्मचारी तथा संन्यासीगण स्त्रियों से अत्यधिक मिलते-जुलते हैं।" (गिरिराज द्वारा वर्णित)

एक कहानी है कि दो साधु सड़क पर जा रहे थे। उन्हें आवक्ष गहरी नदी मिली जिस पर कोई पुल न था। जब वे उसे पार करने जा रहे थे कि एक स्त्री आई और उसने नदी पार करने के लिए उनकी सहायता माँगी। इनमें से एक साधु ने उसे अपने कंधे पर चढ़ा लिया और नदी को पार करके उसे नीचे उतार दिया। दोनों साधु मौन भाव से आगे बढ़ने लगे। एक-दो घंटे बाद जिस साधु ने स्त्री को नहीं उठाया था एकदम बोल पड़ा "बन्धु! तुमने उस स्त्री को क्यों छुआ?" आश्चर्यचकित उसके साथी ने उसकी ओर मुड़कर उत्तर दिया "मैं तो उसे केवल नदी के पार ले गया, किन्तु तुम लगातार उसे मन में उठाये हो।"

नारीस्तनभरनाभीदेशं दृष्ट्वा मा गा मोहावेशम्
एतन् मांसवसादिविकारं मनसि विचिन्तय वारं वारम्

स्त्री के भारी स्तनों तथा पतली कमर की काल्पनिक सुन्दरता देख कर चंचल तथा मोहित न हों क्योंकि ये आकर्षक रूप चर्बी, मांस तथा अन्य घृणित अवयवों के विकार मात्र हैं। आपको इस बारे में अपने मन में बारम्बार विचार करना चाहिए। (शंकराचार्य)

काशायन्न च भोजनादिनियम्मान्नो वा वने वासतो
व्याख्यानादथवा मुनिव्रतभराच्चित्तोद्भव: क्षीयते
किन्तु स्फीतकलिन्दशैलतनयातीरेषु विक्रीड़तो
गोविन्दस्य पदारविन्दभजनारम्भस्य लेशादपि

न तो केसरिया वस्त्र पहनने, न भोजन तथा अन्य इन्द्रिय कर्मों को प्रतिबन्धित करने, न ही जंगल में वास करने, न दर्शन की चर्चा करने, न मौन व्रत धारण करने से अपितु यमुना के तट पर लीला रमण करते भगवान् गोविन्द के चरण कमलों की

रंचमात्र भक्ति करने से कामदेव को रोका जा सकता है। (श्रील रुप गोस्वामी कृत पद्यावली से)

ब्रह्मचारी को निम्नलिखित आठ चीजों का परित्याग कर देना चाहिए - काम, क्रोध, लोभ, मिष्ठान की इच्छा, शरीर को अलंकृत करने का विचार, अत्यधिक उत्सुकता (भौतिक चीजों में रुचि), अधिक निद्रा तथा शरीर के पालन हेतु अत्यधिक प्रयत्न। (नीतिशास्त्र ११.१०)

एक ही वस्तु (स्त्री) तीन विभिन्न प्रकारों में प्रकट होती है - तप करने वाले के लिए शव तुल्य, कामी के लिए स्त्री तथा कुत्तों के लिए मांस का लोथड़ा। (नीतिशास्त्र १४.१५)

स्त्रियाँ आध्यात्मिक जीवन को पूरी तरह नष्ट कर देती हैं। (श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती)

हर प्राणी संभोग के बाद खिन्न होता है। (एरिसटोटेलस)

प्रेम, समाज में जिस रूप में पाया जाता है वह दो कल्पनाओं के आदान-प्रदान एवं दो शरीरों के बाह्य सम्पर्क के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सेबस्टाइन-रोक निकोलस दी कैम्फर्ट (१७४१-१७९४)

जब हम असंयमित होते हैं, तो प्रजनन शक्ति बिखर जाती है और हमें अस्वच्छ बनाती है। और जब हम संयमित होते है, तो यह हमें सजीव तथा प्रेरित करती है। पवित्रता मनुष्य का पुष्पित होना है; और अपूर्व बुद्धि, शौर्य, साधुता इत्यादि इसके बाद लगने वाले विभिन्न फल हैं।

हेनरी डेविड थोरिया (१८१७-६२), यू. एस. दार्शनिक, लेखक, पदार्थ शास्त्रज्ञ वाल्डेन, ''हाइयर लॉस'' (१८५४).

यदि आप चाहते हैं कि आपका हृदय भगवान् हरि के चरणकमलों के अमृतरस पान में सदैव लीन रहे तो गृहस्थ जीवन को त्याग दो क्योंकि यह कलह तथा संघर्ष से पूर्ण है। आप केवल भगवान् गौर की पूजा करें जो गोद्रुम के वन कुंजों के चन्द्रमा हैं।

भौतिक सम्पत्ति, यौवन, दीर्घ आयु तथा राजसी सुख इनमें से कोई भी नित्य नहीं हैं। ये किसी भी समय नष्ट हो सकते हैं। व्यर्थ की भौतिक बातें त्याग कर केवल गोद्रुम के वन कुंजों के चन्द्रमा भगवान् गौर की पूजा करो।



हे मित्र! सुन्दर युवतियों की संगति से मिलने वाला आनन्द अन्ततः भीरुता में बदल जाता है और मनुष्य को उसके वास्तविक जीवन लक्ष्य से विपथ कर देता है। अपने मन को पवित्र नाम के अमृत रस से उन्मत्त करके गोद्रुम के वन कुंजो के चन्द्रमा रूप भगवान् गौर की पूजा करो। (श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत श्री गोद्रुम चन्द्र भजनोपदेश से उद्धृत)

यौन संयम में दृढ़ता से स्थापित होने पर वीर्य की उपलब्धि होती है। (पतञ्जलि योगसूत्र २.३८)

## अन्तलेख

१. भागवतम् १.१.१०
२. चैतन्य चरितामृत अन्त्य २.१७२
३. भागवतम् १.१८.७
४. भगवद्गीता ६.१३-१४
मे उद्धत याज्ञवल्क्य - स्मृति
५. भागवतम् ६.१.१३ तात्पर्य
६. भागवतम् ३.२२.१९
७. भागवतम् ७.१२.१
८. भागवतम् ७.१२.७
९. भागवतम् ३.२४.२०
१०. भागवतम् ६.१७.८
११. भागवतम् ४.२८.३
१२. शिवानन्द स्वामी की पुस्तक "प्रेक्टिस ओफ ब्रह्मचर्य" से उद्धृत, आदि स्रोत अज्ञात
१३. व्याख्यान ४.४.७५
१४. हवाई अड्डे पर स्वागत १८.०९.६९
१५. चैतन्य चरितामृत मध्य १३.८०
१६. भागवतम् ५.१२.१२
१७. देखें चैतन्य चरितामृत आदि अध्याय ७ तथा मध्य अध्याय २५
१८. चैतन्य चरितामृत मध्य २०.१०८
१९. देखें चैतन्य चरितामृत अन्त्य ४.६६-६७
२०. उपदेशामृत, शोलक १
२१. भागवतम् ५.२५.५
२२. भागवतम् ५.५.४
२३. भागवतम् ११.१४.३०
२४. रविन्द्र स्वरूप दास कृत "एण्डलेस लव"
२५. भागवतम् ३.२०.२३
२६. रविन्द्र स्वरूप दास कृत "एण्डलेस लव"
२७. भगवद्गीता २.६०
२८. भागवतम् ४.२५.२०
२९. भगवद्गीता १८.३८
३०. भागवतम् ४.२८.१२
३१. उपेदशामृत, श्लोक १
३२. भगवद्गीता १७.१६
३३. भागवतम् ४.२२.३०
३४. भागवतम् २.९.२३
३५. भगवद्गीता ५.२३
३६. व्याख्यान ६.२.७५
३७. भागवतम् ७.१२.१०, श्लोक
३८. वार्तालाप ३१.७.७६
३९. भागवतम्७.१५.३६
४०. भागवतम् ३.२४.२०
४१. नाटक के उपरान्त व्याख्यान ६.४.७५
४२. भागवतम् ६.१८.४१
४३. व्याख्यान १६.८.७३
४४. भागवतम् ९.१९.१७
४५. भागवतम् ७.१२.८
४६. "परम करुणा" गान का तात्पर्य
४७. भागवतम् १.२.६
४८. भागवतम् १.९.१२
४९. व्याखान १७.१.७१
५०. श्रील प्रभुपाद लीलामृत अध्याय १९
५१. चैतन्य चरितामृत मध्य २४.१७१
५२. भागवतम् २.९.२४
५३. वार्तालाप, २०.४.७
५४. भागवतम् २.९.४०
५५. वार्तालाप १०.१.७४
५६. भागवतम् ७.१२.१
५७. व्याख्यान १२.९.६९



५८. भागवतम् ५.५.१
५९. भक्ति रसामृत सिन्धु, अध्याय १८
६०. भागवतम् ६.४.४६
६१. भागवतम् ६.४.५०
६२. भागवतम् ३.१२.४
६३. भागवतम् ६.१.१३-१४
६४. भागवतम् १.२.७
६५. भागवतम् २.९.९.
६६. भागवतम् ९.४.२६
६७.भागवतम् १.२.८
६८. व्याख्यान, २५.११.७३
६९. सिद्धि पथ, अध्याय ४
७०. पत्र १५.२.६८
७१. भागवतम् ५.६.४
७२. चैतन्य चरितामृत मध्य १७.१४
७३. वेदान्त सूत्र १.१.१२
७४. कठोपनिषद १.३.१४
७५. भागवतम् ३.२५.२५
७६. भागवतम् ३.३१.३४ मूल तथा तात्पर्य
७७. भागवतम् ७.६.२०-२३
७८. भागवतम् ४.९.११
७९. वार्तालाप, ३१.७.७६
८०. चैतन्य चरितामृत अन्त्य २.११७
८१. भागवतम् ७.१५.२१
८२. भागवतम् १०.८.४
८३. धनुर्धर स्वामी द्वारा उद्धृत
८४. भगवद्गीता १२.९
८५. सत्स्वरुप दास गोस्वामी कृत "सत्तर के दशक में इस्कॉन" भाग -१, पृष्ठ संख्या ४०
८६. भगवद्गीता ९.३
८७. भगवद्गीता ४.४२
८८. भागवतम् १०.१.४
८९. चैतन्य चरितामृत मध्य २५.२७८
९०. चैतन्य चरितामृत मध्य २२.११३
९१. व्याख्यान, ५.४.७४
९२. पत्र, ५.६.७४
९३. पत्र, १२.१.७४
९४. भागवतम् ७.९.४६
९५. भागवतम् ४.७.४४
९६. वार्तालाप, १२.१२.७३
९७. वार्तालाप, ९.६.६९
९८. वार्तालाप, १५.८.७१
९९. भागवतम् ७.६.५
१००. पत्र, १७.२.६९
१०१. कृष्ण, अध्याय, ८७
१०२. भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत, अध्याय १
१०३. भगवद्गीता ६.१६-१७
१०४. भागवतम् १.९.२७
१०५. भागवतम् ६.१.१३-१४
१०६. भागवतम् ४.१८.१०
१०७. वार्तालाप, १४.७.७४
१०८. वार्तालाप, ३०.४.७३
१०९. भागवतम् ८.६.१२
११०. व्याख्यान, १५.१.७४
१११. वार्तालाप, १४.७.७४
११२. पत्र, २०.११.६९
११३. पत्र, ९.१.७५
११४. उपदेशामृत, श्लोक २
११५. बासुघोष दास द्वारा वर्णित
११६. भगवद्गीता ६.१६
११७. भगवद्गीता ६.१७
११८. भागवतम् १.९.२७
११९. जयाद्वैत स्वामी द्वारा वर्णित

१२०. भागवतम् ४.२८.३६
१२१. शतधन्य दास द्वारा वर्णित
१२२. पत्र, २८.२.७२
१२३. भागवतम् १२.३.३३
१२४. भागवतम् ३.१२.४
१२५. भागवतम् ४.२८.१
१२६. भागवतम् ७.१२, भूमिका
१२७. भागवतम् ३.४.५७
१२८. भागवतम् ७.११.८-१२
१२९. भूरीजन दास द्वारा उद्धृत
१३०. भगवद्गीता ६.२०-२३
१३१. भागवतम् ७.१२.४
१३२. वार्तालाप ५.५.७२
१३३. उपदेशामृत, श्लोक २
१३४. भागवतम् ३.२१.४७
१३५. भागवतम् ९.१४.२२-२३
१३६. १९७६ में उपेन्द्र दास से कहा गया
१३७. भागवतम् ७.१२.१
१३८. भागवतम् ६.१.१७
१३९. भागवतम् ४.११.३४
१४०. भागवतम् ७.१२.१
१४१. भागवतम् ९.९.४२
१४२. वार्तालाप, ९.७.७३
१४३. भागवतम् ७.१४.८
१४४. भागवतम् ७.१२.६
१४५. प्रभाविष्णु स्वामी द्वारा वर्णित
१४६. आनन्दमय दास द्वारा वर्णित
१४७. व्याख्यान, १.११.७२
१४८. भागवतम् ११.८.१२
१४९. श्रील प्रभुपाद लीलामृत, अध्याय ३३
१५०. पत्र, १.१०.६९
१५१. भागवतम् ३.१६.५
१५२. दानवीरदास गोस्वामी द्वारा वर्णित
१५३. पत्र, २९.९.७५
१५४. पत्र, ३.१२.७२
१५५. जदुराणी देवी दासी द्वारा वर्णित
१५६. जदुराणी देवी दासी द्वारा वर्णित
१५७. भागवतम् ३.३१.४०
१५८. गिरिराज स्वामी द्वारा वर्णित
१५९. पत्र, ६.१०.६८
१६०. श्रुतकीर्ति दास द्वारा वर्णित
१६१. भागवतम् ६.१.६५
१६२. श्रील प्रभुपाद लीलामृत, अध्याय २२
१६३. पत्र, २९.३.६८
१६४. भागवतम् ११.२.४६
१६५. भागवतम् ६.१.६७
१६६. वार्तालाप २९.५.७७
१६७. चैतन्य चरितामृत अन्त्य ६.२२०
१६८. भक्ति रसामृत सिन्धु १.२.२५५-६
१६९. भगवद्गीता १६.२१
१७०. भागवतम् ६.१.५६-६३
१७१. भगवद्गीता ३.३९-४१
१७२. भागवतम् ७.९.४५
१७३. वार्तालाप, ३०.८.७३
१७४. चैतन्य भागवत मध्य २३.७८
१७५. वार्तालाप, ११.५.७५
१७६. भागवतम् ५.६.३
१७७. भागवतम् १०.३३.३९
१७८. व्याख्यान ३०.३.७५
१७९. भागवतम् ११.२८.४०
१८०. भागवतम् ३.२८.३२
१८१. भागवतम् ११.२२.५६
१८२. भागवतम् ९.६.३९-५३
१८३. भगवद्गीता २.७०



१८४. भागवतम् १.९.२७
१८५. भागवतम् ९.४.१८
१८६. चैतन्य चरितामृत आदि २.११७
१८७. भागवतम् ६.८.१७
१८८. शिक्षाष्टकम् ५
१८९. व्याख्यान, ८.४.७५
१९०. वार्तालाप, १४.६.७४
१९१. भागवतम् ६.१.१५
१९२. वार्तालाप २८.५.७४
१९३. भक्त जिन्होंने पूछा वे थे दीन बन्धु दास
१९४. भागवतम् ३.१२.३२
१९५. भागवतम् ४.२९.६९
१९६. चैतन्य चरितामृत मध्य २५.२७९
१९७. सेन फ्रांसिस्को के भक्तों को पत्र, ३०.३.६७
१९८. पत्र ९.१.७३
१९९. भगवद्गीता ३.३६
२००. भगवद्गीता ७.१४
२०१. वार्तालाप, २७.६.७५
२०२. पत्र, ९.१२.६८
२०३. भागवतम् ३.२०.२६
२०४. सत्स्वरुप दास गोस्वामी द्वारा वर्णित
२०५. भगवद्गीता ६.१४ तात्पर्य
२०६. १९५७, हेल्थ रिसर्च लेब्स, मोकेलुम्ने हिल, केलिफोर्निया
२०७. भागवतम् ६.५
२०८. प्रघोष दास द्वारा वर्णित
२०९. वार्तालाप, ११.८.७६
२१०. महाभारत, आदि पर्व
२११. भागवतम् ११.१७.३६
२१२. पत्र, २.२.७०
२१३. व्याख्यान, ५.४.७४
२१४. पत्र, ३१.१२.६८
२१५. व्याख्यान, ३.५.७३
२१६. पत्र, ५.६.७४
२१७. भागवतम् ३.१४.२०
२१८. भागवतम् स्कंध ५, अध्याय १३ तथा १४
२१९. पत्र, ८.११.६८

### श्री कृष्णभावनामृत प्रबोधिनी

इस पुस्तक को पढ़ें और अपना जीवन सुधारें। कृष्णभावनामृत को प्रारंभ करने के लिए आवश्यक ज्ञान। प्रतिदिन की जाने वाली क्रियाओं पर सरल मार्गदर्शन जो आपको कृष्ण के समीप लाएगा। व्यवहारिक सूचनाओं से ओतप्रोत। घर तथा आश्रम में रह रहे भक्तों के लिए उपयुक्त।

निश्चितरूप से आपको अधिक आध्यात्मिक व्यक्ति बनाने में सक्षम।

हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, बंगाली, मराठी, गुजराती, नेपाली, पोलिस, कुरोसियन, कन्नडा, स्लोवेनियन, तेलुगु, इन्दोनेसियन, रूसी तथा उर्दू भाषाओं में उपलब्ध है।

### जय श्रील प्रभुपाद !

श्रील प्रभुपाद के दिव्य गुणों के विवरण का न तो कोई अंत है न ही हम उनका यश कभी रोकना चाहते हैं। उनकी प्राप्तियों के साथ उनके गुण नि:संदेह उन्हें एक अभूतपूर्व दिव्य व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करते हैं।

श्रील प्रभुपाद अब भी हमारे साथ हैं, कृष्णभावनामृत आंदोलन के उत्तरोत्तर विस्तार को देखते हुए। हम अपेक्षा कर सकते हैं कि यदि हम उनकी शिक्षाओं का ध्यानपूर्वक अनुसरण करेंगे तो अनेक आश्चर्यजनक चीजें होंगी जिनकी कल्पना भी आज कठिन है।

गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तथा रूसी भाषाओं में उपलब्ध है।

### द स्टोरी ऑफ रसिकानंद

श्री रसिकानंद देव, चैतन्य महाप्रभु के अप्रकट होने के बाद के समय में हुए एक महान वैष्णव आचार्य थे। अपने गुरु, श्रील श्यामानंद पंडित के साथ उन्होंने उत्तर उड़ीसा तथा समीपवर्ती जिलो को कृष्ण प्रेम में डुबो दिया और ये लहरें आज भी बह रही हैं। उन्होंने नास्तिकों, निन्दकों, व लुटेरों को जीता एवं परिवर्तित किया। उन्होंने एक दुष्ट हाथी को भी पालतू बनाया एवं दीक्षित किया। श्री रसिकानंद देव की दिलचस्प कथा इसमें बताई गई है।

अंग्रेज़ी, तथा रूसी भाषाओं में उपलब्ध है।

### ग्लिम्प्सिस ऑफ ट्रेडिशनल इण्डियन लाइफ

विश्व की सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक सभ्यता के शेष अंश, उनकी दृष्टि से जो इस सभ्यता के भाग थे। यह पुस्तक हमें वास्तविक भारत, भारतीय जीवन के हृदय में स्थित बौद्धिकता एवं भक्ति की ओर ले जाती है।

धर्मपरायणता के वातावरण में पले लोगों से मिलें। जानिए कि कैसे इससे उनका चरित्र निर्माण हुआ एवं उनका जीवन संवर्धित हुआ। आधुनिकीकरण के दुष्परिणामों, परंपरागत सभ्यता के पतन, तथा भारत के वर्तमान पतन के कारणों को खोजिए। और पाइए : सादा जीवन उच्च विचार, भगवान् तथा प्रकृति पर निर्भरता, अंतर्जातीय सम्बंध, विशिष्ट पाण्डित्य, गौण में किन्तु सम्माननीय स्त्रियाँ, आदर्श गृहस्थ जीवन.... एवं अन्य बहुत कुछ।

अंग्रेजी, तथा रूसी भाषाओं में उपलब्ध है।

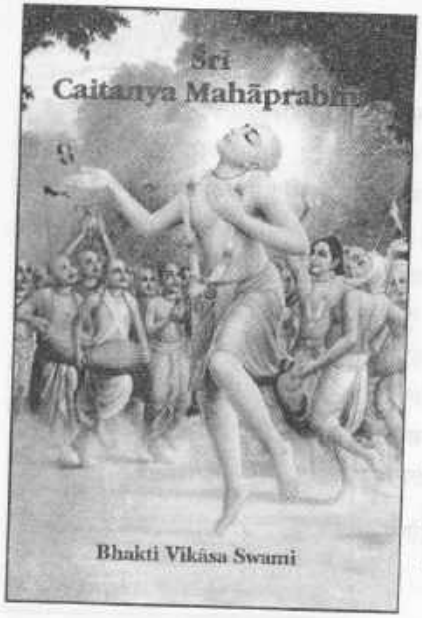


## प्रेमावतार श्री चैतन्य महाप्रभु

संपूर्ण विश्व में लाखों व्यक्ति भगवान् श्री चैतन्य के द्वारा प्रदत्त कृष्णभावनामृत के निर्मल पथ का अनुसरण कर रहे हैं। कृष्ण के पवित्र नामों का कीर्तन तथा परमानन्द में नृत्य करते हुए वे केवल कृष्णप्रेम पाने की अभिलाषा रखते हैं, तथा भौतिक भोग को तुच्छ समझते हैं। यह पुस्तक इस धरती को पवित्र करने वाले भगवान् के अवतारों में से सबसे अधिक दयालु तथा उदार अवतार भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं का संक्षिप्त परिचय देती है।

हिन्दी, अंग्रेज़ी, तमिल, गुजराती, तेलुगु तथा रूसी भाषाओं में उपलब्ध है।

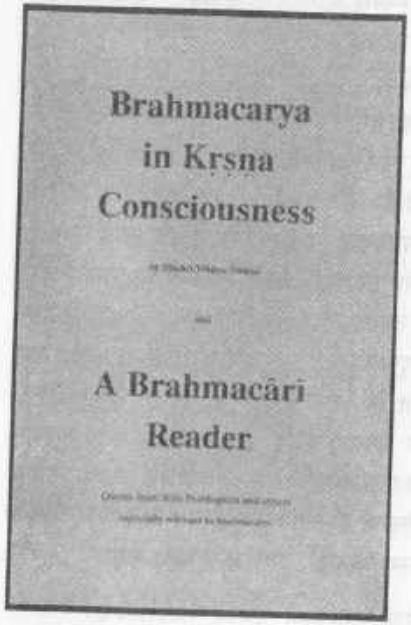


## कृष्णभावनामृत में ब्रह्मचर्य

इस पुस्तक को ब्रह्मचारी जीवन की 'पथदर्शिका' कहा जा सकता है। इसके प्रथम भाग में ब्रह्मचर्य के अनेक पक्षों के विषय में विस्तृत विवेचना तथा आमूल व्यावहारिक पथप्रदर्शन है। द्वितीय भाग में इस विषय से सम्बन्धित श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों, टेपों तथा पत्रों से उद्धरणों का संकलन है।

यह पुस्तक विशेषतया उन अनेक निष्ठावान युवकों के लिए है जो इस्कॉन में सम्मिलित हो रहे हैं, तथापि यह पुस्तक उन सभी भक्तों के लिए भी उपयोगी तथा रुचिकर होगी जो अपने आध्यात्मिक जीवन को सुधारने में गम्भीरतापूर्वक रुचि लेते हैं।

हिन्दी, अंग्रेज़ी, तमिल, बंगाली, कुरोशियन, इन्दोनेशियन, रूसी इटालियन, मेंड्रियन, तथा पोरचुक्सि भाषाओं में उपलब्ध है।

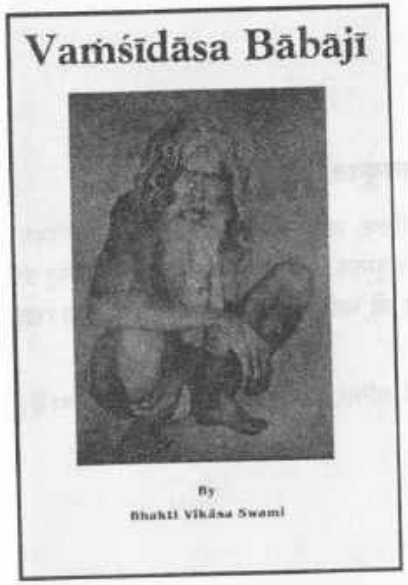


## वंशीदास बाबाजी

श्रील वंशीदास बाबाजी एक महान वैष्णव थे जो नवद्वीप में बीसवी शताब्दी के पहले अर्ध-शतक में रहे। उनका व्यवहार इतना विचित्र था कि भारत से गौण आध्यात्मिक संस्कृति में उन्हें पागल माना जाएगा। यद्यपि वे शारीरिक रूप से इस भौतिक जगत् में उपस्थित थे परन्तु उनका इसके साथ अति-अल्प संचारण था। वे छः फुट लम्बे तथा मजबूत कद काठी थे, उनके केश तथा दाढ़ी बिना कटी, जटाजूट तथा फूहड़ थी। उन्होंने कभी स्नान नहीं किया और उनकी आँखें उच्छृंखल (जंगली) थीं। वे मात्र कोपीन पहनते थे और कुछ भी नहीं।

यह पुस्तक हमें एक अत्यंत असाधारण और उदात्त व्यक्तित्व से परिचित करवाती है जिन्हें हम मात्र प्रणाम कर सकते हैं तथा उनकी कृपा प्राप्ति की प्रार्थना कर सकते हैं।

अंग्रेज़ी, कुरोशियन, तथा रूसी भाषाओं में उपलब्ध है।

## ऑन पिल्ग्रिमेज इन होली इन्डिया

भारत के अल्प-परिचित किन्तु अति रमणीय तीर्थ स्थलों पर इस्कॉन के एक संन्यासी के साथ तीर्थाटन।

अंग्रेज़ी, तथा रूसी भाषाओं में उपलब्ध है।

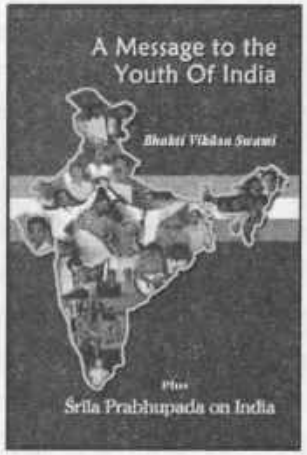


## भारत के नवयुवकों को संदेश

धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक विश्लेषण। एक मूल्यवान पुस्तक, न केवल युवकों के लिए अपितु उन सभी के लिए जो भारत तथा विश्व के भविष्य में रुचि रखते हों।

हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, तथा गुजराती भाषाओं में उपलब्ध है।

Website: www.bvks.com

BVKS

इस पुस्तक को ब्रह्मचारी जीवन की 'पथदर्शिका' कहा जा सकता है। इसके प्रथम भाग में ब्रह्मचर्य के अनेक पक्षों के विषय में विस्तृत विवेचना तथा आमूल व्यवहारिक पथप्रदर्शन है। द्वितीय भाग में इस विषय से सम्बन्धित श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों, टेपों तथा पत्रों से उद्धरणों का संकलन है।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋

यह पुस्तक विशेषतया उन अनेक निष्ठावान युवकों के लिए है जो इस्कॉन में सम्मिलित हो रहे हैं, तथापि यह पुस्तक उन सभी भक्तों के लिए भी उपयोगी तथा रुचिकर होगी जो अपने आध्यात्मिक जीवन को सुधारने में गम्भीरतापूर्वक रुचि लेते हैं।